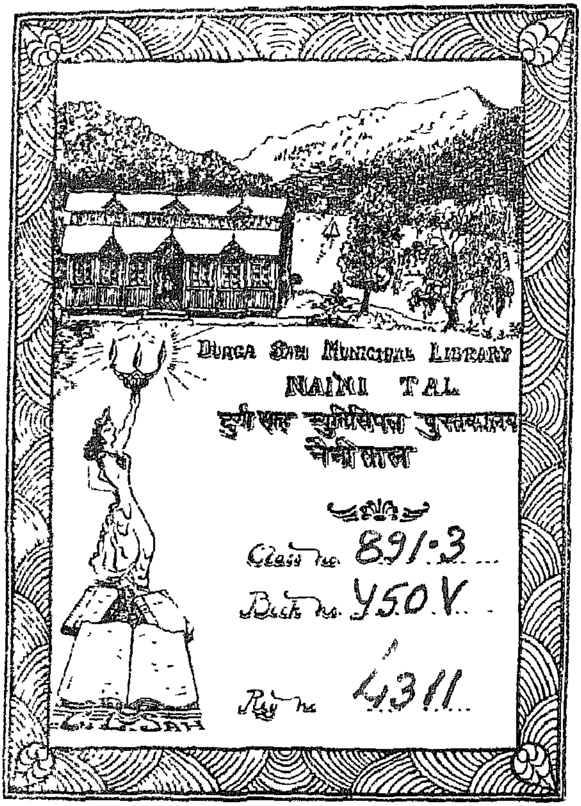
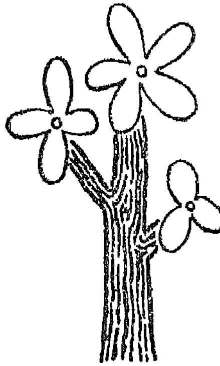




वनलक्ष्मी

योगेन्द्र नाथ सिनहा

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

प्रकाशक

अमृतराय

हंस प्रकाशन

इलाहाबाद

मुद्रक

प्रेम प्रेस

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण २००० : जून १९५६

आवरण
सुप्रभात नन्दन

मूल्य २॥)

शिवदत्त राना ने मोटर की आवाज सुनी तो हाँड़ी का भात छोड़ कर दौड़े। छुट्टी का समय था फिर भी साहब पहुँच गये थे। शिवदत्त का डेरा कारखाने से कुछ दूर था, इसलिये बेतहाशा दौड़ कर आने में भी जरा कुछ देर लग ही गई। साहब देखते ही झल्लाये—क्यों जनाब, आपके शुभागमन के लिये मुझे क्या पूजा-पाठ करना पड़ेगा?

शिवदत्त ने हाथ जोड़ गिड़गिड़ाते हुए कहा—नहीं, हुजूर, मोटर की आवाज सुनते ही दौड़ा आ रहा हूँ। खाना पका रहा था, हुजूर।

साहब—सुनिये, महाशय। आप खाना पका रहे थे तो मुझ पर या कम्पनी पर कोई एहसान नहीं ढा रहे थे। मुझे तो काम से काम। आप चाहे खाना पकाइये या कम्पनी का काम कीजिये। आपकी बहाली हुई है काम के लिये, खाना पकाने के लिये नहीं।

शिवदत्त इस अनुचित निर्दय तर्क से मर्माहत हुए पर उसी तरह हाथ जोड़े विनीत स्वर में बोले—काम में कोई हर्ज नहीं पड़ रहा है, हुजूर। अभी कोई आदमी मेरे पास नहीं है, स्वयं रसोई का सारा काम करना पड़ रहा है।

साहब—तब तो आपको दरखास्त में ही लिख देना था कि आप की बहाली के साथ आपके लिये नौकरों, खानसामों, मशालचियों और बावर्चियों का लशकर भी कम्पनी की ओर से बहाल कर दिया जाय। या खुद मैं ही आकर आपके वास्ते पलंग-चाय, छोटा हाजरी, लंच, आफटरनून-टी, डिनर, सपर, सब कुछ घड़ी के काँटे पर तैयार कर हाजिर कर दिया करूँ। पर जैसे भी हो, मैं पूरा काम चाहता हूँ। कम्पनी को छुट्टी देने की

गुंजाइश नहीं। जब बहाली का समय होता है तब आप लोग बड़े-बड़े वादे करते हैं, हम ऐसा करेंगे, वैसा कर दिखायेंगे। कहते हैं, न करूँ तो निकाल दीजियेगा। लेकिन जब बहाली हो जाता है और काम का वक्त आता है तब दस वजूहात निकलते हैं। दिन भर खाते ही रहियेगा तो काम कब होगा?

एक क्षण के पश्चात् मानो उदारता की सीमा पर पहुँच कर साहब फिर बोले---अच्छा, दस मिनट का समय देता हूँ। लेकिन अब से ऐसा न कीजियेगा।

शिवदत्त राना जब साहब के पास से लौटकर आये तो देखा हाँड़ी का भात जलकर कोयला हो गया है।

साहब ने कारखाने का काम मुलाहजा करते-करते एक मेज दिखा कर कहा---यह क्लब के लिये मेज बनी है या गाँव के पटवारी के वास्ते? आप को खुद सब चीजों की जाँच करनी चाहिये, काठ का पुतला न बने रहिये। आजकल के कारीगर आँख में धूल झोंकते हैं। आप सुपरवाइजर होकर भी यही ढंग अख्तियार न करें।

शिवदत्त ने मेज को नाप कर, उलट-पुलट कर, पालिश पर हाथ रगड़ कर दिखा दिया कि इसमें कोई भी ऐब नहीं। बोले---मैं स्वयं बिना सन्तुष्ट हुए किसी भी चीज को पास नहीं करता हुजूर।

साहब ने हाथ पटक कर तने हुए मुह से कहा---मुश्किल तो यह है कि आप अपने को सबसे ज्यादा होशियार समझते हैं। यह भी शायद सोचते होंगे कि साहब को काम की बारीकी का क्या पता, जिस तरह चाहें उल्लू बना दें। पर यह आपकी भूल है, बिलकुल भूल है।

शिवदत्त---नहीं, हुजूर, मैं तो आपकी हिदायतों से एक जो भी बाहर नहीं जाता।

साहब---हाँ, आपके कहने का मतलब साफ यह है कि जो कुछ भी खराबी निकले, साहब के गले मढ़ दिया जाय। यहाँ काम तो क्या होता है, दिन भर यही शतरंज की चाल सोची जाती है कि किस तरह साहब को दोषी बनाया जाय और हम कपड़ा झाड़ कर अलग खड़े हो जायँ। इस बिल्ली-चूहे के खेल से निभने का नहीं, बाबू शिवदत्त राना। मैं

जानता हूँ आप लोगों की गुटबंदी भी है मेरे खिलाफ। मगर जब तक जेफरन साहब यहाँ हैं तब तक कोई भी मेरा बाल बाँका नहीं कर सकता। यह मन की खीर न पकाइये।

शिवदत्त मर्माहत हो बोले—भगवान जानते हैं, हुजूर, मैं इन सब बातों में नहीं रहता। मैं अपने दानिश्त पूरा मेहनत और ईमानदारी से काम कर रहा हूँ। जहाँ कहीं आप को जरा भी काम में शिकायत दीख पड़े कृपया मुझे बता दिया करें, मैं ठीक कर लूंगा। मैं आपके निर्देशों से अवश्य लाभ उठाऊँगा।

साहब—मेहनत तो वे लोग कहीं अधिक करते हैं जो खेतों में मिट्टी काटते हैं लेकिन इतना पैसा नहीं पाते। रही अन्दरूनी ईमानदारी की बात, तो यह भगवान का पोर्टफोलियो होते हुए भी हम लोग कुछ जान ही जाते हैं। मगर कम्पनी आप से काम चाहती है, ईमानदारी और मेहनत का लेकचर नहीं। आप मनमानी जो चाहें करते जायँ और मैं आपका उल्लू सीधा किया करूँ। मुझे ही उँगली रख-रख कर बताना होगा कि कहाँ खराब है, कहाँ अच्छा है! तब तो यही अच्छा होगा कि आप मेरी जगह ले-लें और मैं आपकी जगह चला जाऊँ।

२

सिंहभूम के सरकारी जंगलों में मुलहाउस अँगरेजी कम्पनी का ठेका था। विजन वन के भीतर "हो" आदिवासियों की चार-छः झोपड़ियों का टोला, पोंगा, शहर बन बैठा था। कम्पनी के मैनेजर जेफरन साहब वहीं रहते थे। छरहरे जवान थे, उम्र करीब पैंतीस वर्ष, किन्तु इसी उम्र में एक बहुत बड़े पद पर पहुँच गये थे केवल अपनी योग्यता के द्वारा। उनका बड़ा-सा बँगला था, सुन्दर फुलवारी थी, बिजली बत्ती और पंखा, बर्फ बनाने का रेफ्रिजरेटर, रेडियो, इत्यादि। कोई स्वर्ग जाता है, कोई स्वर्ग को अपने साथ लिये फिरता है। दुर्गम पहाड़ों को पार कर, जंगली

जानवरों के कवल से बचते हुए, घोर वन के उदर से पुनर्जन्म पा जब क्लान्त-श्रान्त पथिक पोंगा पहुँचता तब धर्म-पुस्तकों में पढ़े हुए स्वर्ग के चित्र से उसका साक्षात् हो जाता। कोई भी वस्तु हो, उसका स्वतन्त्र असम्बद्ध मूल्य नहीं होता। मूल्य निर्भर करता है स्थान-स्थिति पर। वही बिजली बत्ती जो शहरों में गली-गली मारी फिरती है, वह फूस का छाया हुआ बँगला जिसे शहर में कोई आँख उठा कर न देखे, वे ही उस वन-खोह में इन्द्रपुरी के सहचर बन गये थे। और मनुष्य पर भी स्थान-परिवेश का प्रभाव पड़ता ही है। आदि ज्ञान तथा मूलधर्म के आचार्य ये वनाच्छादित पर्वत-पुंज ऋषियों को भले ही सिखला गये हों कि मनुष्य-जीवन महानतर दिव्य जीवन के निमित्त क्षुद्र प्रयास मात्र है, किन्तु जेफरन की परिस्थिति में आदमी सोचता है, आज का जीवन ही नगद सौदा है, स्वर्ग तो उधार का बही-खाता ठहरा। जेफरन साहब हड्डीतोड़ परिश्रम करते थे, खाते थे, पीते थे, खूब पीते थे। दिल दरिया था, दिमाग शाही था, चुटकी की जगह नुट्ठो दिया करते थे। कम्पनी की ओर से नौकरों का हुजूम बहाल था लेकिन जेफरन साहब जानते थे केवल अलीजान को। अलीजान हेड बेरा था, उनके घर का मालिक, दूसरे नौकरों का शासक और जेफरन साहब का एक अंग। जेफरन ने ब्याह न किया था।

इसी कम्पनी में मिस्टर मनसुख दास छोटा साहब थे। कम्पनी का मुख्य व्यापार था शाल के मोटे-मोटे पेड़ों को कटवाना, इनसे रेल-स्लीपर चिरवाना या बोटे तैयार करना और कलकत्ते इत्यादि चालान करना। उन दिनों सिंहभूम जिले का यह दक्षिण-पश्चिम अंचल और भी घोर जंगलों की किलाबन्दी था। छोटे-छोटे ठेकेदार तो यहाँ प्रवेश करने से भी डरते थे। दस-बीस मील अटूट वन-विस्तार के बाद यदि "हो" आदिवासियों के दो-चार घर मिल गये गनीमत कहिये। बाहर के लोगों से ये आदिवासी परिचित न थे। प्रकृति-संतान ये भोले-भाले वन-निवासी दैवी गुणों के आगार थे किन्तु अपरिचित को देख संदेह का प्रादुर्भाव या आत्म-रक्षा की प्रेरणा से भागने या भगाने की प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही है। लेकिन

एक बार इनके साथ बन्धुत्व स्थापित कर लीजिये, इनके विश्वास-पात्र बन जाइये, फिर तो आपके लिये ये अपनी जान भी लड़ा देंगे।

मलेरिया का प्रकोप ऐसा था कि शहरों से अथवा वन-हीन अंचलों से जो आते थे उन्हें कुछ दिनों में ही प्राणों से हताश हो जाना पड़ता था।

ब्लैक वाटर ज्वर से कितने मर भी चुके थे। लेकिन रुपये से सब कुछ होता है। इस अँगरेज कम्पनी का बड़ा कारबार था, लागत के लिये पूँजी भरपूर थी। कम्पनी ने मलेरिया-निवारण के निमित्त बहुत खर्च किया, पोंगा में मैनेजर का बँगला बनाया, लकड़ी का चिराई-कल बैठाया, कारखाना खोला, मिस्त्री लाये और दफ्तर में किरानियों का एक दल काम करने लग गया। कुछ दिनों में ही यह सुनसान वन-स्थान जहाँ दिन-दहाड़े बाघ-भालू स्वच्छन्द विचरा करते, एक छोटा सा शहर बन उठा। आदिवासी नर-नारी पहले तो इन संकट-सरंजामों को दूर ही से हुलक-हुलक कर देखा करते, फिर धीरे-धीरे स्वयं आकर काम करने लगे।

कम्पनी के व्यापार में सिर्फ शाल की मोटी-मोटी लकड़ी का ही इस्तेमाल था। लेकिन शाल के अतिरिक्त उपयोगी लकड़ी के और भी कई तरह के पेड़ थे जैसे पियाशाल, गम्हार, सिरिस, करम इत्यादि, जिनकी कोई पूछ न थी। शाल के भी चुने हुए बोटे ही काम में लगते। परिणाम यह होता कि चालान के बाद भी जंगल में कटी लकड़ियों के ढेर लगे रह जाते। यह छोड़ी हुई लकड़ी या तो जंगल की आग में जल जाती अथवा धीरे-धीरे सड़ जाती। एक ओर यह अपव्यय और दूसरी ओर परिस्थिति ऐसी कि जंगल के नजदीक भी शहरों या गाँवों में घर-गृहस्थी की लकड़ी की चीजों का घोर अभाव। पड़ोस के चाइबासा शहर में ही किसी को अगर एक मकान बनाना हो तो किवाड़-चौखट के लिये वह मारा-मारा फिरे या पाये भी तो बेहद दाम पर। किसानों को हल की कमी थी, बैल-गाड़ी के चक्के न मिलते, लकड़ी की चौकियाँ बेहद मँहगी थीं, और स्कूल-दफ्तर में डेस्क, कुरसी, टेबुल इत्यादि के लिये सर खपाना पड़ता। जेफरन साहब की कार्य-कुशल आँखों ने देखा, यदि फेंकी हुई लकड़ी से लोगों की जरूरियात पूरी की जायँ तो कम्पनी को लाभ भी अधिक हो और कम्पनी

की लोक-प्रियता भी बढ़े। उन्होंने कम्पनी में एक योजना भेजी और उसकी मंजूरी के बाद उपस्कर (फर्निचर) का एक कारखाना खुल गया। उसी के प्रबन्ध के लिये मिस्टर मनसुखदास को असिस्टेंट मैनेजर का पद मिला और कार्यपालन के निमित्त शिवदत्त राना सुपरवाइजर बहाल हुए।

मनसुख दास उन व्यक्तियों में थे जो धर्म के छः महीने के रास्ते में एक दिन का रास्ता निकाल लिया करते हैं। हमें धर्म-ग्रन्थ और नीति-शास्त्र भले ही सिखायें कि सभी को अपने किये का फल मिलता है—अच्छे कर्मों का अच्छा फल, बुरे का बुरा—लेकिन इन महाशय का जीवन-चरित यही सीख देता था कि सारी जिन्दगी भगवान को चैन से धोखा दिया जा सकता है। मनसुख दास अब तक धोखे की टट्टी से ही काम लेते आये थे। धूर्त्तता, मक्कारी, अनीति, फरेब, ये ही इनके साधन थे। और इसी साधन द्वारा वे सफलता के मार्ग पर निरन्तर बढ़ते आये थे। यहाँ नोचा, वहाँ दलाली की, तीसरी जगह गबन या फरेब किया, यही इनका रोजगार था। इसी फन में मनसुख दास की एक फिरंगी युवती से भेंट हो गई। और प्रकृति का मेल भी ऐसा हुआ कि कुछ दिनों में दोनों का ब्याह हो गया। मनसुख दास को पत्नी क्या मिली रोजगार की पूँजी मिल गई। अँगरेजी समाज में इनका हक हो गया और मिसेज इथेल दास ने कम्पनी के बड़े साहब से नाच घर में सिफारिश कर नौकरी लगवा दी। साहब-मेम दोनों पोंगा चले गये और जेफरन साहब के नजदीक ही कम्पनी की कोठी में रहने लगे।

२

एक समय था जब शिवदत्त राना बड़े-बड़े कारबारियों में अग्रगण्य थे। शहर में बड़ा सा उपस्कर (फर्निचर) का कारखाना था और इनकी चीजों की खास शोहरत थी। पिताजी तो तीन भाइयों के लिये गली में एक खपरैल मकान और एक छोटी सी बढ़ई की दूकान ही छोड़ गये थे। वे

पुराने खयाल के आदमी थे, सोचते भगवान का दिया रोजगार जिस तरह पूर्वज करते आये हैं वही अपना भी धर्म है। लेकिन शिवदत्त के विचार इस लोक से बाहर थे। इन्होंने कितने महापुरुषों के जीवन-चरित्त पढ़े थे, और सबसे अधिक प्रभाव इन पर इस बात का पड़ा था कि अटूट अध्यवसाय और सच्ची लगन द्वारा निम्नतम स्थान से भी सफलता तथा प्रसिद्धि के शिखर तक पहुँचा जा सकता है। स्वयं काम किया करते थे, और हाथ की सफाई तथा सूझ की प्रखरता ऐसी थी कि तुरत नाम भी कर लिया। इन्होंने कारखाना बढ़ाना आरम्भ कर दिया, दोनों छोटे भाइयों को काम सिखलाया, और चीजों की अच्छाई तथा अपनी ईमानदारी से धन और नाम दोनों कमाने लगे। धीरे-धीरे बढ़ई की दूकान से एक बड़ा कारखाना बन गया। दूर-दूर के समाचार-पत्रों में विज्ञापन छपने लगे, आकर्षक सचित्र सूचीपत्रों का वितरण होने लगा, और इनकी दूकान सर्व-प्रथम श्रेणी में आ गई। गली के मकान को छोड़ सड़क के किनारे हाता और फुलवारी के साथ बड़ा सा नया मकान बना और तीनों भाई अपने-अपने परिवार के साथ इसी में रहने लगे।

शिवदत्त दोनों भाइयों को अपना अंग समझते थे। स्वयं अपने हाथों उन्हें काम सिखलाया और जब इनके भाई बैठ कर काठ में कलात्मक सृष्टि करने लगते, जब औजारों द्वारा कल्पना को लकड़ी में आबद्ध करते, तब शिवदत्त को वही आनन्द होता जो अपने स्नेह-सिंचित पौधे को पनपते देख होता है। शिवदत्त निरे बढ़ई न थे। वह कलाकार थे, उनमें भावुकता की गहराई थी और कल्पना का विस्तार था। भावुकता तथा कल्पना के वाहन हो उन्हें अपने व्यवसाय में सबसे आगे ले गये। शिवदत्त कहते, जब पत्थर से ताजमहल रूपी कविता लिखी जा सकती है और मिट्टी के कृष्ण गोपियों का मन हर सकते हैं तब लकड़ी के माध्यम से हृदय के पावन उद्गार क्यों नहीं विकसित किये जा सकते? अपनी कलात्मक कृति का सहारा दे दर्शक की आत्मा को कवित्वमय उन्मुक्त आकाश में या आध्यात्मिक स्तरों पर क्यों नहीं उठाया जा सकता? जिन लोगों ने शिवदत्त के उमर खय्याम को देखा था—सुपल्लवित वृक्ष के नीचे सुरा-सुन्दरी के

सुकोमल हाथों से सुरा पान करते हुए और निर्जनता को साक्षी बना साकी के कानों में चुपके से कहते हुए, मैं और तुम, और यह वृक्ष और सुरा—वे शिवदत्त को कवि कहा करते। जिन लोगों को इनके विद्यापति को देखने का अवसर मिला था—विद्यापति विदा ले रहे हैं और शोक-विह्वल अनुराधा पछाड़ खा-खा कर उनकी राह रोकने की विफल चेष्टा कर रही है—उनके कोमल भाव भक्ति से परिपूर्ण हो भगवान के चरणों पर मँडराने लगते।

धीरे-धीरे शिवदत्त अपने भाइयों के विश्वस्त हाथों में उन्नत व्यवसाय को सौंप कर निश्चिन्त होने लगे। अब रोज-रोज के काम में जाँच-खोज न कर वह उत्तरोत्तर उन्नति की योजनायें ही बनाया करते और राय-मशविरा देते। उनका जीवन संघर्षों का एक लम्बा परिच्छेद रहा था। वह कर्म-योग के विश्वासी थे। कहा करते, जीवन की सफलता सत्कर्मों में है, फल में नहीं। यदि फल के दृष्टिकोण से इन्हें अन्त तक असफलता ही मिलती रहती तब भी मन और कर्म की निर्मलता की कसौटी पर अपने जीवन को वह सफल ही समझते। किन्तु दयालु परमात्मा ने अच्छे कर्मों के यथेष्ट सुस्वादु फल भी दिये थे। अब यही कामना रह गई थी कि जीवन के शेष दिन सुख-शान्ति से बीत जायँ। शिवदत्त को अपने भाइयों पर पूर्ण विश्वास था और जगदत्त बज्रदत्त भी बड़े भाई की असीम श्रद्धा करते तथा इनकी शिक्षाओं और आदर्श को अपने कर्तव्य की नींव समझते। पर नियति की नीयत कौन जान सकता है ? मनुष्य परिस्थिति का पुतला किस हद तक हो सकता है इसका अंदाज किसे मिला है ?

शिवदत्त की स्त्री रेवती और जगदत्त की स्त्री सुखदा, एक ही घर में रहती थीं, एक ही हाँड़ी का भात खाती थीं, पर चलती थीं दो अलग-अलग पटरियों पर जिनका फासला कोण से निकली दो भुजाओं की तरह क्रमशः दूर होता जा रहा था। रेवती का धर्म में प्राण बसता था, वह पूजा-पाठ में अधिकांश समय रत रहती। सुखदा स्वतंत्र विचारों की अल्हड़ जवान स्त्री थी। वह रेवती के धर्म को ढकोसला कहा करती। आरम्भ में हल्के मखौलों से दोनों को विनोद भी होता। जब रेवती स्नान

समाप्त कर, पीताम्बर पहन, पूजा करने बैठती और घंटों घंटी बजाती या जोर-जोर से संस्कृत शब्दों के अशुद्ध उच्चारण करती, तब आते-जाते सुखदा हँस कर कह देती—तुम्हारे ठाकुर बहरे हैं, पहले उनके कान की दवा करो।

कभी मूर्त्ति के ऊपर चंदन-फूल चढ़ाते देख स्तुति के साथ गला मिला कर गाने लगती—पत्थर पूजे हरि मिलें तो मैं पूजूँ पाहार।

लेकिन धीरे-धीरे छेड़छाड़ ने गम्भीर रूप धारण किया। रेवती समझने लगी कि सुखदा बैर-भाव से ही उसके धर्म की हँसी उड़ाती है और उसकी प्यारी बेटी का अहित करने के लिये पूजा-पाठ में विघ्न डालती रहती है। बाँझ को दूसरे के बाल-बच्चे सुहाते भी तो नहीं। एक दिन उसने कहा—धर्म बड़े जोखिम की चीज है, छोटी बहू। सबसे पहले सन्तान पर पड़ता है। भगवान अपना बिगाड़ दिये हों तो दूसरे का भी बिगाड़ने पर नहीं लगना चाहिये।

सुखदा ने झनक कर उत्तर दिया—मैं क्यों किसी का बिगाड़ने जाऊँ? और जो चीज मुझे नहीं है उसे माँगने तो किसी के घर नहीं जाती। दूसरे के बच्चे हैं तो सुखी रहें।

इसी तरह की टक्कर आये दिन हुआ करे। रेवती को सुखदा से कोई चिढ़ न थी, वह दोनों देवरानियों को मानती थी। किन्तु किसी तरह उसकी एकमात्र सन्तान मनोरमा पर कोई बात आये यह उसे किसी भी हालत में असह्य था। सुखदा भी रेवती की इज्जत करती लेकिन जो कोई भी उसकी सन्तानहीनता पर इंगित करे उसकी वह जानी दुश्मन थी।

एक दिन सन्ध्या समय रेवती और सुखदा आँगन में बैठी हुई थीं और रेवती की बच्ची लुकवारी भाँज रही थी। वह नाचते-नाचते सुखदा के पास आ गिरी और सुलगी लुआठी सुखदा की रेशमी साड़ी से छू गई। सुखदा धड़फड़ा कर उठ खड़ी हुई। साड़ी झाड़ने के बाद उस बच्ची को कस कर एक तमाचा लगाया और बोली—आँख फूट गई है, क्या? अपने जलना हो जल, दूसरों को क्यों जलाती है?

रेवती यह देख आपे से बाहर हो गई। झपट कर लड़की को दोनों

भुजाओं में बाँध लिया और सुखदा की ओर बाघिन की तरह घूम कर बोली—खबरदार जो मेरी बच्ची पर हाथ छोड़ा। इसीलिये न कोख में राक्षस बैठा है!

सुखदा होंठ काट कर आग्नेय नेत्रों से रेवती को ओर देखती रह गई।

उसी रात सुखदा ने पति से कहा—मैं अकेले क्यों घर का काम किया करूँ? महारानी जी सारा दिन घंटी डुला डुला कर पूजा करती हैं तो क्या पुण्य का हिस्सा बाँट देंगी? ये तो सन्तान के गरूर में दूसरों पर थूकती फिरती हैं। यह नहीं जानतीं कि ऐसी संतान को भगवान उठा लेते हैं। विधवा होतीं तो इतना पूजा-पाठ सुहाता भी।

जगदत्त ने मुंह पर उँगली रख कर मना किया—छिः ऐसा न कहना चाहिये।

सुखदा बिगड़ी—मैं अच्छी तरह जानती हूँ क्या कहना चाहिये, क्या न कहना चाहिये। यह मेरे माँ-बाप भी सिखला सकते थे। मेरी शादी इसलिये नहीं हुई कि मेरे ऊपर मास्टरी हो कि यह बोलो, वह न बोलो। सब सुख तो तुम से पा चुकी, केवल शिक्षा बची हुई थी। शिक्षा भी एक मर्द दे तो औरत को अच्छा लगता है!

सुखदा की शादी हुए तीन साल हो गये पर अभी तक कोई बाल-बच्चा न हुआ था। घर-मुहल्ले की महिलाओं में कानाफूसी चला करती। बाहर की कोई औरत मिलने आती तो पहले यही पूछती—कितने बच्चे हैं? सुखदा के जखमी अँगूठे में जैसे ठेस लग जाती। उसकी अवस्था उस असहाय अपराधी की हो जाती जिसे अकाट्य प्रमाणों के बावजूद अपने को निर्दोष साबित करना है। कहती—बीमार रहती हूँ।

रेवती जेठानी की हैसियत से पूजा-पाठ की सलाह देने लगती—आखिर बेद-शास्तर सब झूठ तो नहीं न है, छोटी बहू? जो पुकारे ही नहीं उसकी गोद में बाल-कृष्ण कैसे उतर आयें?

सुखदा के लिये यह सलाह ऊँट की पीठ पर आखरी तिनके के समान हो जाती। रेवती सीधी-सादी स्त्री थी, धर्म-परायण और दयालु, लेकिन बुद्धि की ओछी थी। कहती सच्चे मन से पर ऐसे फूहड़ ढंग से कि सुखदा

को लग जाता और वह सोचने लगती कि अपनी सन्तान के गुमान में ही ये व्यंग्य कसती हैं। सन्तान का होना न होना तो अपने भाग्य की बात ठहरी, इसमें ईश्वर का ही क्या हाथ है? पूर्व जन्म की कमाई में कुछ चूक हुई होगी कि ऐसे पति से ब्याह हुआ। लेकिन जो भी हो, अपनी भरी गोद पर इस बेशर्मी से इतराना और दूसरे के दुर्भाग्य पर टिटकारी मारना, यह कहाँ का धर्म है? खैर, बच्चा जनमाने से ही तो सुख नहीं हो जाता? सूअरी के तो साल में दर्जनों बच्चे होते हैं। सुख के लिये जरूरी है कि मनुष्य के बच्चे समुचित रूप से पाले-पोसे जायँ, और इसके लिए रुपया चाहिये। सुखदा ने शपथ खा ली—मैं इस व्यंग्य का बदला लूँगी।

सुखदा उसी बिगड़े मिजाज से जगदत्त से फिर बोली—तो तुम घर सम्भालो, मैं चली। दरवाजे, खिड़की और दीवारों को जितनी शिक्षा चाहो दिया करना।

जगदत्त ने घबड़ा कर पूछा—क्या? मैं चली? कहाँ चलीं?

जगदत्त के भाव कुछ उसी तरह के थे जैसे वृक्ष को जड़ कहे, तुम रहो, मैं चली!

सुखदा—कहाँ जाऊँगी पूछते हो? कहीं भी चली जाऊँगी। मायके ही सही। या यहीं कोई कमरा किराये पर लेकर रह जाऊँगी। राह चलते एक आदमी पूछेगा, इस कमरे में कौन रहता है? दूसरा जवाब देगा, शहर के रईस जगदत्त राना की स्त्री। फिर पूछने वाला पूछेगा—क्यों? जानने वाला कहेगा—कौन जाने क्यों, लेकिन एक बात जरूर है कि औरत की शादी मर्द से होती है, औरत से नहीं। और सब लोग तुम्हें छिः छिः करेंगे।

जगदत्त चुप खड़े सोच रहे थे। उन्हें सब कुछ मंजूर था इस शर्त पर कि सुखदा उनसे प्रसन्न रहे। जिस भाग्यहीनता का इंगित सुखदा बार-बार किया करती उसके मुआवज़े के रूप में जगदत्त सुखदा पर सब कुछ न्योछावर कर सकते थे और सुखदा यह जानती भी थी। स्नेह से सुखदा का चिबुक पकड़ कर बोले—इतनी निर्दय न हो, सुखी प्रिये। भँवरा तो सिर्फ खिले फूल पर ही मँडराता है, लेकिन मैं इस कमल, गुलाब और

जुही के संयोग पर, खिले या बन्द, किसी भी दशा में मँडराता रहता हूँ।

सुखदा जगदत्त का हाथ चिबुक से हल्के झटके के साथ हटाते हुए और अपनी मुस्कुराहट को दबाते हुए बोली—चलो हटो, ठठोली से मेरी बेइज्जती और भी गहरी न करो। मुझे और भँवरे मिल जायेंगे जो मेरे नाम तक पर मँडरायेंगे, मेरी छाया पर सिर धुनेंगे, और मेरी मर्यादा के लिये तलवार भी निकाल लेंगे।

जगदत्त—ऐसे भँवरों को मैं कीट-शास्त्र के विद्यार्थी की तरह चट सायेनाइड विष की बोतल में पकड़ कर डाल दूँगा।

सुखदा—जो अपनी स्त्री की प्रतिष्ठा नहीं बचा सकता वह जवाँ-मर्दी की हेकड़ी भरे उससे अधिक हँसाई का पात्र शायद ही कोई और मिले। अच्छा अब जाओ, बहुत हुआ, मेरे सिर में दर्द है।

यह कह सुखदा ने जगदत्त को धीरे से धक्का देकर दरवाजा बन्द कर लिया।

जगदत्त सुखदा के हठीलेपन को जानते थे, वह जरा-जरा सी बात के लिये जान पर खेल जाने को तैयार बैठी रहती। अब तक जो बातें हुई थीं, उनमें खीझ के साथ विनोद भी था। यों उसे स्त्री-पुरुष के प्रणय-रस में डुबोया हुआ एक गाल छेड़-छाड़ भी कहा जा सकता था। किन्तु जगदत्त के भुक्त-भोगी मन ने भीतर पैठ चेतावनी दी। उन्हें भय हुआ कि गरम राख के नीचे शायद अंगारे धधक रहे हैं। सुखदा की मुखाकृति से भी अनुमान यही किया जा सकता था कि उसके मर्म को कहीं से चोट लगी है। ऐसी परिस्थिति में यदि वह कमरे के भीतर आत्म-हत्या भी कर ले तो कोई आश्चर्य नहीं। जगदत्त ने ढलती उम्र में यह दूसरी शादी की थी और ईश्वर ने अपनी असीम अनुकम्पा से एक ऐसी सम्पूर्ण रमणी का वरदान भी दे दिया था कि इस जीवन में इन्हें माँगने को अब कुछ न रह गया था। जगदत्त कुछ देर बाहर खड़े सोचते रहे, फिर दरवाजे को खटखटा कर बोले—सुखी, ओ सुखी, आखिर खोलो भी।

सुखदा ने पहले तो अनसुनी कर दी लेकिन जब जगदत्त ने चार-पाँच

बार खटखटाया तो झटके से किवाड़ खोल झल्लाकर बोली—क्यों तंग कर रहे हो? कह न दिया, सिर में दर्द है?

जगदत्त—सिर में दर्द-वर्द नहीं है। अगर दर्द है तो कहीं और, असली बात बताओ क्या है।

सुखदा—सोये को जगाया जा सकता है, जगे हुए को नहीं। तुम मुझसे इस तरह की बातें कर व्यंग्यों से कलेजा और भी न छेदो। रेवती रानी ने अपने किये से न अघा कर तुम्हें अपना सहायक बना कर भेजा है क्या?

जगदत्त—मालूम होता है तुमने आज भाभी से झगड़ा किया है।

सुखदा—मैं क्यों किसी से झगड़ा करने लगी? मैं हूँ ही किस लायक?
मुझे तो राह चलते जो चाहे ठोकर मार दे, जिसकी खुशी हो मुझपर थूके। मेरा अपना कौन है? अभी के लिये न कोई रक्षक, न आगे के लिये संतान-सहारा।

इन अंतिम शब्दों ने जगदत्त के गोपन मन के फफोले को जैसे छू दिया। जिस प्रकार एक अंग के अक्षम हो जाने पर दूसरा अंग द्विगुन-समर्थ हो जाता है, उसी प्रकार सुखदा के दूसरे अभावों की पूर्त्ति के लिये, उसे शेष सभी प्रकार सुखी और प्रसन्न रखने के लिये, जगदत्त के हृदय-मन ने अपनी सारी शक्तियों को बटोर लिया। बोले—कहो, तुम चाहती क्या हो?

सुखदा ने पहले ही के रूठे स्वर में उत्तर दिया—मैं चाहती क्या हूँ? यही कि मेरी मौत हो जाय, आपका कल्याण हो, और सबसे अधिक यह कि रेवती महारानी को साल में चार बच्चे हुआ करें!

जगदत्त—छिः, फिर वही बातें?

सुखदा यह सुन नागिन की तरह लपकी और जगदत्त के मुंह से अपना मुंह सटा, होंठ टेढ़ा कर, तेज आवाज में बोली—यह अपनी छिः-छिः रहने दो। धिक्कार, ताने, गालियाँ, ये सुनते-सुनते बेशर्मी का किला बन गई हूँ। मुंह पर कालिख भी पुत ही चुकी है। रेवती रानी कलेजे को इस सम्पूर्णता से बींध चुकी है कि तुम्हारे तीरों के लिये यहाँ जगह ही नहीं रही।

फिर सीधी खड़ी होकर गंभीर भाव से कहने लगी—सुनो जी, इस

घर में चाहे मैं रहूँ चाहे रेवती महारानी अपनी लाड़ली लड़की को ले कर। दोनों के लिये यहाँ जगह नहीं है।

जगदत्त ने शान्ति के छींटे दिये—दो घड़े जब एक साथ रहते हैं, सुखी, तो कभी-कभी टक्कर लगती ही रहती है। तुम समझदार हो, बात इतनी दूर न जानी चाहिये।

सुखदा—मैं समझदार हूँ इसी लिये मैंने आज बात उठाई है। यदि दो घड़े इस तरह टकराया करें कि एक को चूर-चूर हो जाना पड़े, या यों कहो कि एक घड़ा दूसरे को उठ-उठ कर अकारण मारा करे, साँझ-सबेरे कोसा करे, तब दोनों का अलग-अलग हो जाना ही अच्छा।

जगदत्त—मगर बड़े भाई से अलग होना, यह कैसे सम्भव हो सकता है? उन्हीं ने पैरों पर खड़ा किया, अपने हाथों काम सिखलाया, हमें आदमी बनाया.....

सुखदा ने बात काट कर व्यंग्य से कहा—तो आपने मान लिया कि आप आदमी बन गये? यदि यही हो जाता तो फिर रोना किस बात का!

एक क्षण बाद फिर बोली—तो आप को भाई से अलग होने को कौन कहता है? आप उनके साथ रहें, मैं अकेले अलग रहूँगी।

पूज्य भाई के जीते जी उनसे बँटवारा करके अलग रहना यह जगदत्त ने कल्पना तक न किया था। घर, धन, कारबार जो कुछ था सब बड़े भाई का अपना किया हुआ था, पैतृक सम्पत्ति तो लोहे की वह छड़ मात्र रही थी जिसके चारो ओर सीमेंट जमा कर मजबूत खम्भा या शहतीर तैयार किया जाता है। किन्तु जगदत्त के सामने अब प्रश्न था दो में एक रास्ता चुनने का। एक तो था भाई के साथ रहना और सुखदा को खो देना। हाँ, वे जानते थे इस रास्ते सुखदा को खोना ही पड़ेगा कौन जाने वह आत्म-हत्या ही करले, अथवा प्रतिशोध की प्रतिक्रिया से जगदत्त की नाक कटवाने के लिये बे-आबरूई के पथ पर उतर जाय। दूसरा रास्ता था भाई के साथ अक्षम्य कृतघ्नता करना, उस प्रिय भाई के साथ जिसके विषय में तुलसीदास ने कहा है, मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता! किस मुंह से बड़े भाई से कहेगा, मैं आपसे अलग होकर रहना चाहता हूँ? परमात्मा को जब एक दिन कर्मों की कैफियत

देनी होगी तो वह क्या जवाब देगा ? दुनिया क्या कहेगी ? राह चलते लोग उँगली दिखायेंगे और कानाफूसी करेंगे—यही न है जगदत्त, ऐसा कपूत तो शायद ही किसी के वंश में पैदा हुआ हो। किन्तु इस रास्ते वह सुखदा को प्रसन्न रख सकेगा, उस सुखदा को जो जीवन की आशाहीन, अर्थहीन घड़ियों में सार्थकता को मूर्त्ति बन उसे जिलाती आई है। और अलगाव में ही आखिर अंध लोक-मत की हिचक से सिवाय है क्या ? असली चीज तो है अपनी श्रद्धा भक्ति और पूज्य बड़े भाई का आराम से रहना। एक घर या दो घर से कुछ आता-जाता नहीं। अब भी तो अलग-अलग प्लेट में ही खाते हैं, अलग-अलग कमरे में सोते हैं। रही लोक-मत की बात तो इसके चक्कर में जो पड़ा उसकी वही दशा होती है जो बाप-बेटे और गधे की हुई थी।—बेटा चढ़े तो पिता का अनादर कहा जाय, बाप चढ़े तो लोग उसे स्वार्थी कहें, दोनों चढ़ें तो पशु के प्रति निर्दयता की दुहाई दी जाय और जब कोई न चढ़े तब लोग हँसें, देखो इन मूर्खों को, पैर ही घसीटना था तो गधा मोल ही क्यों लिया ? अन्त में जब गधे के पैर बाँध उसे पुल के ऊपर से नदी में गिरा दिया गया तब कहीं लोकमत ने सराहना की ! जगदत्त बोले—अच्छा तो अलग-अलग ही रहेंगे, लोकमत की मुझे परवा नहीं। बड़े भाई को धन का अधिकांश दे दिया जायेगा, वे कारबार में भाग न लें फिर भी मुनाफे का बड़ा हिस्सा हम उन्हें दे दिया करेंगे। उन्हें या उनकी सन्तान को किसी तरह की तकलीफ न होनी चाहिये, बस।

सुखदा ने मुंह टेढ़ा कर कहा—हमारी सन्तान नहीं है तो मुझे सुख से रहने का शायद न हक है, न जरूरत !

फिर एक क्षण के बाद व्यवसायी गाम्भीर्य से बोली—सुनिये जी, काम की बात साफ-साफ करनी होती है। बँटवारा होना है तो कायदे से हो। हम सम्पत्ति बाँटने की बात कर रहे हैं, सुख-दुख बाँटने की नहीं। सुख-दुख तो अपने-अपने भाग्य की बात ठहरी। यों आप भाई के चरणों पर लोटा कीजिये, महारानी की माँ-दुर्गे की हाँक लगाइये, उनकी लाडली

की "आया" हो जाइये, इससे बँटवारे से कोई सम्बन्ध नहीं। बँटवारा कानूनन् कचहरी से होगा।

जगदत्त ने आपत्ति की—कचहरी का कौन सा काम है? यहाँ लड़ाई-दंगा थोड़े ही हो रहा है? हम लोग आपस में सोच-समझ कर बाँट लेंगे। नाहक जग हँसाई न करनी चाहिये।

सुखदा ने टिटकारी भरी—हाँ,हाँ, जरूर। जग हँसाई से अवश्य बचाव करना चाहिये। जग तो केवल तभी नहीं हँसता जब अपनी अबला स्त्री पर बलात्कार होते देख शूर-वीर वहाँ से हट जाते हैं या आक्रमण-कारियों के ही साथ हो जाते हैं!

अन्त में यही तय हुआ कि बँटवारे के लिये कचहरी में मुकदमा होगा। कनिष्ठ भ्राता बज्रदत्त बुलाये गये। ये बेचारे अक्ल के बाजार में ठग लिये गये थे। घर में कहिये घोड़ा तो घोड़ा, फिर बाहर निकल कहिये बैल, तो कहेंगे, हाँ बैल। सुखदा ने उन्हें झट मिला लिया।

किन्तु इससे भी सुखदा को सब्र न हुआ। वह दूसरे दिन पति के साथ वकील के पास खुद गई। वकील गुलाबचन्द जी की शोहरत सभी से सुनी थी। सुखदा ने उन्हीं को ठीक किया। मुकदमा स्वयं समझा रही थी, और जब कोई कागज लाने जगदत्त कुछ देर के लिये बाहर गये तो सुखदा ने अपने ब्लाउज के भीतर से एक हजार का नोट निकाला और वकील साहेब के हाथ में रखकर बोली—फीस तो आपको मिलेगी ही, यह ऊपर से मेरे विश्वास का नजराना है। मैं यही चाहती हूँ कि रेवती को बाँट में कुछ भी न पड़े, इसके लिये चाहे जाल करना हो, चाहे झूठ गवाह खड़े करने हों। यह मैं आप पर छोड़ रखती हूँ।

वकील साहब शिवदत्त की साधु-प्रकृति को जानते थे। उत्साहित हो बोले—यह तो बायें हाथ का खेल है, बहू जी। बड़े-बड़े घाघों को पानी पिला दिया है, इस मुकदमे में तो एक निरीह गाय से पाला है। जैसा आप चाहती हैं, वैसा ही होगा।

मुकदमा दायर हुआ। सबूत के कागजात सफाई से तैयार हुए, गवाह छोले-खरादे गये। शिवदत्त को षड्यन्त्र की भनक तक न मिली।

वे बुलाये जाने पर कचहरी जाते, फिर लौट आते। उन्हें अपने भाइयों की नीयत पर पूरा विश्वास था और कचहरी का न्याय वे ईश्वर की वाणी समझा करते। लेकिन साबित यह हो गया कि शिवदत्त को अपने बसाये व्यवसाय में, खुद कायम किये कारखाने में, कोई हक नहीं। न मुनाफे का एक पैसा वे पा सकते हैं, न काम में ही हस्तक्षेप करने का अधिकार है। यह भी प्रमाणित हो गया कि शिवदत्त की जितनी लागत थी उससे अधिक वे ले चुके हैं, बल्कि संयुक्त पैतृक सम्पत्ति से भी भाइयों के हिस्से में गहरा हाथ मारा है। दोनों छोटे भाई उस समय नादान थे, समझ न सके थे।

कचहरी की न्याय-वाणी सुन शिवदत्त ने मानो पहली बार कठोर अवनी पर पैर धरे। यह नहीं कि उनके लम्बे जीवन की अनुभव-सूची में किसी ने कल्पनातीत कपट न किया हो, साफ गंगा न लाँघ गया हो। किन्तु जूलियस सीजर अपने विपक्षियों के प्रहारों से आहत भले ही हुए हों, मर्माहत तभी हुए जब अपना विश्वस्त मित्र ब्रूटस स्वयं अस्त्र ले उन्हें मारने सामने आ खड़ा हुआ! अपने प्यारे भाइयों के ही किये ये दिन देखने पड़ेंगे यह उनकी कल्पना के परे था। कुछ देर तक तो वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो उलझे भावों को सुलझाने में लगे रहे। उनकी अवस्था थी उस मनुष्य की जो अँधेरे में दुर्घटना से अचानक गिर पड़ा हो और उठ कर कपड़े संभाल चतुर्दिक् आँख फैलाये देख रहा हो कि आखिर मैं हूँ कहाँ, यह क्या हुआ? पर तुरत उनके चिन्ता-मंडित मुख-मंडल पर गम्भीर सहृदय मृदु हास्य की छटा बिखर गई जैसे काले मेघों में शीतकालीन सूर्य की किरण हो। उन्होंने दोनों हाथ उठा भाइयों को आशीर्वाद दिया और घर चले आये। शिवदत्त का ईश्वर पर अटल विश्वास था—ईश्वर ही के किये सब होता है, जो कुछ भी होता है। मनुष्य तो केवल निमित्त है। परमात्मा पिता है, सर्व-शक्तिमान दयालु पिता। जीवन देना, मार्ग दर्शाना, परिस्थितियों की सृष्टि करना, मनुष्य को धर्म अथवा पाप की प्रेरणा देना, सब उसी ने अपने ऊपर ले रखा है। फिर मनुष्य अधीर क्यों हो? अधीर होना, चिन्ता करना, ईश्वर के ऊपर अविश्वास करना है।

किन्तु ठोस अप्रिय परिस्थिति धीरे-धीरे इस विश्वास की जड़ खोदने

लगी। पास का पैसा चन्द दिनों में ही काफूर हो गया। शिवदत्त के पास था ही क्या? जो कुछ था सब व्यवसाय में लगा चुके थे। स्त्री के लिये अपनी कमाई से कभी एक गहना न बनाया था, केवल सादगी का सबक अब तक सिखाते आये थे। अपने लिये फटा-पुराना काफी था और सन्तान के विषय में उनका उसूल था कि कष्ट की तपस्या से ही मानव उन्नतमना हो सकता है। लेकिन हर चीज की हद होती है। तपस्या के नाम पर कोई अपने बच्चे को भूख से तड़पते नहीं देख सकता। बाजार की नजर इनकी आर्थिक परिस्थिति के साथ आज्ञाकारी भृत्य की तरह फिर गई! जो लोग शिवदत्त को उधार सौदा दे कर अपनी दूकान का नाम बढ़ाने को लालायित रहा करते, वे अब बहानेबाजियाँ करने लगे, और इस तोताचश्मी के साथ कि शिवदत्त अगर उनके बेपर्द झूठ का पूरा पर्दा फाश करते तो दूकानदार अवश्य ही कह देते---सौदा मुफ्त में तो नहीं मिलता।

शिवदत्त के परिवार को आर्थिक अभाव से कष्ट होने लगा। अब वे *व्यथित-चिन्तित हो उठे। स्थित-प्रज्ञ आदर्श का लंगर उनके मन को* विपरीत परिस्थिति के आलोड़ित समुद्र में स्थिर न रख सका। ग्रन्थों में पढ़ा था कि मनुष्य निरे अज्ञान के कारण विपत्ति में दुःखी होता है, यह नहीं समझता कि ममतापूर्ण सर्वद्रष्टा परमात्मा ने उसी के हित के लिये यह विपत्ति लाई है। माँ जब बच्चे को सूखे स्तन से तोड़ती है तब वह प्राण छोड़ चिल्लाने लगता है और माँ को महानिर्दय समझता है। वह क्या जाने कि दूध-भरे दूसरे स्तन में लगाने के लिये ही माँ ने ऐसा किया है! किन्तु जो भी हो, शिवदत्त के सामने जीवन-मरण की समस्या साक्षात् हो गई थी। इसमें न धर्म-ज्ञान की गुंजाइश थी न आत्म-प्रवंचना का स्थान था। दूसरा व्यवसाय खड़ा करने के लिए पूँजी की दरकार थी और यहाँ तो दो जून खाने के भी लाले पड़े थे। अब तो कहीं कोई काम मिल जाय तो मजदूरी करके गुजारा कर लें। इसी बीच मुलहाउस कम्पनी के विज्ञापन पर उनकी नजर पड़ी। जंगल उन्होंने आज तक अच्छी तरह देखा भी न था, घोर वन के भीतर रहना और काम करना सर्वथा अचिन्त्य मालूम पड़ा। किन्तु और उपाय ही क्या था? उन्होंने दरख्वास्त भेज दी।

ईश्वर की कृपा से कुछ दिनों के भीतर बुलावा भी आ गया और कम्पनी के लकड़ी कारखाने में उनकी बहाली सुपरवाइजर के पद पर हो गई।

४

शिवदत्त का डेरा-घर पोंगा के एक छोर पर जंगल के किनारे था। उसके आस-पास सिर्फ कारखाने के दो-चार कर्मचारियों की फूस की मड़ैया थीं। साहब का बँगला और किरानियों के क्वार्टर काफी दूर थे। ऐसा लगता था जैसे इन दो अलग-अलग आबादियों के बीच भूत के लोटने का अखाड़ा हो। रात में सुनसान डरावना, मानो निशाचर मुंह बाये झुक कर खड़े हों कि कोई बाहर निकला और निगल गये।

साहब का बँगला बिजली-बत्ती से जगमग रहता, ऊँचे अमलों के क्वार्टरों में भी तेज लालटेन जला करते। इससे कोई यह न अनुमान कर ले कि पोंगा विनोद की नगरी थी जहाँ शाम को चौक पर कल्लीदार कुरता पहन, गाल में गिलौरियाँ दबा, यारबाजियाँ हुआ करतीं। यहाँ न चौक था, न पान की दूकानें थीं। विशाल सघन वन के बीच पोंगा एक छोटा सा विराम-मात्र था। पैर में काँटा गड़ जाने पर या आँख में किरकिरी पड़ जाने पर जैसे शरीर में प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है कि बाह्य पदार्थ को निकाल फेंकें, उसी तरह यह वन-शरीर भैरव रूप से अपने वन-पशुओं की सेना द्वारा, मलेरिया और ब्लैकवाटर ज्वर को साधन बना, पोंगा के अनधिकार-प्रविष्टों को निकाल फेंकने पर सतत नियुक्त रहता। शाम होते ही लोग अपने-अपने घर घुस जाते, दरवाजे बन्द हो जाते। बिजली बत्तियाँ काले असीम के इस छोटे घेरे में ऐसी लगतीं जैसे माँ की गोद में से छोटा बच्चा भालू को उँगली दिखा कर चिढ़ावे।

शिवदत्त को उस दिन खाना नसीब न हुआ। समय के अभाव से और साहेब के डर से फिर रसोई न चढ़ी। रात को जब शिवदत्त सोने गये तो बहुत देर तक उन्हें नींद न आई। जंगली जानवरों से तो यों ही डर लगा

रहता था और अक्सर रात में चौंक कर वे उठ भी बैठते। जंगली हाथियों ने अभी हाल में बस्ती में घुस कर उजाड़ना भी आरम्भ कर दिया था। रात भर आस-पास के 'हो' आदिवासी अपने-अपने खेत के मचानों पर बैठे टीन पीट कर, शोरगुल मचा कर, मशाल जला कर, वन-पशुओं को भगाया करते। शिवदत्त को हर घड़ी डर लगा रहता कि कब घर के भीतर बाघ घुस आवे या हाथी झोपड़ी गिरा कर उन्हें कुचल डाले। शहर के आदमी थे, जंगल का अनुभव न था। रोज मन में सोचते, हम कहाँ आ गये, यहाँ कै दिन चलेगा? भगवान ने आर्त्त प्रार्थना सुन उबारने की दया भी की तो यही कड़ाही से निकाल कर आग में डालना था! रात्रि की घोर निस्तब्धता में भय और निराशा की लहर पर लेटे हुए वे उत्तर-हीन प्रश्नों के थपेड़े खाते रहते। कब थकावट के कारण नींद आ जाती इसका उन्हें पता भी न रहता। किन्तु समय की शुश्रूषा बड़ी कारगर होती है। सब होते हुए भी परिस्थिति के साथ शिवदत्त का धीरे-धीरे समझौता होने लगा था। उनका व्यथित मन इस नये जीवन-मंच को बहुत कुछ अंगीकार कर चुका था। लेकिन आज उनकी दबी चिन्ताओं को साहब की फटकार ने फिर उभाड़ दिया। इस दुर्व्यवहार ने उनका दिल तोड़ दिया। आज जंगली जानवरों की अनसुनी कर, उनके खतरों को भूल, वह साहब की बात ही सोच रहे थे। लाख करने पर भी, खाना-आराम हराम कर सारे दिन की कड़ी मेहनत के बावजूद भी यही इनाम? मैं तो सोच कर आया था कि इस गिरी उम्र में यह काम ले लूँ और जी-जान से परिश्रम कर उन्नति दिखाऊँ तो परिवार की परवरिश का सहारा हो जाय। मनोरमा के ब्याह के निमित्त भी कुछ-न-कुछ संचित करना आवश्यक हो गया है। उस बेचारी के लिये वैसा क्या कुछ कर सकूँगा जैसा तरक्की के आलम में मनसूबा बाँध रखा था, पर भगवान जिस तरह रक्खे वैसे ही तो रहना है। कम से कम मोटा-झोटा खाने-पहनने को तो मिलना ही चाहिये। लेकिन देखता हूँ परमात्मा यहाँ भी टिकने न देंगे। इस साहेब ने नाकों दम कर दिया। समझता तो कुछ है नहीं, लकड़ी का कारखाना शायद ही कभी देखा हो, और जो-कुछ भी करो उसी को बुरा कहता है। खाने तक का समय नहीं देता। खाना

पकाने की कभी नौबत न पड़ी थी, वह भी अब अपने करना पड़ता है। फिर भी व्यवहार ऐसा कि जैसे जानवर हाँके जा रहे हों—एक गाल पुआल लिया कि पीछे से चाबुक पड़ा।

शिवदत्त इसी चिन्ता-सागर में डूब उतरा रहे थे कि आधी रात के समय जोरों की आँधी आई और साथ-साथ पानी। जाड़े का मौसम था, झोपड़ी चूने लगी। जिधर खाट खींची जाय उधर ही बड़ी-बड़ी बूंदें टपकने लगें। जाड़े के मारे कँपकपी लग गइ। बिजली की कड़क, हवा की सनसनाहट, पेड़ों की पत्तियों पर पानी का पट्-पट् मानो प्रलय का आरकेस्ट्रा हो! एक-दो वन जन्तु भी दरवाजे पर आकर खटखटा गये। बदन समेटे, मुट्ठी बाँध, खाट और बिस्तर को हारी हुई लड़ाई के हथियार की तरह छोड़, शिवदत्त एक कोने में दबक कर बैठ गये। परिस्थिति के सम्मुख नत-मस्तक हो निर्जीव के समान वहीं बैठे रहे जब तक प्रकृति का यह ताँडव नृत्य होता रहा। जब आखिर हवा-पानी बन्द हुआ उस समय रात का तीसरा पहर हो आया था। खाट और बिस्तर सभी पानी से ओत-प्रोत हो गये थे। थोड़ी सी आग जला कर हाथ सेंके और लकड़ी के दो छालटों को एक साथ जुटा कर उसी पर लेट गये। लेटते ही घोर निद्रा ने उन्हें अपना लिया।

दूसरे दिन सुबह उठे ही थे कि बसन्ती ने आकर राम-राम किया। बसन्ती उसी कारखाने में हेड बढ़ई का काम किया करता था। उसे कम्पनी की ओर से कोई डेरा अभी तक नहीं मिला था इसलिये 'हो' आदिवासियों के टोले पर रहता था। बोला—रात तो जाने प्रलय होने लगा था। मेरे टोले पर कई घर उजड़ गये। आपके यहाँ सब ठीक है न?

शिवदत्त कई क्षण तक शून्य दृष्टि से बसन्ती की ओर देखते रहे जैसे किसी और ही दुनिया में रम रहे हों। कुछ बोले नहीं। पानी-अंधड़ की ओर उनका ध्यान उस समय भी नहीं गया था जब खाट और बिस्तर ले वे घर के कोने-कोने में आश्रय के लिये विफल चेष्टा कर रहे थे। उस समय भी नहीं जब वे आधे-भीगे सिकुड़ कर बैठे हुए रात्रि-यापन कर रहे थे। वन-जन्तुओं की क्रूरता, प्रकृति की उद्दंडता, इस नये जीवन की विषमता—

ये सभी मनुष्य की निर्दयता के समक्ष कुछ भी नहीं। जो स्वभाव-सुलभ व्यवहार है वह कितना भी कष्टकर हो, सहा जा सकता है। शरीर को उससे जितनी भी यंत्रणा हो, मार्मिक पीड़ा नहीं होती। साँप काट ले तो मृत्यु हो जाती है, फिर भी मर्माहत हो यह कोई नहीं कहता कि साँप ने अप्रत्याशित व्यवहार किया। आँधी-पानी से घर उजड़ जाय, लोग मर जाय, दैव की लीला कही जाती है। पर मनुष्य से हम मनुष्यता की आशा रखते हैं। वह जब अमानुषिक व्यवहार करता है, जब अपने दैवी गुणों का त्याग कर राक्षसी रूप धारण करता है, तब आत्मा को इतनी चोट लगती है कि शारीरिक पीड़ा उसके सामने कुछ भी नहीं। शिवदत्त ने विक्षिप्त मन को झटके से बटोरा और बसन्ती की सहानुभूति को क्षीण मृदुहास से स्वीकृत कर बोले—हाँ, भाई, रात ऐसा लगा जैसे चाहे तो हम आसमान में उड़ जायेंगे या धरती में गड़ जायेंगे। किसी तरह राम-राम करते रात कटी।

बसन्ती—मैं कल की बात सोच रहा था। यह छोटा साहब अजीब बदमाश आदमी है। किस गैरवाजिब तरह से आपको झकझोरा! आप इतना करते हैं, कारखाने की कायापलट तक आपने कर दी, फिर भी आपको हक-नाहक रगड़ता है।

शिवदत्त ने नम्र गंभीर स्वर में कहा—क्या किया जाय बसन्ती भाई, भगवान की लीला अपार है! वही बनाते हैं अमृत, वही बनाते हैं विष। साधु और खल दोनों भगवान ही के बनाये होते हैं।

बसन्ती शिवदत्त की बातें गुरु-वाणी की तरह सुना करता। शंका-समाधान के निमित्त पूछा—सो तो ठीक है, बाबूजी, लेकिन साँप का सिर कुचलना और साधु का चरण धोना यह भी तो ईश्वर ने ही हमें सिखलाया है?

शिवदत्त—हम लोग अपना-अपना कर्त्तव्य करते जायँ, दण्ड या पुरस्कार ईश्वर के हाथ छोड़ देना चाहिये। दुर्व्यवहार देख कर चित्त में हिंसा की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है, पर हमारा धर्म है उसे दबाना, उत्तेजित करना नहीं।

बसन्ती—नहीं, बाबूजी, इस भलमनसी से कलयुग की दुनिया में

काम नहीं चलने का। अभी देख रहा हूँ, अपने पर आये सह भी लूँगा। यों तो बसन्ती को लोगों ने बदनाम कर रखा है। एक आँख दिखाने वाले की दोनों आँखें निकाल लेना यह बसन्ती का साधारण नियम है। फिर भी अपने ऊपर सहूँगा। लेकिन आप जैसे साधु-पुरुष का बे-वजह सताया जाना मुझसे अब नहीं सहाता। अभी गम खा रहा हूँ, पर आसमान के रंग से मालूम हो रहा है कि बादल को एक न एक दिन बरसना ही पड़ेगा।

५

श्रीमती इथेल दास उस छावनी में अकेले नारी-जाति का प्रतिनिधित्व करती थीं। मिस्टर जेफरन तो अविवाहित थे ही, दीगर अमले कर्मचारी अपने तनहा आने पर ही पछताया करते, परिवार लाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। मनसुख दास और उनकी पत्नी का जेफरन साहब के यहाँ ही अड्डा रहा करता। यों तो अँगरेज समाज में अपनी स्त्री को साथ लेकर उस परिवार में भेंट-मुलाकात की औपचारिकता के लिये जाना मना है जिसमें कोई औरत न हो। लेकिन इस समाज-निकाले जीवन में, इस बनबास में, समाज की बारीकियों को लेकर कोई कहाँ तक जूझता फिरे? यहाँ देखने या उँगली उठाने वाला ही कौन था? अँगरेज जो कुछ भी करें वही अन्य लोगों के लिये सामाजिक औचित्य का मापदंड था। मिस्टर दास अपनी स्त्री को सूने घर में अकेले कैसे छोड़ आते और मिस्टर जेफरन ही यह कैसे गवारा करते कि अपने निकटतम वर्ण और श्रेणी की एक महिला उपेक्षित की तरह उसी छावनी में अलग रहे? जहाँ समाज का नियम है वहाँ समाज की सुविधायें भी हैं। यहाँ मिसेज दास के लिये कहाँ कोई महिला समाज था, कहाँ कोई समकक्ष परिवार ही था जहाँ स्त्रियों के साथ वे मिल-जुल लिया करें?

विशुद्ध तर्क तथा उसके सारांश के साथ भी व्यक्तित्व, अभिरुचि और

कमजोरियाँ किसी न किसी तरह गुंथ ही जाती हैं। जेफरन के तर्क में कहीं छिद्र न था किन्तु तर्क के गठन और तह में तरल भावनायें थीं इससे वे अवगत थे। जिस दिन मिसेज इथेल दास का इस पटभूमि पर आविर्भाव हुआ और जेफरन के साथ हाउ–डू–यू–डू हुआ उसी दिन कर्त्तव्य-श्रान्त परिस्थिति-क्लान्त जेफरन को ऐसा लगने लगा जैसे उनके भीतर कर्म-प्रेरणा का भाटा, सहसा, अकारण, ज्वार में परिणत हो गया। कठोर पर्वत का वेष्टन अचानक कोमल बाहु-पाश बन गया और सूखे काठ में चिड़ियों की चहक आ गई। किन्तु क्यों या कैसे, इसका विश्लेषण जेफरन के पास नहीं था। कर्मठ आदमी थे, उनका मन-प्राण अपने कर्त्तव्य-कर्म की उन्नति और विकास में केन्द्रित था। जब शहर में रहते थे तब भी क्लब या पार्टियों में बहुत कम जाया करते: अपने काम से काम और शेष समय अध्ययन या चित्रकारी में लगता। इसी कर्मनिष्ठा और कार्य-कुशलता ने उन्हें अपने पेशे में असाधारण तरक्की दी थी, और इसी कर्म-योग में संसार, ब्याह, इत्यादि सब भूले हुए थे। कला और सौन्दर्य की अनुभूति में उनका हृदय विशुद्ध आवेग से हिल्लोलित हो उठता। शायद इथेल दास के नारी रूप की कला तथा उनकी प्रकृति-सुलभ कमनीयता ने ही इस निःसंग वन-खोह में जेफरन के भावुक मन को आनन्द के ज्वार पर चढ़ा दिया, उसी तरह जैसे पर्वत पाट के ऊपर पहुँचने पर शीतल वायु के आलिंगन से उनकी थकान मिट जाती थी या जैसे लता-गुल्मों से मंडित गंभीर गिरि-गह्वर में निर्झर का सुखद संगीत सुनकर उनका मन प्रफुल्ल और शरीर स्फूर्ति-पूर्ण हो जाते थे। जो भी हो, छिपाने से कोई लाभ नहीं कि मिसेज इथेल दास को भर आँख देख लेने से आनन्द आता था और उनके सान्निध्य से श्रान्ति का शमन होता था।

शाम को रोज गोल कमरे या बाग में बैठक होती। ह्विस्की से इथेल दास को आपत्ति न था, वे भी दोनों मर्दों के साथ बराबर पिया करतीं। उठ-उठ कर वे ग्रामोफोन में नाच-बैंड के रेकर्ड लगा दिया करें, कभी बावर्ची खाने की ओर जाकर नौकरों के ऊपर शान जमा आया करें।

महीने भर के बाद एक दिन करीब आठ बजे सुबह जेफरन के घर इथेल

दास अकेले आ गई। बेयरा ने सलाम किया। साहब गोसलखाने में हैं, कहकर उसने अदब के साथ मेम साहब को गोल कमरे में बैठाया।

बेयरा के चले जाने के बाद इथेल दास चारों ओर निहार कर चुपके से जेफरन के शयनागार में घुस गई और चंचल नेत्रों से चीजों की जाँच कर फिर झपट कर आ बैठ गई। साहब गोसलखाने से निकल कपड़े पहन कर इथेल के पास आये और बोले—क्षमा कीजियेगा, आपको प्रतीक्षा करनी पड़ी।

इथेल ने मुस्कुरा कर कहा—सुख की प्रतीक्षा भी तो सुखकर ही न होती है! खैर, मैंने अकेले आने की धृष्टता क्यों की पहले इसकी कैफियत दे दूँ। मिस्टर दास घर में नहीं हैं और देर हो रही थी कहने में। आप हमारे घर कल रात डिनर खाने की कृपा करें।

जेफरन—निमंत्रण के लिये सैकड़ों धन्यवाद। लेकिन आपके अकेले आने में धृष्टता की कौन सी बात है? यहाँ इतने सामाजिक शिष्टाचार और नाप-जोख की क्या आवश्यकता? घर आपका है, जब चाहें आवें जायें।

इथेल—इसका दावा मैंने आपके कहने के पहले ही कर लिया है। मगर आपकी बद-इंतजामी देखकर बड़ा दुःख होता है। आप रहते हैं चीज फेंक-फांक कर उस छोटे बच्चे की तरह जिसकी देख-भाल करने वाला कोई नहीं।

जेफरन—क्यों? देखिये गोल कमरा, बरामदा, फुलवारी सब कितने यत्न से सजाये हुए हैं?

—और शयनागार?

—मेरे शयनागार का आपको क्या पता?

इथेल ने भेद भरी मुस्कान से जेफरन को एक क्षण देखा और बोलीं—मैं देख आई हूँ अच्छी तरह जब आप गोसल में थे।

जेफरन की कर्म-कठिन मुद्रा पर भी स्मित हास्य की छटा बिखर गई। विनोद की तर्जनी उठाकर गोपन-स्वर में बोले—बुरी बात!

इथेल—मैं बच्चों से बुरी बात या अच्छी बात की शिक्षा नहीं लेना

चाहती। आप जिस समय नहीं रहेंगे उस समय एक दिन आकर सब ठीक-ठाक कर जाऊँगी। बेयरा को कह रखियेगा।

जेफरन—यह क्या जरूरी है कि जब मैं नहीं रहूँ तभी यह काम हो? शिल्पी को सहायक की आवश्यकता होती है, मैं औजारों को चूम-चूम कर अपने स्वप्न सुन्दर शिल्पी के हाथों में निस्स्वार्थ दास की तरह देता जाऊँगा।

इथेल खिल पड़ीं। होठों को सटा, उनपर दो उँगलियाँ रखकर सिसकारी में बोलीं—च्... .. उ.. . . प्।

इथेल जाने को घूमीं तो जेफरन ने कहा—इस जंगल में रोज गुडबाई का शेक-हैंड करके जाना चाहिये। कौन जाने कल रहें या न रहें।

यह कह उन्होंने इथेल की कलाई पकड़ ली और नाजुक उँगलियों को जोर से दबा कर छोड़ दिया।

यह गुडबाई का शेकहैंड न था। इथेल को रोमांच हो आया। मुस्कुरा कर वे भेद भरी दृष्टि से जेफरन को कई क्षण देखती रहीं फिर जेफरन की तरह ही विनोद तर्जनी दिखा कर बाँकी अदा से बोलीं—बुरी बात!

यह कह इथेल ने संशक भाव और चंचल लोचनों से दरवाजे की ओर देखा और झपट कर कमरे से भाग गईं।

महीना और बीता। एक दिन ग्रीष्म की संध्या, खिली चाँदनी उदार हृदय की तरह दिगन्त में बिखरी हुई। तीन की पूरी गोष्ठी जेफरन की फुलवारी में बैठी हुई थी। हुस्नहेना की मधुर सुगन्ध प्रेयसी की भाव-भंगिमा की तरह हृदय पर लोट रही थी। कुछ दूर पेड़ पर कठफोड़वा पक्षी टक्-टक् का एकतारा बजा रहा था। कुछ और दूर पर एक कोटरा (बकरी के कद का एक हिरन) कुत्तों के समान रह-रह कर भूँक रहा था। छावनी में निस्तब्धता छा गई थी। कहीं-कहीं अमलों के क्वार्टरों में खिड़की से लालटेन की रोशनी नजर आ रही थी, पर शब्द कहीं न था। मालूम होता था जैसे प्रकृति की इस रंगशाला में अरण्य और शैल-शृंखल का शब्द-हीन गानगुंजन सुनने के लिये ही मनुष्य-प्राणी कान लगाये चुप बैठे हुए हैं।

अपने साधारण नियम के अनुसार मिस्टर मनसुख दास थोड़ी देर में ही उठ खड़े हुए और जरूरी काम के कारण क्षमा-प्रार्थना कर चले गये। अपनी पत्नी से कहते गये—मुझे करीब एक-डेढ़ घंटा समय लगेगा काम से निपटने में, तुम तब तक मिस्टर जेफरन से बातें करो। इन्हें पकड़ो कि जंगल की आश्चर्य घटनायें सुनाइये। फिर जेफरन की ओर देखकर स्मित हास्य से बोले— ये कहते जल्दी नहीं हैं। मगर इनके पास रोमांचकारी घटनाओं का भण्डार है।

मिस्टर दास के जाने के बाद ही जेफरन ने इथेल दास से कहा—आप अजगर साँप की कहानी सुनियेगा?

इथेल ने अपनी कुरसी से दो इंच उठकर इस तरह दोनों हाथों से रोकने-हटाने का भाव किया जैसे साक्षात् अजगर साँप से ही अपनी रक्षा कर रही हों—नहीं, नहीं मत कहिये, मैं रात में सपना देखूँगी। दिन में कहियेगा। ईश्वर के लिये अभी मत कहिये।

कई क्षण के पश्चात् मानो साँप की विपत्ति से निश्चिन्त हो वे मुस्कुराईं और मृदु-मादक स्वर में बोलीं—अँधेरी रात जीव-जन्तुओं के लिये हो सकती है, लेकिन चाँदनी, यह कवित्व-मय चाँदनी, मनुष्य के लिये ही बनी थी। देखिए मैं इस अनुपम ज्योत्स्ना में कैसी लग रही हूँ!

जेफरन ने ह्विस्की का पेग उठाते हुए कहा—बहुत अच्छी।

फिर चुस्की लेने के बाद ग्लास रखते हुए—आप दिन में जैसी लगती हैं या बिजली की रोशनी में, उससे जरा भी कम नहीं।

इथेल दास हताश क्षुब्ध हो चुप बैठी रहीं।

कुछ देर की निस्तब्धता के पश्चात् इथेल ने कहा—चलिये जरा टहल आयें। मगर दिन में जैसा लगता है आपको वैसा ही लगेगा, इसलिये धूप से बचाव के लिये छाता ले लीजिये! रहिये मैं ला दूँ।

यह कह वे बरामदे की ओर चलीं। जेफरन ने चुपके से उठकर उनकी कलाई पकड़ी और इतनी जोर से झटका कि इथेल उनके सामने नाच गई। फिर कोमलता से उनकी उँगलियों को धर कर बोले—आइ ऐम सॉरी।

इथेल सिर उठाये, चकित चक्षुओं से, जेफरन का मुंह ताक रही थीं। पेश्तर इसके कि वे कुछ बोल सकें जेफरन ने उनके बायें कंधे पर अपना दाहिना हाथ रख दिया और उन्हें घुमा कर साथ-साथ चलने लगे। इथेल ने चलते-चलते कहा—नॉटी!

मुरम के रास्ते पर अबरख-मिश्रित क्वार्ट्ज पत्थर के टुकड़े चाँदनी में चमक रहे थे। इथेल ने कहा—ये पाषाण-पत्थर भी ज्योत्स्ना से द्रवित-उत्फुल्ल हो उठे हैं। पर कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जिनके लिये प्रकृति की यह सुकुमार देन दिन या बिजली की रोशनी की अभाव-पूर्ति मात्र है!

जेफरन—मनुष्य में संयम है, इन चमकते प्रस्तर-कणों में संयम का अभाव है। रोशनी पड़ी, चमक उठे। अँधेरा आया, काले पड़ गये। मनुष्य दिखलाता कम है, संयम करता है अधिक।

पाँच-छः मिनट के बाद एक पहाड़ी स्रोत मिला। उसी के किनारे चट्टान पर इथेल और जेफरन बगल-बगल बैठ गये। विविध आकार-प्रकार के शिलाखंड जल-धार का अवरोध किये जहाँ-तहाँ डटे हुए थे। धावमान जल एक पत्थर के ऊपर उछल-उछल कर जा पड़ता था और दुग्ध-मय फेनिल हो चाँदी के चंचल तबक सा बिछ जाता। दूसरे पत्थर पर अशान्त पानी टकरा का आकाश की ओर बाहें फैलाये हुए उठता और चाँद से चाँदनी छीन-छीन कर स्रोत में बिखेरता। क्रीड़ामयी स्रोतस्विनी प्राण खोल चाँद के साथ खेल रही थी। इथेल ने स्रोत की ओर एक टक ताकते हुए कहा—निर्जीव निर्झर भी चाँदनी में चहक उठा है मगर मनुष्य.....

जेफरन—निर्झर अपने कर्त्तव्य को बिना भूले ही ज्योत्स्ना का उपभोग करता है। विहँसती चाँदनी हो या विकराल अंधकार, सुनसान हो या शहर, जल-स्रोत निरन्तर अपने गन्तव्य की ओर धावमान रहता है।

कुछ देर दोनों चुप रहे। अन्त में जेफरन बोले—अब चलना चाहिये, डिनर का समय हो आया।

इथेल ने अरुचि के स्वर में व्यंग्य से कहा—एक रात भी आप डिनर का समय नहीं टाल सकते! ऐसी रात में भी कुछ लोगों को पेट की ही सूझती है, हृदय और मन उनके लिये कोई चीज नहीं!

जेफरन ने गंभीर मुद्रा से उत्तर दिया---इस निर्झर से हमें शिक्षा क्या मिलती है ? कर्त्तव्य की ही तो ? डिनर का समय टल जाने से सुबह बदन में अँगड़ाई आती है और काम में हर्ज पहुँचता है।

एक क्षण के बाद जरा हँस कर जेफरन बोले---और मिस्टर दास ने भी आपको एक घंटे का ही समय दिया था !

इथेल---मिस्टर दास के विषय में क्यों आप चिन्ता कर रहे हैं ? वे तो आपके मातहत ठहरे, और कुछ दूर तक मेरे भी। वे कह गये सिर्फ इसलिये कि कुछ कहना था।

जेफरन उठ खड़े हुए और इथेल से चलने को कहा। इथेल नखरे से बोलीं---मुझसे तो उठा नहीं जाता, आप मेरा हाथ खींच कर उठा दें।

इथेल ने दाहिना हाथ बढ़ाया। जेफरन ने कलाई खींची। खींच कर खड़ा करने भर की ही जेफरन ने अन्दाज से ताकत लगाई थी मगर इथेल रबर की फूली हुई गुड़िया की तरह वक्ष-स्थल ताने हुए जेफरन के सीने पर धक् से आ गिरीं। क्षण के भीतर ही अलग होकर मुस्कुराती हुई बोलीं---क्षमा कीजियेगा, आपको चोट लग गई होगी।

जेफरन ने गंभीर अभेद्य हँसी हँस कर कहा---हम कठिन काठ के कारबारी हैं, मुझे इस चोट से क्या होगा ? मगर हाँ, जब पेड़ अपनी ओर गिरने लगता है तब हम सावधान हो जाते हैं !

निःशब्द दोनों बँगले पर लौटे। इथेल वहाँ से बिना बोले ही अपने घर चली गईं। कई दिनों तक वे जेफरन के बँगले पर न आईं।

६

कम्पनी का लकड़ी-कारखाना चल रहा था। शिवदत्त ने अपने को इस नये कर्त्तव्य-जीवन में लीन कर दिया। सुबह से शाम तक जब देखो काम में लगे हुए हैं। रात को नई योजनायें सोचा करते। यों तो बिना इतनी मेहनत किये भी उनकी जिम्मेवारी अदा हो जाती, जो काम मिला कर दिया,

फिर आराम से सोयें-बैठें। नौकरी की शर्त यही थी। बल्कि जैसी परिस्थिति थी उसमें अपने-अपने उत्तरदायित्व का दायरा जितना छोटा रखा जा सके उतनी ही खैरियत थी। किन्तु शिवदत्त का अपना सिद्धान्त था कि मनुष्य तभी सुखी हो सकता है जब वह अपने को कर्त्तव्य में और परहित में खो दे। परहित की क्षमता तो भगवान ने छीन ली, किन्तु कर्त्तव्य किसी भी दशा में सच्चाई और मन-प्राण से सम्पादित किया जा सकता है। कर्त्तव्य ही साधना और साध्य दोनों है। बाहरी फल जो भी मिले, आनन्द जो जीवन की खोज है, इसी में निहित है।

कारखाने में तरह-तरह के उपस्कर (फर्निचर) शिवदत्त ने बनाना आरम्भ कर दिया था किन्तु बिक्री का कोई प्रबन्ध अभी तक न हो पाया था। इस वन-खोह में खरीदने आवे कौन, और जानकारी ही किसे थी? एक-दो बार शिवदत्त ने छोटे साहब से इसके विषय में कहा तो उन्होंने अपने ऊपर खतरा समझ टाल दिया। बोले—यह तो कम्पनी के डाइरेक्टरों का काम है, मेरा या आपका नहीं। कोई भी नया प्रस्ताव लाया जाय मिस्टर मनसुख दास अपने ऊपर आक्रमण समझते। सोचते, अधिक काम करना पड़ेगा, जिम्मेदारी बढ़ेगी, पता नहीं कहाँ फँस जायँ, यह आदमी मुझे फँसाना ही चाहता है। निर्माण की गति में परिणामतः अवरोध आ गया था। बिना बिक्री के व्यापार क्या चले? शिवदत्त बड़ा साहब जेफरन के पास कभी न जाते क्योंकि इनका वास्ता कम्पनी के नियमों के अनुसार केवल छोटा साहब से ही था। कभी कभी जब छोटे साहब की अकर्मण्यता से उद्विग्न हो जाते तो जी चाहता, जो हो चल कर जेफरन से कहें, वे, अवश्य कम्पनी के हित का ख्याल करेंगे, लेकिन याद आ जाता किस तरह जेफरन साहब मनसुख दास की स्त्री के हाथ में हैं और मनसुख दास उसी अपनी ताकत की घोषणा भी कई बार कर चुके थे। और कोई रास्ता न देख उन्होंने कई व्यापारियों के साथ लिखा-पढ़ी आरम्भ कर दी। वे बहुतेरे व्यापारियों को पहले से जानते भी थे। डाक खर्च का सारा भार खुद सहा करते लेकिन बहुत दिनों तक कोई फल न हुआ।

एक दिन अचानक एक बड़े व्यापारी पटने से आ पहुँचे। शिवदत्त का

नाम पूछते-पूछते कारखाने गये तो शिवदत्त ने समुचित आदर-सत्कार के साथ उन्हें बैठाया। जिस कुरसी पर वे बैठे उसे दिखा कर शिवदत्त से पूछा—यह कुरसी आप लोगों ने कहाँ से मँगायी है ?

शिवदत्त—यह तो यहीं की बनी हुई है। डिजाइन मैं अपने साथ लाया था और नया पालिश यहाँ के विविध वन-पदार्थों द्वारा बड़ी उधेड़-बुन के बाद मैंने निकाला।

व्यापारी—यह तो काल की कुरसी है, सुपरवाइजर साहब। सच कहता हूँ, शहरों में न तो ऐसी पोख्ता लकड़ी ही मिलेगी, न ऐसा पानीदार पालिश। यह लकड़ी तो आप मोटे-मोटे बोटों के बीच से निकालते होंगे, बहुत सी कच्ची लकड़ी बाद देकर।

शिवदत्त हँसे—हाँ, ऐसा ही पहले होता था, लेकिन मैं अब उन्हीं टुकड़ों से अधिकतर काम लेता हूँ जो चालान की लकड़ी से काट कर फेंक दिये जाते थे।

पियाशाल लकड़ी का एक टुकड़ा हाथ में ले और एक सुन्दर आलमारी दिखा कर बोले—ऐसे ही टुकड़ों को चिरवा कर, जो जलावन के सिवा और किसी काम में न लाये जाते थे, मैंने यह आलमारी बनाई है।

व्यापारी यह करामात, यह सूझ और कर्म-निष्ठा देख कर चकरा गये। पूछा—कंपनी से आपको बिक्री या मुनाफे पर कितना बोनस मिलता है ?

शिवदत्त ने उस भाव से कहा जैसे यह निर्णय उन्हीं ने सानन्द किया हो—कुछ नहीं, मुझे तो अपना वेतन मिलता है, बस।

व्यापारी—फिर भी आप इतनी सेवा करते हैं जिसे मैं निस्स्वार्थ सेवा ही कहूँगा। आपकी प्रतिभा के लोगों को तो कम्पनी को हिस्सेदार बनाना चाहिये।

चीजों के दाम पूछ कर व्यापारी फिर बोले—मैं कुरसी, आलमारी इत्यादि बेचने की आढ़त ले सकता हूँ। इन दामों में काफी बिकेंगी। कम्पनी कितना कमीशन देती है ?

शिवदत्त—अभी तो कमीशन वगैरह कुछ ठीक ही नहीं हुआ। यहाँ का छोटा साहब, जिसके ऊपर इस कारखाने का भार है, कुछ करता ही नहीं।

उसकी नौकरी का मुख्य स्तम्भ है उसकी फिरंगी औरत और उसके काम के तरीके हैं एक ओर आत्म-गौरव विहीन निर्लज्ज खुशामद, दूसरी ओर पाशविक दुर्व्यवहार, और बीच में कर्त्तव्य से पलायन। जिम्मेदारी से तो ऐसा भागता है जैसे साँप से। मैं जो कुछ सुझाव देता हूँ सभी को ठुकरा देता है। किसी भी रास्ते काम आगे बढ़ने नहीं देता। ऐसी परिस्थिति में मुझे अपने ऊपर खतरा ले कर काम करना पड़ता है। मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि मेरे नये तरीके से इस आदमी का विरोध और हिंसा जाग्रत होती है, लेकिन क्या करूँ, ईमान नहीं मानता। अपनी आँखों के सामने काम खराब होते देख असह्य हो जाता है और अपने कर्तव्य को मनसा, वाचा, कर्मणा, सम्पूर्ण रूप से सम्पादित न करूँ तो ईश्वर के दरबार में अपराधी बनना पड़ेगा। मगर खैर, मैं भी क्या आप के सिर पर अपने दिल-दिमाग का मवाद उड़ेलने लगा! आप छोटा साहब से बात करके देखें। आढ़त का ठीक हो जाय, बिक्री शीघ्रता से बढ़ती चले, तो हम लोगों को भी काम में और उत्साह होगा। मैं इसीलिये अपनी ओर से कितने दिनों से लिखा-पढ़ी कर रहा हूँ।

व्यापारी जी मिस्टर दास के बँगले पर गये। उनके साथ शिवदत्त भी थे। कार्ड भेजा गया। काफी देर की इंतजारी के बाद साहब निकले और बिना बैठाये ही उन्होंने रूखेपन से पूछा—क्या चाहिये?

साथ ही साथ शिवदत्त की ओर आँख घुमा कर बोले—और आप क्यों काम के वक्त सैर करते फिर रहे हैं? कितनी बार चेतावनी दी जाय?

व्यापारी ने अपना मन्तव्य पेश किया। मनसुख दास बेसब्र हो गये—आप से हमें अक्ल सीखनी होगी तो दरख्वास्त आपके पास पहुँच जायेगी। अभी तो हमारी कम्पनी को न अक्ल की कमी है और न अढ़तियों की ही जरूरत है। जो कुछ हो आप लिखा-पढ़ी में आइये।

फिर शिवदत्त की ओर घूम कर बोले—और आप भले आदमियों को गलत रास्ते दिखाते फिरते हैं?

यह कह वे उत्तर की प्रतीक्षा न कर भीतर चले गये और जोरों से दरवाजा बन्द कर लिया। मिसेज इथेल दास भी खिड़की से झांक-झांक कर

इस तरह देख रही थीं जैसे अमंगल टाल रही हों। उन्होंने भी झटके से खिड़की लगा ली।

शिवदत्त के लिये यह अप्रत्याशित न था। पूर्ण शान्ति के साथ वे व्यापारी से बोले—आपने अपनी आँखों देख लिया न ? मुझे इसी की खुशी है। चलिये चलें जेफरन साहब के यहाँ। अब दूसरा कोई उपाय नहीं दीखता। वे कम्पनी के प्राण हैं और काम ही उनका भी प्राण है। यही कि जरा इस छोटे साहब के हथकंडों के कारण इनमें कुछ मानसिक लाचारी आ गई है।

जेफरन ने इन दोनों का स्वागत किया, बैठाया और चाय-पानी के लिये पूछा। आढ़त के प्रस्ताव पर बड़े प्रसन्न हुए। यह कारखाना उन्हीं का मानसपुत्र था। अपने विस्तृत कार्य-क्षेत्र में जहाँ तक समय मिलता इसी की उन्नति में लगाते। सुपरवाइजर के पद पर शिवदत्त की बहाली के बाद और इनकी कार्य-कुशलता देख जेफरन साहब बहुत कुछ निश्चिन्त हो गये थे। और जब खास कारखाने को देख-रेख के लिये मुख्यालय ने मिस्टर मनसुख दास को भेज दिया तब तो रही-सही चिन्ता भी चली गई। लेकिन दस आया और नौकरों के रहते भी अपने बच्चे को स्वयं न सँभाले तो मन संतुष्ट नहीं होता। नये कारखाने में जेफरन का जी पहले ही की तरह लगा रहा। प्रस्तुत उपस्करों की बिक्री का अभी तक कोई उचित प्रबन्ध न हो पाया था, और यही अपूर्णता जेफरन के बिस्तरे का काँटा बनी हुई थी। व्यापारी का प्रस्ताव सुना तो मानो माँगा वर पा गये। कमीशन की बात उठी। अभी तो बिक्री जमाना था, मुनाफा आरम्भ में कम ही सही।

व्यापारी ने कहा—नया कारबार है, साहब, सिलसिला बैठाना होगा, एजेंट ठीक करने होंगे। आम जानकारी के लिये विभिन्न प्रकारों से प्रचार करना पड़ेगा। आरम्भ में कमीशन काफी मिलेगा तो मेरा और मेरे एजेन्टों का उत्साह बढ़ेगा। बिक्री के विषय में तो मुझे तृण भर भी सन्देह नहीं, हाँ जानकारी फैलाने के लिये मशक्कत करनी पड़ेगी जरूर। मेरी तो हार्दिक लालसा है कि आपके कारखाने की कुरसी, टेबुल, आलमारी, तिपाई, स्टूल, इत्यादि देश में घर-घर पहुँचे। हमारे जंगल की लकड़ी राष्ट्र की

सम्पत्ति है, क्यों न इसका समुचित उपयोग किया जाय ? और मैं तो विशेष कर शिवदत्त जी की जादूगरी से आकर्षित हूँ कि ये उन्हीं टुकड़ों से कीमती फर्निचर बना डालते हैं जो पहले फेंक दिये जाते थे।

जेफरन ने आनन्द-अभिमान से शिवदत्त की ओर देखा।

कमीशन बीस फी सदी ठीक हुआ। जेफरन ने वहीं कागज निकाला, शर्तें लिखी गईं, और उभय पक्ष ने हस्ताक्षर कर दिये। शर्त यह थी कि जो चीजें कारखाने में बनें सभी दाम के टिकट के साथ व्यापारी के यहाँ पटने भेज दी जायँ। व्यापारी की एक शाखा मुजफ्फरपुर में भी थी। पटने से ही वहाँ भी माल पहुँचने का प्रबन्ध हुआ। एक प्रान्त के हर शहर में दूकान खुल जाने के बाद अन्य प्रान्तों में भी फैलाने की योजना थी।

व्यापारी जी शिवदत्त के साथ जंगल में लकड़ी की कटाई-छँटाई देखने गये। देख कर दंग रह गये कि कितनी ही लकड़ी नुकसान जाती है। पेड़ों से चुनिन्दा माल ले लिया गया है और बाकी तमाम यों ही पड़ा हुआ है। किसी-किसी वृक्ष का एक हिस्सा काम में लाया गया है, शेष तीन भाग फेंक दिया गया है। जहाँ-तहाँ ऐसे भी कटे हुए पेड़ पड़े सड़ रहे हैं जिनसे कुछ भी नहीं लिया गया है। व्यापारी जी चिन्तन-शील देशभक्त थे, बोले—जिस देश में राष्ट्र-सम्पत्ति का इस तरह दुरुपयोग किया जाय वह देश कैसे उन्नत हो सकता है ?

कई क्षण के पश्चात् उन्होंने शिवदत्त से पूछा—यह लकड़ी क्यों नहीं उन अंचलों में भेजी जाती जहाँ जंगल नहीं है ? वहाँ तो लोग इसे सोना समझेंगे। यहाँ ढेर की ढेर लकड़ी बरबाद जाय और वहाँ जनता तरसा करे ! इस नीति में जरूर कहीं न कहीं त्रुटि है।

शिवदत्त—भेजने में अधिक खर्च पड़ जाता है, दाम से ज्यादा, इसी लिये कोई नहीं ले जाता।

व्यापारी—आरम्भ में खर्च अधिक पड़ेगा, पर मेरा विश्वास है कि धीरे-धीरे खर्च कम करने का रास्ता निकल आयेगा। मुझे तो राष्ट्र-धन का यह अपव्यय असह्य मालूम होता है।

फिर शिवदत्त को श्रद्धा-दृष्टि से देख कर बोले—आप देश-कल्याण

का काम कर रहे हैं, सुपरवाइजर जी। भले ही यह निकम्मा दुष्ट छोटा साहब आप के पथ में बाधा डालता रहे, अन्त में आप अवश्य सफल होंगे।

व्यापारी के चले जाने के बाद शिवदत्त द्विगुन उत्साह से काम में भिड़ गये। शारीरिक परिश्रम में कोताही तो उन्होंने कभी की ही नहीं थी, लेकिन प्रस्तुत माल न बिके तो वह कारीगर की छाती का भार बना रहता है, उसकी साँस भी बन्द करने लगता है। दौड़ कर शिवदत्त ने बसन्तो को सम्वाद सुनाया, बसन्तो ने नाचते हुए आम जानकारी के निमित्त इस शुभ समाचार को प्रसारित किया। छावनी में चतुर्दिक हर्ष-ध्वनि उठी। यों तो साधारण कारीगर को दिन भर के परिश्रम के पश्चात् अपनी मजदूरी से मतलब, उसे क्या दिलचस्पी माल खपत की किसी योजना या व्यवस्था में? किन्तु शिवदत्त का निस्स्वार्थ उद्यम इतना प्रभाव-कारी था कि सभी कारीगर कम्पनी का काम अपना निजी काम समझने लगे थे।

सन्ध्या समय शिवदत्त के डेरे पर प्राय: रोज बैठक होती। बसन्ती कारखाने से लौट कर अपने टोले पर चला जाता, और हाथ-मुंह धो कर कुछ नाश्ता के बाद शिवदत्त के घर चला आता। शिवदत्त उसकी बोली के आदमी थे, कभी रामायण की चर्चा होती, कभी शिवदत्त से महाभारत की कथायें सुनने को मिलतीं। बाकी जितने कारीगर थे सभी या तो "हो" थे, या बोनाई के ओनझर के उड़िया-भाषी। मैत्री-भाव तो सभी से था किन्तु शिवदत्त अपने घर के आदमी सरीखे लगते थे। बुद्धि-ज्ञान में वे इतने ऊँचे भी थे कि बसन्ती गुरु-दीक्षा के लिये अनायास उनकी ओर खिंच गया था। जितनी देर वह शिवदत्त के यहाँ रहता उसे ऐसा अनुभव होता मानो किसी महात्मा के आश्रम में धर्म-संगत कर रहे हों। कारखाने के और भी कारीगर आया करते थे जिनमें प्रमुख थे जम्बीरा हो, परदन हो, गोपाल नायक और सुखु गौड़।

विविध प्रसंगों के बीच छोटे साहब की चर्चा घूम-फिर कर आ ही जाती। शिवदत्त अल्पभाषी और नियन्त्रण-शील पुरुष थे। वे छोटे साहब की बात इस मंडली में बिरले ही उठाते। बल्कि चर्चा छिड़ने पर दूसरों को

सहिष्णुता तथा अहिंसा पर विनयपूर्ण शिक्षा दिया करते। लेकिन आज उनके अन्तर में एक ओर आनन्द और दूसरी ओर ऊमर्ष के मध्य ऐसा तुमुल युद्ध छिड़ा हुआ था कि वे अपने को सम्भाल न सके। व्यापारी के साथ शर्तनामे की बात और छोटे साहब का कुव्यवहार सविस्तार सुना गये। अन्त में बोले—-इस तरह का मुफतखोर मैंने कभी नहीं देखा था। जिसकी रोटी खाते हैं उसकी बढ़ती न करना बेईमानी नहीं तो और क्या? भाग्य की बात तो यह है कि उनके लाख न चाहने पर भी सौदा ठीक हो ही गया। नफा कम्पनी को होगा किन्तु आत्मा तो हमारी जुड़ायेगी कि हमने अपना निस्स्वार्थ कर्म किया।

बसन्ती ने मुस्कराते हुए कहा—मुफतखोर ही कैसे कहें, रानाजी? हम तो अकेले काम करते हैं, वहाँ मरद-मेहरिया दोनों! बल्कि कहा जाय तो मेहरिया ही इंजन है, ये महाशय खाली डब्बा भर!

इस पर सभी हँस पड़े।

शिवदत्त ने गंभीर भाव से आपत्ति की—-स्त्री जाति हमारी माँ है, बसन्ती। हमें किसी भी दशा में माताओं के गौरव पर छींटा-कशी न करनी चाहिये।

गोपाल नायक—-मगर देखिये न, बाबूजी। जब भी आता है, बुरा बर्ताव करता है। काम में कोई दोष नहीं, फिर भी डैम कहता है, तलब काटने की धमकी देता है। और उसकी औरत भी कभी कभी आती है। उसके साथ। जब यह गाली देता है तब वह हँसती है। जी तो चाहता है लुआठी लगा दें मुंह में, मेम है तो क्या!

शिवदत्त ने फिर शान्ति की माँग की।

जम्बीरा हो—-मेरा तो तीन दिन का तलब काट ही लिया, उसी औरत के कान में कुछ कहने पर।

शिवदत्त ने विषय पलटा—-अच्छा आप लोग सोच कर बतायें कि इस वन-सम्पत्ति से राष्ट्र को कैसे अधिक से अधिक लाभ हो सकता है। मैं तो दुःख के साथ देख रहा हूँ कि मोटी-मोटी लकड़ी ही, सो भी अधिकतर शाल की ही, काम में लाई जाती है, शेष सभी लकड़ी बरबाद जाती है।

बसन्ती ने उत्साह से कहा—एक तो यही उपाय है जो आप ने कारखाने में लागू किया है। इस तरह के और भी कारखाने खुलें तो लकड़ी के छोटे-बड़े टुकड़े सभी साधारण व्यवहार की चीजें बनाने के काम में आ जायँ। इन चीजों की कितनी कमी है!

शिवदत्त—ठीक कहते हो, बसन्ती भाई। मेरा तो खयाल है कि जलावन भी हम वन-हीन अंचलों तक पहुँचा सकते हैं। व्यापारी जो कह रहे थे कि आरम्भ में अधिक खर्च बैठेगा लेकिन धीरे-धीरे अनुभव होने पर खर्च घटाया जा सकता है। वे तो यहाँ तक कहते थे कि खर्च बिक्री के दाम से कुछ अधिक भी पड़े तब भी इस फेंकी हुई लकड़ी को काम में लाना चाहिये। बड़े अनुभवी और देशभक्त मालूम हो रहे थे।

परदन हो—यह फेंकी हुई सूखी लकड़ी गरमी के दिनों में जंगल के भीतर आग लगने पर जल भी तो जाती है।

सुखु गौड़—चोप से रस्सी भी बन सकती है जितनी चाहें। अगर ऐसा प्रबन्ध हो कि सरकार या कोई मातवर व्यापारी बनाने वालों के घर-घर से या नजदीक के हाटों से बनाई हुई रस्सी या काठ के बर्तन, खिलौने, वगैरह खरीद लिया करे और शहरों में बेचने का इंतजाम करे तो लोग और भी अधिक बनावें। अभी तो बेचने में दिक्कत होती है इसीलिये बनाने में रुकावट है।

शिवदत्त—दवा की जड़ी, बूटी, चिरेता, त्रिफला, अनन्तमूल इत्यादि भी तो कितने तरह के धन इन जंगलों में भरे पड़े हैं, लेकिन इनका पूरा व्यवहार नहीं होता।

सुखु—ये सभी चीजें भी जोरों से जमा होने लगें अगर घर-घर से कोई खरीद ले। अनगिनत लोगों को रोजी का भी रास्ता इससे निकल आयेगा। बूढ़ी औरतें, बच्चे, जो कठिन परिश्रम नहीं कर सकते वे भी इन पदार्थों को इकट्ठा कर कुछ कमा ले सकते हैं। शर्त लेकिन यही है कि ज्यों ही चीज जमा हो कोई उसे घर-घर जाकर खरीद ले और उचित मजदूरी दे दे। सरकार करे या जो भी।

शिवदत्त—हाँ, भाई, हमारा देश अभी बहुत पिछड़ा हुआ है, अनेक

साधनों द्वारा इसकी उन्नति करनी है। हम ईश्वर के दिये अपने अतुल वन-वैभव को पहचान नहीं पाये हैं। हम अपने को गरीब कहते हैं और इसमें गौरव का बोध करते हैं। गरीब तो हम रहेंगे ही, यदि अपने धन को बरबाद करते रहें, इसका उचित उपयोग न करें।

कुछ देर सभी चुप रहे। शिवदत्त ने आँखें घुमाई और भूली हुई बात को याद करते हुए जम्बीरा हो से पूछा—और कहो जम्बीरा भाई, जंगली सूअरों का क्या हाल है? अब भी तुम्हारा सकरकंद खराब करते हैं क्या?

जम्बीरा—हाँ, बाबूजी, रोज रात में आते हैं। आधी रात तक तो मेरा लड़का झामड़े में जागता और हल्ला करता रहता है, फिर मैं बैठता हूँ। जगे रहे और अँजोरिया रही तब तो किसी तरह भगाया नहीं तो हम बैठे ही रहते हैं और दल के दल सूअर घुस कर सारा सत्यानाश कर डालते हैं। परसों तो सोमरा पाहन की गाय बाघ ले गया। अब और चिन्ता हो गई है।

बाघ ने शिवदत्त के विचार-धारा को आत्मरक्षा पर केन्द्रित कर दिया। उन्होंने पूछा—बाघ आदमी भी मारता है? गाँव में भी घुसता है क्या?

जम्बीरा—हाँ, जब बाघ नर-भोजी हो जाता है तब आदमी की खोज में घूमता है। तब तो जानवर छोड़ आदमी को ही धरने लगता है। और धूर्त ऐसा होता है कि गाँव में घुसकर दरवाजे के पास रात भर बैठा रहेगा कि जहाँ किवाड़ खुला और कोई निकला कि झट उसे झपट ले गया।

शिवदत्त भीतर-भीतर काँप उठे लेकिन बाहर से साहस का दिखावा रखा।

जब मंडली विसर्जित हुई और शिवदत्त खा-पीकर खाट के ऊपर लेटे तब खुली आँखों नर-भोजी बाघ का स्वप्न देखने लगे। किन्तु इस दुस्स्वप्न में भी मनसुख दास की अमानुषिक क्रूरता ही सबसे आगे रही। भावुक आदमी थे, बोलते कम थे, लेकिन महसूस अधिक करते थे। मनसुख दास के दुर्व्यवहार का जिक्र वे कभी न करते, केवल व्यापारी जी के सामने उनका मन संयम का अतिक्रम कर बाहर कुछ देर के लिये निकल आया था

दूसरे लोग भी जब शिकायत करते तो शिवदत्त उन्हें रोका ही करते थे। लेकिन वाष्प-इंजिन से अतिरिक्त भाप निकल जाने का रास्ता न हो तो सारे इंजिन का विस्फोट हो जाय। शिवदत्त इसी तरह के इंजिन थे। उस दिन व्यापारी के साथ जब वे मनसुख दास के बँगले पर गये थे, तब उसने किस क्रूर दृष्टि से इन्हें देखा था, कितनी पाशविकता थी उसमें, कितनी पैशाचिकता ! वे बोले कुछ न थे, न किसी से कहा ही था, सिर्फ बैठक में जरा सा जिक्र भर किया था। किन्तु इनका हृदय बिंधकर छलनी हो गया था लेटे लेटे सोच रहे थे, कब तक इस परिस्थिति में गुजारा होगा—एक ओर नर-भक्षी बाघ, दूसरी ओर उससे भी निर्दय मनसुख दास ।

७

जेफरन साहब एक दिन जंगल में अपना काम देखने गये हुये थे। मर्द मजदूर मोटी लकड़ी के बोटे ढो रहे थे, औरतें कटी डालियों को एक ओर इकट्ठा कर रही थीं। उस दल में गोरे रंग की एक युवती थी जिसकी असाधारणता से मिस्टर जेफरन का ध्यान खिचा। असाधारणता उसकी यह थी कि वह गोरी थी, या मंदुमी रंग की कहिये। इन अंचलों में स्त्री-पुरुष सभी का रंग काला होता है, कभी-कभी चिकने आबनूस सा काला। लेकिन अजीब करामात की है स्रष्टा ने इन युवतियों के शरीर पर! ऐसा निठोल बदन, गढन के नाप-जोख में ऐसा संतुलन, चेहरे की ऐसी कलात्मक काट, और कंचुकी-विहीन उन्नत उरोज ऐसे सुडौल जैसे काले पत्थर की मूर्ति किसी दैवी कलाकार ने गढ़ी हो! इस तरुणी में इन सभी विशेषताओं के अतिरिक्त बदन में गोराई थी और आँखों में नीलिमा। जेफरन साहब टूटी-फूटी "हो" भाषा बोल लिया करते थे। पूछा—चिकेन नुटुम ? (चिकेन नुतुन—क्या नाम है ?)

युवती ने मुस्कुरा कर बगल की औरत की ओर ताका और उसे कुहनी मार खिलखिला पड़ी। दूसरी औरतें भी हँसने लगीं। मर्द मजदूर अपना

काम रोक इधर देखने लगे और साहब की "हों" भाषा पर उत्साह वर्द्धक हँसी हँसने लगे। जेफरन ने भी हँसते हुए फिर पूछा---चिकेन नुटुम ?

युवती पुनः मुसकुराई और इस अवर्णनीय भाव से उत्तर दिया जिसका निकटतम शब्द-निरूपण शायद नवोढ़ा की सलज्जता और पहाड़ की उद्दंड मुखरता का समन्वय हो! बोली---बुदनी।

जेफरन ने उत्साहित हो दूसरा प्रश्न पूछा---ओकोन हाटु ? (ओकोन हातु- कौन गाँव ?)

बुदनी ने फिर उसी आजाद अदा से कहा---उसुरिया।

मर्द मजदूर और रेजा अपने काम में लग गये। जेफरन साहब निरीक्षण का बहाना कर बहुत देर तक आस-पास मँडराते रहे। अन्त में एक कटे पेड़ के धड़ पर पैर लटका कर बैठ गये। इसी के पास से हो कर रेजा मजदूरिनें आ-जा रही थीं। एक बार जब बुदनी इधर से जा रही थी तो जेफरन ने अचानक अपने पैर बढ़ा कर उसे रोक दिया और खबरदार करने के अभिनय से चिल्ला कर कहा---कुला, कुला! (कुला---बाघ)

इस खेलवाड़ पर फिर सभी मजदूर प्राण खोल हँस पड़े और बुदनी पैर के बगल से जीत की मुद्रा और मुसकान भरी आँखों से जेफरन को देखती हुई निकल गई!

अब अक्सर जेफरन साहब इधर ही अपना काम देखने आने लगे। किसी न किसी हीला से जहाँ बुदनी रहती वहीं अपना अधिक समय बिताते। यों तो सभी ओर उनका अपना काम था, जहाँ जितनी देर चाहें रहें, जिस किसी का भी काम निरीक्षण करें, इसमें हीला का क्या सवाल ? और यहाँ के समाज में अविवाहित लड़कियाँ इतनी स्वाधीन भी होती हैं कि निष्पाप विनोद की दो बातें उनके साथ कोई कर ले, इसमें किसी को आपत्ति नहीं। लेकिन जेफरन इस इलाके के मालिक थे, कानूनन नहीं, केवल अपने रोब और असंग द्वारा। अपने गौरव के इन दो स्तम्भों पर हल्की चोट भी पड़ने देने की गुंजाइश न थी। यदि लोग समझ लें कि साहब बुदनी पर रीझे हुए हैं और कानाफूसी करने लगें तब एक अप्रिय परिस्थिति के अतिरिक्त इनके प्रभुत्व पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था। दूसरी बात यह थी

कि जेफरन भावुक पुरुष थे, कविता और गद्य में भेद समझते और महसूस करते थे। प्रकृति की सुन्दर सृष्टि आँखों से आनन्द-उपभोग की वस्तु है, छूने की नहीं। जेफरन अध्ययन-शील भी थे, उस अँगरेज कवि के भक्त थे जिसने पथिक को आदेश दिया था—जो कमनीयता तुम्हें लुभाती है, तुम्हारे हृदय-तार को खींचती है, उसे जिस दिन तुमने छू दिया उसी दिन वह हिम की पुतली की तरह गल कर बह जायेगी। बुदनी को जब कभी देख लेना, अपनी पद-प्रतिष्ठा के भीतर टूटे-फूटे शब्दों अथवा इंगितों द्वारा उसके साथ दो बातें कर लेना, यही इनके लिये काफी था। हाँ, दिल तो परदे के पीछे से कहता, कुछ आगे बढ़ो, शिखर के पके आम की ओर अकर्मण्य-लोलुप आँखें उठाये धरातल से ही ताकते न रह जाओ। किन्तु विवेक उस क्षीण आह्वान को दबा देता। जेफरन बुदनी की प्रतिक्रिया से निश्चित थे कि वह भी इनके हृदय के कोमल निष्पाप प्रेम को समझती है—वह प्रेम जिसे वे बसन्त-ऋतु में नील आकाश से झूल रहे सेमल फूल को दिया करते, जो निस्तब्ध सघन छाया में कुलकुल करती वन-निर्झरणी के साथ क्रीड़ा किया करता। शाब्दिक आदान-प्रदान के अभाव में भी इतना स्पष्ट था कि जिस आग्रह से वे बुदनी को देखना चाहते थे उसी उल्लास से वह भी इनकी प्रतीक्षा किया करती। उसकी सरल सहास्य मुद्रा देखते ही जेफरन को ऐसा लगता जैसे ये मूक पर्वत संगीतमय हो गये, जैसे कदम्ब वृक्ष में फुदकती हुई छोटी-छोटी चिड़ियाँ बुदनी के ही अस्फुट अधरों से हृदय-गीति चुग कर चहकने लगी हैं! बुदनी भी जेफरन को देखते ही इस तरह खिल जाती जैसे मणि पारखी को पा यदि खिल सकती तो खिल जाती!

यह कहना अत्युक्ति होगा कि बुदनी से अधिक सुन्दर स्त्री इस संसार में नहीं है। हैं लाखों करोड़ों सुन्दरियाँ, और जहाँ-तहाँ। परन्तु प्रकृति के उस रंग-मंच पर, अरण्य के उस निभृत निकुंज में, भ्रम होने लगता कि प्रभु की सम्पूर्ण सौन्दर्य-प्रतिभा की बुदनी ही भावुक अभिव्यंजना है! सबसे खास बात बुदनी में यह थी कि वह अपने आकर्षक सौन्दर्य का मूल्य समझती थी और अपने समाज के गँवारों के बीच इसे नष्ट होते देख क्षुब्ध

ओर हताश होती। पोंगा हाट से फैशन की चीजें बराबर खरीदा करती, बल्कि अपनी कमाई का अधिकांश इन्हीं विलास वस्तुओं में खर्च कर दिया करती। उसकी अन्य सखियाँ सिर में जहाँ फूल खोंसतीं वहाँ बुदनी चिकना चमकीला रंगीन फीता बाँधती। और औरतें बदन के बीच कुछ नहीं पहनतीं, लेकिन बुदनी सस्ता रेशमी ब्लाउज हमेशा कसे रहती। अपने समाज के युवकों से हँस-बोल तो लिया करती औपचारिक तरीके से अथवा हृदय की बेरोजगारी के कारण। पर उसकी आँखों में हर समय एक अवर्णनीय अतृप्त लालसा छलछलाया करती। उसके नेत्र उन निर्मम कैद करने वाले पहाड़ों को पार कर उस कल्पित स्वप्न-लोक में जा पहुँचते जहाँ से पोंगा हाट की सारी सुन्दर लुभावनी चीजें आती थीं। कहना न होगा कि "दिकु" जनों में ही—(जो "हो" जन-जाति के बाहर हैं)—बुदनी को अधिक अपनापन लगता, वहीं उसे अपने असाधारण सौन्दर्य की सार्थकता मिलती। उसकी लंबी भुजाओं में लता की लोच थी, गोरे मुखड़े पर वनस्थली की सुषमा, आँखों में अभेद्य अरण्य का इशारा था, और सीने पर जैसे उदारता की प्रतिमा प्रतिष्ठित हो! साफ साड़ी पहने, रंगीन ब्लाउज कसे, जब वह और मजदूरिनों के बीच काम करते नजर आती तो बरबस सारा ध्यान उसी के ऊपर केन्द्रित हो जाता। और बुदनी अपने सम्मोहन की कमाई इस आनन्द से अपनाती जैसे किसान अपनी पकी फसल को काट काटकर जमा करता है!

किसी किसी दिन बुदनी काम पर न दीखती। उस दिन जेफरन को सारा संसार निस्सार अर्थहीन लगने लगता। पुलकित वनस्पति सूखा काठ बन जाती, वन के सुहावने फूल काँटा हो जाते। जहाँ और दिन दिगन्त तक आनन्द बिखरा रहता, जहाँ स्रष्टा की सहृदयता मूर्त्तरूप धारण किये रहती, वहाँ आज विषाद और हृदय-हीनता से परिवेश व्याप्त हो जाता। जेफरन का व्यथित मन आश्चर्य करने लगता कि क्योंकर इस प्रकांड पृथ्वी-प्रसार पर केवल एक वस्तु-विशेष के होने न होने से अर्थ और व्यर्थ का अन्तर पड़ जाता है! इस विशाल शाल वृक्ष के तने से सट कर बुदनी यदि खड़ी हो तो कितनी छोटी और नगण्य दीखेगी! उस पहाड़ के एक-एक शिला-

खंड की तौल में सैकड़ों-हजारों बुदनी समा जायँ! सामने असीम दृष्टि-पट पर बुदनी की बिसात एक धूल-कण से अधिक नहीं। फिर भी परमात्मा ने मनुष्य-मन को कुछ इस तरह गढ़ दिया है कि वही बुदनी इन सबों से बड़ी, बहुत बड़ी, सृष्टि की सर्व-महान कृति बन जाती है! उसी के अधरों के एक पुलकन से ये वृक्ष, पर्वत, दिगन्त प्रफुल्ल होते हैं, उसी को न पाये विषाद निमग्न हो जाते हैं!

जेफरन आकुल नेत्रों से बुदनी को ढूँढ़ा करते लेकिन किसी से पूछते झिझक होती। इसमें अपनी आबरू का सवाल था। उससे भी बड़ा प्रतिबन्ध यह था कि बुदनी के विषय में किसी से बातें करना उन्हें ऐसा लगता जैसे अपने पावन मन्दिर में गंदे-पैर घुस आने का निमन्त्रण दे रहे हों! निराशा की प्रतिक्रिया से जेफरन ऐसे भाव दिखाने लगते जैसे उपस्थित मजदूर-मजदूरिनों को ही काम देखने के लिये ये खास तरह से आये थे और इन्हीं के दर्शन से निहाल हो गये हैं!

एक दिन इसी निराशा से विक्षिप्त, बुदनी का मानसिक चित्र सामने लिये हुए वे घर लौट रहे थे। भगवान को मन में कोसते जा रहे थे—आखिर क्या दुनिया का धन मैं तुमसे माँग रहा था? एक बार देख लेने मात्र की तृषा तो थी, दूर से ही सही। एक बार देख लेता हूँ तो सारा दिन, एक हफ्ता भी सुफल जान पड़ता है। सुन्दर चीज बना कर उसकी ओर खींचते ही क्यों हो जब उसकी एक झलक भी वर्जित है? यह तो अपनी सृष्टि के प्रति तुम्हारा अन्याय है!

इतने ही में जंगल के किनारे सड़क से नजदीक ही दो औरतें नजर आईं। चाल धीरे कर जेफरन ने देखा, एक बूढ़ी औरत बैठी हुई है और एक जवान स्त्री कुछ कोड़ रही है। रास्ता छोड़ कुतूहलवश वे उस ओर बढ़े कि देखें क्या कोड़ रही है। दो चलती बातें इन आदिवासियों के साथ बोल लेने से ये प्रसन्न होते हैं, अपनी लोक-प्रियता बढ़ती है, और इनकी भाषा भी सीखने का अवसर मिलता है। किन्तु पहुँच कर देखते क्या हैं कि वह युवती बुदनी है, यथार्थ सशरीर बुदनी, इनकी मानस-कृति नहीं! कई क्षण इनके भाव उलझे हुए रहे, आँखों पर विश्वास न हो। क्या अकलुषित

मन को दीन पुकार सुन परम कृपालु परमात्मा ने अपनी अपार सृजन-शक्ति द्वारा एक अस्थायी बुदनी को क्षण भर के लिये बिठा दिया है ? बुदनी से लटपटाई जबान में पूछा—क्या कर रही है ?

बुदनी कुछ न बोली। मुसकुराती हुई जेफरन की ओर ताकती रही। उसके मुग्ध लोचनों में द्विधा-ग्रस्त उमड़ता हुआ आनन्द था, कुतूहल था और आवभगत भी थी। साड़ी तो साफ ही पहने हुए थी—ये आदिवासी स्त्री-पुरुष, सभी हर घड़ी साफ कपड़े पहने रहते हैं, कीचड़ मिट्टी में काम करने वाले भी—मगर बदन पर ब्लाउज न था। यों तो ये प्रकृति-बालायें मुक्त-स्तन ही रहा करती हैं यद्यपि बाहरी लोगों के सम्पर्क से इनमें भी कृत्रिमता आने लग गई है, लेकिन बुदनी पर बाह्य-सभ्यता का विशेष प्रभाव पड़ा था, वह बिना ब्लाउज के नहीं रहती थी। अस्त-व्यस्त हो वह साड़ी सम्भालने लगी। उसे चुप देख अलग बैठी बूढ़ी बोली—बुरू सांगा कोड़ रही है (बुरू—पहाड़, सांगा—कंदा)

इस बीच बुदनी फिर अपने खोदने में लग गई थी। जेफरन ने उससे फिर पूछा—क्या बुरू सांगा कोड़ रही है ?

बुदनी ने हँसते हुए कहा—एया (एया—हाँ)

अल्हड़, अलस और मिठास-भरे उत्तर में इस शब्द का उच्चारण कुछ लम्बा, भरका हुआ, सुरीला हो जाता है, जैसे इसमें दो के बदले चार अक्षर हों !

जेफरन ने उसके हाथ से खंती ले ली और खुद खोदने लगे। यह देख बूढ़ी और बुदनी दोनों बिखर कर हँस पड़ीं। जेफरन के दो चपरासी भी मुंह छिपा कर हँसने लगे।

दो-चार मिनट तक जेफरन इधर-उधर करते रहे। कभी कंदे का स्वाद पूछते, कभी कि कितना खोदना पड़ेगा। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि पूरे पैसों की मजदूरी छोड़ यह क्यों पहाड़-पहाड़ कन्दा कोड़ते फिरती हैं। ऐसे तो इन आदिवासियों की चिन्ता-विहीन जीवन-धारा से जेफरन परिचित थे। दो दिनों से भोजन नसीब न हुआ हो फिर भी ये हँसते नजर आयेंगे। और स्त्रियाँ विशेष कर आनन्द की जैसे चिरन्तन सरिता हों। जब देखिये

हँसती हैं, किलकारियाँ भरती हैं, आपस में विनोद की छेड़खानी करती हैं। दिन भर धूप में, पानी में, परिश्रम करने के पश्चात् भी घर लौटते समय सामूहिक गीत गाती हुई लौटती हैं। जेठ की दुपहरिया में पत्थर तोड़ रही हों फिर भी गाती रहेंगी! घर में चावल न हो, कुछ परवा नहीं—जंगल चले गये; कंदा कोड़ लाये; सरला, माटा, कोइनार का साग तोड़ लाये; गर्मियों में केंद पियाल और जंगली आम खाकर पेट भर लिया। गीता की शिक्षाओं के ये आदिवासी जैसे प्रतिमूर्ति हों। फिर भी जेफरन के मन में कष्ट हुआ। बुदनी इस समाज की होते हुए भी परदेशी-सी लगती थी। सोचा, शायद जंगल-काम की मेहनत इसकी अभिरुचि के अनुकूल या शहनशीलता के परे है। पूछा—काम पर क्यों नहीं गई?

बुदनी ने सिर झुकाये लापरवाही से उत्तर दिया—यों ही।

अधिक ठहरने का हीला न पा जेफरन ने बुदनी की ओर खंती बढ़ाते हुए कहा—लो।

बुदनी अद्‌भुत मुस्कान के साथ हाथ बढ़ाते हुए बोली—फेंक दो।

८

मनसुख दास ने जब सुना कि उनके नामंजूर कर देने के बावजूद भी शिवदत्त व्यापारी को साथ ले जेफरन साहब के यहाँ गये और आढ़त की लिखा-पढ़ी हो गई तब उन्हें ऐसा लगा जैसे पैर के नीचे से धरती सरकी जा रही हो! जिस दुर्ग को उन्होंने इतनी सतर्कता से निर्मित किया था उसमें शत्रु घुस ही गया। हाँ, इतना अभी अवश्य है कि किले को तोड़ देने ही से विजय नहीं हो जाती, विजय के लिये तख्त दखल करना पड़ता है। और यहीं मनसुख दास की सारी योग्यता, सारी शक्ति पुंजीभूत थी। उनकी सुन्दरी स्त्री ने इस जादूगरी से जेफरन को मंत्र-मुग्ध कर रखा था कि वहाँ किसी की भी दाल नहीं गलने की। हजार लोग मनसुख दास की शिकायत करें, जेफरन साहब उन्हीं लोगों को आड़े हाथ लेंगे, मिस्टर दास

का क्या हो सकता है ? जेफरन तो उनकी स्त्री की भौंहों पर नाचते हैं। क्या मनसुख दास को ईश्वर ने आँखें नहीं दीं।? जब तक ये साथ बैठे रहते हैं, किस तरह वे दोनों पिंजर-बद्ध पक्षी की तरह मन में विकल हो फड़फड़ाते रहते हैं! बेसब्री के कारण इनके रहते-रहते ही इशारे चलने लगते हैं! और मनसुख दास के चले आने के बाद किस तरह जेफरन साहब इनकी पत्नी के पैर की धूल उठा-उठा कर देवता के चन्दन की तरह ललाट पर मलते होंगे यह तो साधारण कल्पना भी चित्रित कर सकती है। जेफरन भोले-भाले आदमी हैं और इथेल वशीकरण-क्षेत्र में पारंगत-साँप मरे और लाठी भी न टूटे! मनसुख दास ही क्यों कर फँसे इस फिरंगी औरत के मायाजाल में ? इसी तरह तो ? और कम्पनी के बड़े साहब भी, जिन्हें पकड़ इथेल ने इनको नौकरी लगवाई। इसलिये उस ओर से मनसुख दास निश्चिन्त थे। हजार शिवदत्त आयें जायँ- जेफरन मनसुख का कुछ भी न बिगाड़ेंगे। लेकिन शिवदत्त की धृष्टता को देखिये! उसे इसका मजा चखना ही होगा नहीं तो उसकी हिम्मत बढ़ती ही जायेगी और एक दिन घाव के बदले भगंदर की दवा करनी पड़ेगी।

अपनी पत्नी से मिस्टर दास ने सलाह की। इथेल के अचूक कौशल की छिपे तौर पर तारीफ भी की। लेकिन इथेल अपने अन्तर में अच्छी तरह जानती थीं कि उनके सम्मोहन का दायरा कहाँ तक है। उस रात की घटना वे भूलती न थीं। उनकी सारी नाजो-अदा इस विलक्षण पुरुष पर भोथर-सी जान पड़ती थी। पति से ये बातें तो न कह सकती थीं, न वे ही इन्हें किसी तरह ताड़ सके थे। जब इथेल जेफरन के घर कई शाम न गईं और इसी बीच जेफरन एक दिन आकर क्षमा-प्रार्थना कर गये कि मुझे आना उचित था पर समय नहीं मिलता, तब मनसुख दास ने समझा था कि सिक्के की विनिमय दर और भी ऊँची बढ़ गयी है। खैर, कुछ भी हो, इथेल का पक्का विश्वास था कि सौन्दर्य तथा नारी-कौशल के घेरे के बाहर जेफरन नहीं जा सकते, कड़े कितने भी हों। बड़े बड़े तपस्वियों पर स्त्री ने विजय पाई है। लेकिन वे अपने पति की अयोग्यता तथा अकर्मण्यता से परिचित थीं। अकेले सर पर कितना बोझ उठे ?

मनसुख दास जेफरन के आफिस में गये और बोले—यह सुपरवाइजर शिवदत्त तो सिर पर चढ़ने लग गया है। सुना है कि आपके पास सीधे पहुँच गया था।

जेफरन उस आढ़त के राजीनामें पर इतने प्रसन्न थे कि शिवदत्त को कम्पनी का एक विश्वस्त स्तंभ समझने लग गये थे और अपनी धुन का निकटतम सहयोगी। बहाली के अवसर पर जब जेफरन ने पहले-पहल शिवदत्त को देखा था उसी समय इनकी अनुभवी आँखों ने शिवदत्त को परख लिया था। लेकिन उसके बाद से शिवदत्त के साथ सम्पर्क न होता। कारखाना मिस्टर मनसुखदास के जिम्मे था, इसलिये स्वभावतः जो कुछ भी कारखाने के विषय में कारवाई हो, ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर, सभी मिस्टर दास के माध्यम से। कभी कोई काम या व्यवस्था जेफरन को पसन्द आये और तारीफ करें तो मनसुखदास झट कहने लगते—"मैंने बड़ा सोचा, हजार उधेड़बुन की, तब कहीं हफ्तों के बाद यह तरीका सूझा। फिर भी योजना को काम के साँचे में ढालने में कम मुश्किल न पड़ी। शिवदत्त की समझ में ही न आवे। एक तो कुंद-जेहन, दूसरे बूढ़ा, काम-कोढ़ी।" कभी जेफरन काम से असन्तुष्ट हों तो मनसुखदास कहते—"सारा कारखाना चौपट हो गया है इस निकम्मे सुपरवाइजर के मारे। यह भी जो आप देख रहे हैं, अंतिम खराबी तक नहीं पहुँच पाया है सिर्फ इसीलिये कि मैं शरीर-प्राण लगा कर अकेले कंधे पर सम्भाले रहा हूँ।" महीने में एक-आध बार जब कारखाना देखने जेफरन खुद जाते तब भी मनसुखदास ही पंथ और मत प्रदर्शक बनते—तारीफ अपने ऊपर लेना, दोष दूसरों पर ढालना, यही उनका तरीका था। इन सब कारणों से जेफरन का शिवदत्त के प्रति जो प्रारंभिक सद्विचार था उसपर राख की एक परत जम गई थी। मनसुख के तरीके को वे ताड़ रहे थे, लेकिन पता नहीं क्यों मन की कुछ ऐसी परिस्थिति हो आई थी कि मनसुखदास पर किसी तरह की सख्ती करने में या स्पष्ट-वादिता में भी मन कर्त्तव्य का हाथ पकड़ लिया करता। इसी मधुर मानसिक विवशता में मनसुखदास की शिकायतों की राख अपने विवेक-विचारों के ऊपर तह की तह पड़ने दिया करते और मनसुख के किये

और कहे पर हाँ कहते जाते। इसी कारण छावनी में सभी एक-मत हो गये थे कि बड़ा साहब छोटा साहब की मुट्ठी में है। लेकिन जब जेरिफनि ने देखा कि शिवदत्त ने स्वयं अग्रसर होकर इस व्यापारी को बुलाया और आढ़त ठीक करा दी, जिससे अपने बसाये कारखाने की अवरुद्ध धारा फिर स्वाभाविक गति से बहने लगेगी, तब राख की तमाम तहें इस तरह उड़ गई जैसे पड़ती बर्फ में चलते हुए मनुष्य ने अपना कंधा जोरों से झटक दिया हो! जेफरन ने शायद मनसुखदास का अंतिम वाक्य ही सुना था या पहला सुना होगा तो केवल "चढ़ने" शब्द पर उनका ध्यान गया था। शिवदत्त तो उनके उच्च विचारों पर और भी चढ़ चुके थे, कारखाना उन्नति की सीढ़ी पर उत्तरोत्तर चढ़ रहा था और उनकी वाँछनायें सफलता के शिखर पर चढ़ रही थीं। उल्लासित हो जेफरन बोले—ओ हो, डियर, डियर, मैं तो कहना भूल ही गया था। जिस पहाड़ के सामने हमारी गाड़ी रुकी हुई थी उसे सुपरवाइजर शिवदत्त ने तोड़ डाला। अब तैयार माल तुरत का तुरत बिकता जायेगा और हम लोग कारखाने की तरक्की कम्पनी के उम्मीदों से भी बढ़कर दिखा सकेंगे। फर्स्ट क्लास आदमी है, लगन वाला और ईमानदार। कम्पनी ऐसे आदमी के लिये बहुत कीमत दे सकती है।

मनसुखदास को यह कल्पनातीत विपरीत परिणाम देखकर ऐसा लगा जैसे उनके पैरों के नीचे से धरती कुछ और दूर खिसक गई। उनकी भरी नाव डूबी जा रही थी। जिसे वे चट्टान समझे हुए थे वह जली हुई लकड़ी निकली। फिर भी मनसुखदास आखिर शतरंज के खिलाड़ी थे। फरेब और जाल के मुहरों से हो सारी जिन्दगी शतरंज खेलते आये थे, इतनी जल्दी मात होने को न थे। पर-दुःख-दुःखी के स्वर में बोले—मैं तो कम्पनी के भविष्य की बात सोच रहा हूँ। जहाँ शिवदत्त सरीखा धोखेबाज और गहरा मक्कार विश्वास-पात्र बने वहाँ कै दिन कुशल रहेगा, इसी की चिन्ता में मैं पड़ा हुआ हूँ।

जेफरन को जैसे किसी ने नोकीली अँकुसी से झटका दिया—क्या कहा? शिवदत्त धोखेबाज है, मक्कार है? कैसे? उसने तो ऐसा काम किया जो आप और मैं न कर सके थे।

मनसुख ने चिन्तनशील शान्त भाव से उत्तर दिया---इसी में तो उसकी मक्कारी है, सर। काम तो सब मैंने किया। मैंने पता लगा-लगा कर कई व्यापारियों को लिखा था। कई महीनों से इस काम में लगा हुआ था, आपसे न कहा था कि आपको एकाएक ताज्जुब में डाल दूँ। तब वह व्यापारी आया। आया मेरे पास कि कम्पनी से क्या कमीशन मिलेगा? मैंने कहा, "दस रुपये सैकड़ा।" उसने कहा, "पन्द्रह रूपये।" तब मैंने कहा--- "आप जाकर अच्छी तरह सोच लीजिये। इस कम्पनी के साथ दस सैकड़े पर भी काम करने में मुनाफा है। खैर, मैं भी इस बीच सोचूँगा।" मेरा प्लान था कि पन्द्रह तो उसे दिया ही जाय लेकिन उसे गरजी बना कर। वह लौट कर आता तो मैं कहता---"अच्छा तो आपके खातिरन कम्पनी पन्द्रह सैकड़े देगी इस शर्त पर कि बिक्री ज्यादा से ज्यादा हो।" तब मैं उसे आपके पास लाता। मगर शिवदत्त उसके साथ था। शायद उन दोनों में गुप-चुप बात हो गई होगी क्योंकि मैंने इशारा करते देखा। फिर तो साफ है कि मेरे पास से हटते ही शिवदत्त ने व्यापारी से कहा होगा---"चलो बड़ा साहब के पास चुप्पे-चुप्पे। पाँच रुपये सैकड़ा मुझे दोगे, मैं बीस दिलाये देता हूँ।" तो बस यही हुआ। सभी जानते हैं कि आप कितने उदार हैं, सीधे हैं, और इसी भलमानसी का फायदा उठाकर ये बेईमान मक्कार लोग आपको ठगते हैं।

जेफ़रन मनसुख के चरित्र से काफी परिचित हो चुके थे। यद्यपि बोलते न थे, जानते बहुत कुछ थे। कभी-कभी तो गम का घूँट मेहनत से गले के नीचे उतारना पड़ता था। यों तो मीठे-मीठे मनसुख को टाल देते, उनकी वफादारी की हल्के व्यंग्य के साथ तारीफ भी करके। लेकिन मनसुख को यह धारणा कि जेफरन को जो चाहे ठग ले, एक मातहत के पास वे कांटे छोड़ देना आत्म-सम्मान के लिये असह्य था। विषम गंभीरता से जेफरन बोले---सुनिये, मिस्टर दास, मैं सीधा हूँ, उदार हूँ, सब कुछ हूँ, लेकिन बेव-कूफ नहीं हूँ। कम्पनी ने मुंह देखकर मुझे यह पद नहीं दिया है। मैं जानता हूँ कि कौन मुझे ठगने की कोशिश करता है, कौन नहीं करता और सभी जानते हैं या जान लेंगे कि उनकी ठगी मुझपर कहाँ तक कारगर हो सकती है।

आप भी एक दिन समझ लीजियेगा कि मैं बेवकूफ नहीं हूँ, अगर आज आपका कुछ और ख्याल है तो।

एक क्षण चुप रहकर जेफरन ने पूछा—और आपके पास क्या सबूत है कि शिवदत्त ने कमीशन का हिस्सा खुद लिया है?

मनसुख बड़ा घबड़ाये, यह तो लेने के देने पड़े। कहाँ आये थे खैरख्वाही लूटने और शिवदत्त को फँसाने, कहाँ अपने ही बुरे फँस गये। इनकी नौकरी का एक मात्र स्तंभ था बड़ा साहब का इनपर अच्छा ख्याल, वही अब खतरे में आ गया। गिड़गिड़ा कर बोले—नहीं सर, यह मैं कभी नहीं कह सकता या सोच सकता कि आपको कोई ठग लेगा। यह तो छोटे मुंह बड़ी बात होगी। मैं सिर्फ यही कहता था कि आप इतने साधु-पुरुष हैं, दयावान हैं, क्षमाशील हैं। हम लोगों के पालने-पोसने वाले आप ही हैं।

जेफरन ने उसी गंभीर मुद्रा से कहा—लेकिन आपने इसका जवाब नहीं दिया कि शिवदत्त के खिलाफ आपके पास क्या सबूत है।

मनसुख ने जैसे छिप जाने को जगह ढूँढ़ते हुए उत्तर दिया—सबूत तो लिखा-पढ़ी का कोई नहीं......

जेफरन ने बात काट कर पूछा—बे लिखा-पढ़ी का ही सही।

मनसुख—शिवदत्त की सारी हरकतों से तो यही साबित होता है कि वह हमेशा धोखा देने की कोशिश करता रहता है। मैं उसकी करतूतें आपके पास लाता तक नहीं हूँ। सोचता हूँ, जब मैं इंचार्ज हूँ तो दूसरों का दोष अपने ऊपर ही ले लेना उचित है। मगर शिवदत्त रोज हमारे विरुद्ध षड्यंत्र रचता रहता है। दीगर कर्मचारियों और कारीगरों को भी भड़काता रहता है। उनकी आँखों में मेरा दोष यही है कि मैं ईमानदार हूँ, कम्पनी की भलाई चाहता हूँ, और उन लोगों की बेईमानी में बाधा डालता हूँ। मेरे विरुद्ध करता है किया करे, जब आप मुझे और मेरे काम को जानते हैं तो मैं खातिरजमा हूँ कि वे लोग मेरा कुछ न बिगाड़ सकेंगे। लेकिन जब कम्पनी के हित पर चोट पड़ती है तब तो देखा नहीं जाता। सोचा, मैं जो जानता हूँ, आपके पास पहुँचा दूँ।

मनसुखदास सिर झुकाये कई क्षण चुप रहे, फिर बोले—अगर आप

सोचते हैं कि शिवदत्त का कोई दोष नहीं है तो मैं बात फेरे लेता हूँ। अब से कभी न कहूँगा।

जेफरन---मिस्टर दास, मैं ठोस बनिया हूँ, बनिया कम्पनी का मैनेजर। मैं जो कुछ भी सोचता हूँ पक्की बुनियाद पर, फिलासफर की तरह हवा में बातें नहीं करता और न कवि की भांति शून्य में गुफा तैयार करता हूँ। मैं कहना तो व्यर्थ समझता था लेकिन जब प्रसंग उठ ही गया तो आप सुन लें कि बात मैं रत्ती-रत्ती जानता हूँ---किसने क्या कोशिश की, व्यापारी कैसे आया और आपने कैसा बर्ताव किया। उसके पहले भी आपका और शिवदत्त का व्यक्तित्व, कर्मशीलता, विचार, सब कुछ मैं जानता आया हूँ।

मनसुखदास कुछ बोलने को हुए तो जेफरन ने फिर बात काट कर कहा---खैर, अब रहने दीजिये। मुझे काम से काम। काम हो गया, बस। आज मुझे इतनी खुशी है कि यह खुशी ही याद आती है, और सब कुछ भूल गया हूँ। आप कुछ ख्याल न करें। रफ्तार में बातें आ गई। आवेश में यदि मैंने कुछ अनुचित बोल दिया हो तो आप क्षमा करेंगे।

यह कह वे काम करने में लग गये। मिस्टर दास दो चार मिनट तक चुप बैठे रहने के पश्चात् घर लौट आये।

९

मनसुखदास घर लौट कर आये तो उनकी पत्नी इथेल अभी तक अपराह्न की नींद ले रही थीं। पति की पद-चाप सुन उठ बैठीं और अँगड़ाई लेते हुए बोलीं---सोचती थी इस निर्जन निवास में एक दिन भी कैसे गुजरता अगर जेफरन की तरह एक आदमी बेवकूफ बनाने के लिये यहाँ न रहता।

फिर मनसुख के चेहरे पर हवाइयाँ देख पूछ बैठीं---कहाँ गये थे? क्या कुछ हुआ क्या?

मनसुख---हुआ तो कुछ भी नहीं या सब कुछ। गया था उसी जेफरन

के यहाँ, लेकिन देखता हूँ कि वैसा बेवकूफ नहीं है। या है तो गलत रास्ते का बेवकूफ है।

इथेल—सुपरवाइजर के बारे में कुछ बातें हुईं क्या ?

—हाँ, मगर मालूम होता है कि शिवदत्त ने उसपर पहले ही से अपना रंग ऐसा चढ़ा दिया है जैसे सुनता हूँ भंग का रंग चढ़ता है। मेरी बात उसने एक न सुनी, सिर्फ शिवदत्त की तारीफ करता गया। बल्कि अन्त में कहने लगा, आप एक दिन देख लीजियेगा कि जेफरन बेवकूफ नहीं है।

इथेल—तो तुम क्या यही कहने गये थे कि आप बेवकूफ हैं ? तुम कहो, आप बेवकूफ हैं और सुपरवाइजर कहें आप बुद्धिमान हैं, महान हैं, तो किसकी बात सुनी जायेगी ?

मनसुख—मैंने यह कब कहा कि आप बेवकूफ हैं ? जब नौकरी करने आया हूँ तो क्या इतनी सी बात भी नहीं समझता ? मैंने तो सिर्फ इतना ही कहा कि शिवदत्त ने बीच में पाँच फी सदी कमीशन मार लिया है। उसे सजा हो जाती तो सब दिन के लिये उसके पंख कट जाते। लेकिन जेफरन पूछने लगे, "आपके पास सबूत क्या है ?" तो क्या चोर बाजारी का सबूत भी मिलता है ? यह बेवकूफी का सवाल नहीं तो क्या ? मुझपर क्या इतना विश्वास नहीं कर सकते थे? आखिर इतना तो हम सटे रहते हैं!

इथेल ने मुस्कुरा कर कहा—इसी तुम्हारे सटे रहने की शिकायत मैंने जेफरन से की है। मैंने कहा, मिस्टर दास कम्पनी का कोई काम नहीं करते, हमेशा मुझमें सटे रहते हैं। जब मैं आइने के सामने खड़ी शृंगार करती हूँ तब किनारे से आइने में मेरी सूरत निहारते रहते हैं। जब मैं बाथरूम जाती हूँ तो बेकल बाहर बैठे रहते हैं कि कब मैं बाहर निकलूँ तो वे अपनी आँखें सेंकें। जब मैं बगल में सोई रहती हूँ तो चुपके से उठकर मेरे मुख लावण्य को कवि और चित्रकार की आकुलता से संचित करते रहते हैं। सारांश यह कि विभ्रांत भौंरे की भांति मँडराते रहते हैं, और गाय के बछड़े की तरह मेरे पीछे-पीछे घूमते रहते हैं। मैंने तो जेफरन से यह भी कह दिया कि जब तक आपके पास बैठी रहती हूँ, मिस्टर दास लुक-छिप कर हम दोनों को देखते रहते हैं।

इस अंतिम वाक्य का मिस्टर दास ने सवेग विरोध किया——यह झू है, डियर, तुम जानती हो यह झूठ है।

इथेल विस्तर पर पैर लटकाये बैठीं थीं। लपक कर मनसुख को चूम लिया और बोलीं——झूठ है, डार्लिंग, मैं तुम्हारा लेग पुल कर रही थी।

कुछ देर उभय पक्ष में निस्तब्धता रही। पश्चात् जब वातावरण फिर दाल-रोटी के धरातल पर उतरा तो मनसुख ने पूछा——अब क्या किया जाय ?

इथेल ने बिस्तर से पैर झुलाते हुए हँस कर कहा——अब तो करने को कुछ रहा नहीं, मामला आसान हो गया। विस्तर बाँधो, पैकिंग करो, और कलकत्ते की गलियों में फिर मारे-मारे फिरो।

फिर एक क्षण बाद मनसुख को तिरछी नजरों से देख कर बोलीं——और सोचती हूँ कि पता नहीं तुममें मैंने क्या पाया कि तुम पर रीझ गई। बने-सँवरे गाँठ के पूरे कितने आये मधु की मिठास पर, लेकिन सर्वार्पण करने के बाद भी जरा सा रस चूसा कि मैं इस तरह झटकती कि वे चारो खाने चित्त जा गिरते। कितने तो सूरत और सम्पदा ले ब्याह का प्रस्ताव भी करने आये, सभी को मैंने झिड़का। कई प्रेमियों के साथ मैंने ऐसा दुर्व्यवहार किया कि पीछे मुझे ही पछतावा होने लगा। तब आये तुम, जैसे सारे कदर्थितों का प्रतिशोध लेने। पलरा ऐसा पलटा कि अब मैं ही प्रार्थी बन गई, तुम ठुकराने वाले। मानव मन की भी कुछ ऐसी प्रकृति है कि कभी मैंने निज से पूछा तक नहीं कि क्यों तुममें जड़ी जाती हूँ, आखिर तुम किस विजली-लोक के चमचम देव हो या त्रिलोक-सम्राट कुवेर धन-पति। अन्त में कलकत्ते से यहाँ पोंगा आई !

मनसुख ने व्यथित अपराधी की तरह अपनी पत्नी को देखा। आँखों में क्षमा-प्रार्थना थी, चेहरे पर संकट-ग्रस्त की व्याकुलता। बोले——मैं दुःखी हूँ, डियर।

इथेल——किस बात के लिये दुःखी हो ?

——यही कि तुम्हें इस जंगल में लाकर कष्ट दिया।

इथेल मुस्कुराई——हाँ, दुःख की बात तो है। मैं यदि नहीं आती तो

आप इन कविता-पूर्ण सुघड़ सलोनी काली सुकुमारियों के साथ रास-रंग रचाते न! अब तो हाथ बँधे हैं, पैरों में बेड़ियाँ हैं, और मुंह में जाब हैं।

मनसुख ने उसी वेदनामय गंभीर स्वर में कहा—मैं अपनी नौकरी की बात सोच रहा हूँ और तुम्हारे कष्टों की।

इथेल बिस्तर से उठ खड़ी हुई और बोलीं—अच्छा, आपको मेरे कष्टों के लिये दिल में दर्द है तो बेयरा को कहिये जल्दी बाथरूम में गर्म पानी दे दे, मुझे ड्रेस करना है!

उस दिन शाम को जेफरन साहब के यहाँ पहले की तरह ही बैठक बैठी। और पहले की तरह ही मनसुखदास पन्द्रह-बीस मिनट बैठ कर किसी बहाने से लौट गये। एकांत हो जाने पर जेफरन ने कहा—मेरे अधीर हृदय का विरह आह्वान आज जा कर आप के कानों तक पहुँचा।

इथेल ने नखरे से कहा—मैं तो यह जानती थी कि जब आप मेरे साथ बैठते हैं तभी आपका अधीर हृदय काम-धंधे की विरह-वेदना से तमाम कर्मचारियों, अमलों, पेड़ काटने वालों का आह्वान करने लगता है!

जेफरन—दोनों प्रकार के विरह अपनी-अपनी जगह पर मन को अधीर करते हैं लेकिन एक दूसरे का स्थान नहीं ले सकता।

इथेल—मैं तो विदा लेने आई हूँ।

—क्यों? विदा क्यों? क्या कहीं जा रही हैं आप?

इथेल ने अनाद्रिता के भाव से कहा—मैं खुद क्यों जाने लगी? भगाई जा रही हूँ।

जेफरन हँस पड़े—तो ठीक है, चलिये मैं भी भाग चलूँ आपके साथ। किसी गुफा में चलकर हम दोनों रहें, आदि पुरुष और आदि नारी की तरह। मैं आपके सौन्दर्य का मधु चाट-चाट कर जीवित रहूँगा, आपको देखता रहूँगा, नींद आयेगी तो आप थपकी देकर सुला देंगी।

इथेल ने गंभीर मुद्रा से कहा—नहीं मैं खेलवाड़ नहीं कर रही हूँ।

जेफरन—तो आखिर हुआ क्या? त्रिया-चरित्र समझ में भी तो आये!

—आप मिस्टर दास को निकाल रहे हैं। सुना उन पर बहुत नाराज हुए आज।

जेफरन—ओ !

ह्विस्की का एक गिलास इथेल की ओर बढ़ा कर और अपने ग्लास से एक चुसकी लेकर जेफरन ने फिर कहा—यह सब नादानी की बात है। हाँ, मैंने डाँटा अवश्य और उनकी भलाई के लिये ही।

इथेल शराब का ग्लास केवल शिष्टाचार के दबाव से ही होंठों तक ले गई, फिर वैसे ही रख दिया। दबे दिल से बोलीं—डाँटना, समझाना तो ठीक ही है। मैं भी जहाँ तक आप लोगों के सूखे काठ का काम समझ पाती हूँ, उन्हें समझाती हूँ। लेकिन वे तो बहुत डर गये हैं।

जेफरन ने शरारत की मुसकान से कहा—अच्छा हो है कि वे बहुत डर गये हैं। जितना मुझसे डरेंगे उतना ही दूर रहेंगे और तब आप ओर मैं अकेले निर्विघ्न साथ-साथ रहा करेंगे, बहुत बातें करेंगे, बहुत साथ बैठेंगे, साथ घूमेंगे, देर-सबेर, कोई फिक्र नहीं रहेगी। और जब आप बहुत रात गये घर लोटेंगी तो बहुत डरा हुआ आदमी आपसे बहुत बोल भी नहीं सकेगा। क्यों ?

लेकिन इथेल के चेहरे पर अभी तक विनोद का कोई चिन्ह न था। तिरस्कृत के भाव से बोलीं—आपको ऐसी स्त्री की मित्रता से क्या गौरव प्राप्त होगा जिसे आपका एक छोटा मातहत अपमानित कर सके ?

जेफरन ने अपनी सारी प्रभुता की टेक लगा कर कहा—आपकी आबरू मेरी अपनी आबरू है। यह असम्भव है।

इथेल—असंभव क्यों है ? यहीं तो शिवदत्त उस दिन आँख दिखा गया, किस गुस्ताखी से पेश आया, मुझे ऐसा लगा जैसे हिन्दी में गाली देकर धमका रहा हो। कमीशन के बारे में कुछ नहीं कहूँगी, वह आप लोगों का अपना काम है। लेकिन क्या उसके हाथ मुझे बेइज्जत होते देख आपको अच्छा लगेगा ? कभी-कभी कारखाने मिस्टर दास के साथ चली जाती हूँ तो वह टिटकारी मारता है, उसके बहकावे में सभी दीगर कर्मचारी आपस में अश्लील इशारे करते हैं मेरी ओर उँगली दिखा-दिखा कर। यह मैंने आपसे पहले नहीं कहा था कि क्या छोटी-मोटी बातें आप सरीखे महान व्यक्ति के सामने छेड़ती रहूँ। सोचा था, हम लोगों का आपके साथ सामाजिक

सम्बन्ध देख कर वह डरेगा, सुधर जायेगा। लेकिन इस बार जब हम लोगों को मुंह चिढ़ा कर मिस्टर दास के सिर पर चढ़ कर, आप के पास सीधे आकर शाबासी ले गया तब तो वह दिन दूर नहीं कि रास्ता चलते मेरी कलाई पकड़ राहजनी कर बैठे।

जेफरन साहब का चेहरा तमतमा उठा। रोष से बोले—यह तो असह्य है, कई दृष्टिकोणों से असह्य। आपने पहले ही मुझसे क्यों न कहा? कारखाना चले या न चले, मैं उसके लिये इतनी कीमत देने को तैयार नहीं हूँ। सब बदमाशों को एक लाइन में खड़ा कर कोड़े से पीटूँगा और कान पकड़-पकड़ कर निकाल दूंगा। यह असह्य है।

फिर कई क्षण सोचने के बाद बोले—शिवदत्त पर मेरा कुछ और ही ख्याल था। और लोगों के विषय में ऐसा विश्वास हो सकता है। तरह-तरह के शोहदे होते हैं, और इस देश के समाज में स्त्री के सामने शिष्ट-स्वाभाविकता विरल है। लेकिन शिवदत्त मुझे तो जहाँ तक अन्दाज लगा स्वयं ऊँचा आदमी है।

इथेल—खैर, तो मेरे स्त्री-गौरव को यह अमूल्य आश्वासन मिला कि मेरी इज्जत भी लूटी जायेगी तो एक ऊँचे आदमी द्वारा। यह कम गर्व की बात नहीं है!

जेफरन—नहीं, मैं मामले को हल्का नहीं कर रहा हूँ। शिवदत्त को पूरी चेतावनी दूंगा। लेकिन आप, मिसेज दास, अपने पति को कर्तव्य की ओर जरा मोड़िये। मैं जब तक हूँ सम्भल जायेगा, लेकिन उनका भविष्य लंबा है, सब दिन इस तरह नहीं चल सकता। मुझे उनके काम के विषय में पूरा पता है और उतना ही खेद भी है।

मिसेज इथेल दास ने वक्र मुस्कान और बाँकी चितवन से वातावरण बदल दिया। मीठे रूठे स्वर में बोलीं—आपको मेरे और अपने बीच अन्य पुरुष को लाते ईर्ष्या भी नहीं होती? आप कैसे मर्द हैं?

जेफरन इथेल के चेहरे को इस तरह देखते रहे जैसे कोई दुर्बोध प्रश्न पढ़ रहे हों।

इथेल फिर बोलीं—एक स्त्री की प्रतिष्ठा के लिये जो किसी भी नर-

मानव का दायित्व है, एक सुन्दरी की मरजी के लिये जिस पर तख्त भी न्योछावर होते आये हैं, क्या आप इतना भी नहीं कर सकते कि शिवदत्त को हटा कर मेरा मन निश्चिन्त कर दें ? यह तो आपके प्रभुत्व के लिये तिनका हटाने भर काम है। और जितना प्रेम, सच या झूठ, आप मेरे लिये दिखलाते हैं, उसमें तो मेरी भौंहों को देख कर ही आपको यह काम कर डालना था। मुझे जबान हिलानी पड़ी तो फिर प्यार क्या ?

जेफरन की मुखाकृति से ऐसा लग रहा था जैसे वे सारे पहलुओं को बटोर कर एक दूसरे के साथ नाप-तौल रहे हों। गंभीरता से बोले—देखिये, मिसेज दास, आपकी मान-प्रतिष्ठा का भार तो मैंने ले ही लिया है। लेकिन मुझे विश्वास नहीं कि शिवदत्त सरीखा आदमी जान-बूझ कर आपकी ओर अनादर का आचरण कर सकता है। आप जो इस हद तक उसके विरुद्ध हो गई हैं उसका कारण मिस्टर दास हैं। यह स्वभाविक ही है कि उनके विचार और भावों का असर आपके ऊपर भी पड़े। शिवदत्त हमारे कारखाने का स्तंभ है। वह अपनी कला में निपुण है, लगन का पक्का है, और मिस्टर दास बिलकुल कोरे, अनभिज्ञ। इनका फर्ज था कि उससे काम सीख कर अपनी योग्यता और प्रबन्ध-कौशल बढ़ाते। परन्तु ये गलत रास्ते पर चलने लगे। जिस किसी से प्रतियोगिता हो उससे दो तरीकों से आदमी ऊँचा हो सकता है—एक तो स्वयं परिश्रम द्वारा ऊपर उठ कर, दूसरा प्रतिद्वन्दी को नीचे खींच कर। यह दूसरा तरीका गलत है। कुछ दिन तक काम दे सकता है, सब दिन नहीं। मिस्टर दास को शिवदत्त से चिढ़ है सिर्फ इसी बात के लिये कि वह काम जानता है, उसे काम की लगन है, और ये कुछ नहीं जानते, न कुछ करना चाहते हैं। मैंने इतने दिनों तक सब कुछ जानते हुए भी कोई दस्तंदाजी नहीं की, इसी उम्मीद में कि ये खुद सही रास्ता धर लेंगे। कुछ आपके लिये भी मुरौवत थी ही। लेकिन मुझे अपना कर्तव्य करना है। शिवदत्त जब तक अपना काम ईमानदारी और परिश्रम से करता है और उसके आचरण भी ठीक हैं तब तक मैं उसे नहीं निकाल सकता। मिस्टर दास को भी बचाता रहूँगा, विशेष कर आपके खातिरन, मगर उन्हें अब उचित मार्ग पर चलना पड़ेगा। रही आपकी

मरजी और आदेश की बात, तो इन्हें मैं सर-आँखों पर उठाता रहा हूँ और रहूँगा। आप जानती हैं मैं कितना आपके साथ घुल-मिल गया हूँ, किस तरह आपकी एक प्यार की चितवन से मेरा रोम-रोम पुलकित हो जाता है। कठिन काम के भार से, कठोर कर्त्तव्य की चिन्ता से, जब मन-प्राण क्लान्त हो उठता है, उस समय आपकी मोहनी सूरत याद करता हूँ, आपके प्यारे-प्यारे हाव-भाव मन में चित्रित करता हूँ, प्रेम-पगी प्यार की बातें प्रतिध्वनित की तरह अन्तर से सुनता हूँ। बस इतने से ही पत्थर फूल बन जाता है। और जब सोचता हूँ कि कुछ घंटों के बाद ही आपसे फिर मुलाकात होगी तब तो प्राण-शक्ति में ज्वार उठने लग जाता है। आप जब से यहाँ आई हैं तब से पाषाण-पर्वत फूल की क्यारी बन गये, यह नीरस एकाकी जीवन संगीतमय हो उठा। लोग कहते हैं, पर स्त्री से प्रेम करना नीति-वर्जित है। मैं यह नहीं मानता। एक सुन्दर स्त्री के साथ दो क्षण बोल-बैठ लेने की लालसा किस नर-पुरुष के हृदय में नहीं होती? लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जिनमें भावुकता का अभाव है, कल्पना का स्रोत अनुद्‌भूत है। ये ही समाज के नर-पुंगव बन जाते हैं यह कह कर कि हम पर स्त्री को आँख उठा कर देखते तक नहीं। वस्तुतः ये आँखें उठा कर देखने में अशक्त हैं। यह नहीं कि सिद्ध तपस्वियों की तरह इन लोगों ने अपनी इन्द्रियों का निग्रह कर लिया है। यौन-प्रेरणा इनमें भी उठती है जैसे अन्य मनुष्यों में और पशुओं में, और पशुओं की भाँति यौन-कार्य से निवृत्त हो ये लोग अपने काम में लगे रहते हैं जबतक कि दूसरी प्रेरणा इनकी आँख न उठाये। ऐसे मनुष्य यह नहीं जानते कि पशु-प्रेम के विपरीत स्त्री-पुरुष प्रेम में शारीरिक अंश गौण है, आध्यात्मिक पक्ष ही प्रधान है। आध्यात्म्य का वह स्तर जो आत्मा को उज्ज्वल और निर्मल बनाता है और जहाँ ईश-प्राप्ति का अन्तर्द्वार है वहाँ पवित्र प्रेम की सीढ़ी से ही पहुँचा जा सकता है—वह प्रेम स्त्री के सुंदर रूप से संचरित हुआ हो या प्रकृति के पवन सौन्दर्य से अथवा संगीत की मन्दाकिनी से। सौन्दर्य में परमात्मा का अस्तित्व स्वतः सिद्ध और प्रत्यक्ष है। किन्तु जिनमें कल्पना का अभाव है, जो सौन्दर्य का शारीरिक उपभोग ही जानते हैं, वे इस आध्यात्मिक अनुभूति को नहीं

प्राप्त कर सकते। कलाकार इनसे भिन्न हैं। उनमें भावुकता और कल्पना है, वे सौन्दर्य की ओर निरुपाय आकृष्ट होते हैं। हाँ, कलाकार भी सभी महात्मा नहीं होते। इनमें दो वर्ग हैं—एक लंपट दुराचारी, दूसरा संयत सदाचारी। पहले वर्ग का आदमी धर्म-अधर्म, राह-कुराह, नीति-अनीति, किसी का विचार न कर अपनी काम-लिप्सा तृप्त करता है। द्वितीय वर्ग का मनुष्य अपना कर्त्तव्य सर्वदा सामने रखता है। उभय पक्ष का हित-अहित उसकी सर्व-प्रथम चिन्ता है। उसके प्रेम में स्वार्थ कम है, निस्स्वार्थ भाव तथा त्याग अधिक है। धर्म-अधर्म, नीति-अनीति की आधार-शिला पर हो वह अपनी प्रेरणाओं को गढ़ता है, अपना आचरण स्थिर करता है। खिंच जाता है वह भी, बेबस विभोर हो, जैसे चुंबक की ओर लोहे का काँटा खिंचता है, किन्तु अपने ऊपर उसका शासन कभी ढीला नहीं होने पाता। कर्त्तव्य ही हर पहलू पर उसका पथ-निर्देशक होता है। एक आदर्श योद्धा सद्यः-परिणीता कोमलांगिनी नव-यौवना को छोड़ कर मृत्यु के गाल में जा रहा है। उसकी विरह-विह्वल पत्नी उसे ठुमकाती है, न जाने की विनती करती है। लेकिन कृत-निश्चित योद्धा कहता है—

I could not love thee, dear, so much, loved I not honour more.

(तुम्हें इतना प्यार नहीं कर पाता, प्रिये, यदि कर्त्तव्य-मर्यादा को तुमसे अधिक न प्यार करता)

तो यही आदर्श है मेरा, मिसेज दास। कर्त्तव्य के भीतर प्रेम भी है, रास-रंग भी है, आराम भी है। उसकी परिधि के बाहर कुछ भी नहीं। मैं आपसे प्रेम करता हूँ आदर्श को सामने रख कर। यह कभी नहीं भूलता कि आपके पति के प्रति किसी तरह का अन्याय न हो, न मैं नैतिक मर्यादा का उल्लंघन ही करूँ। मैं आपके लिये, आपके पति के लिये, सब कुछ करने को तैयार हूँ। मुझे इसमें असीम आनन्द मिलता है। आपके लिये कुछ कर सकना मुझे मन्दिर में फूल चढ़ाने जैसा लगता है। लेकिन किसी की फुलवारी उजाड़ कर यदि फूल चढ़ाया जाय, या किसी के गले में फाँस डाल कर लूटे हुए द्रव्य से प्रसाद अर्पण किया जाय, तब न तो देवता ही

प्रसन्न होंगे न पुजारी को सिद्धि मिलेगी। मैं कर्त्तव्य के बाहर, सच्चाई और नीति के विमुख, कुछ भी सहायता नहीं दे सकता। आप सरीखी उच्च कोटि की सुन्दरी जिसे प्यार करे उसे तो इस प्रेम के उपयुक्त बनने के लिये सदाचारी और कर्त्तव्य-परायण अनिवार्यतः होना होगा।

मिसेज दास चुप चाप बैठी हुई इस तरह सुनती रही जैसे ये सुदूर अजाने देश की बातें हों! फिर उठी और उसी तरह चुप चाप चली गई।

१०

समय की शुश्रूषा ने शिवदत्त की निर्वासन-वेदना शनैःशनैः हर ली। उन्हें अब पैरों के नीचे जमीन की थाह मिलने लग गई थी। परिस्थिति के साथ जो आपस का दुराव था वह बहुत-कुछ मिट गया। वन-पहाड़ जो आरम्भ में कारागार की छड़ और दीवाल बने हुए थे अब सदय हो ममता से मुसकुराने लगे थे जैसे नाहक डरे हुए बच्चे को देख प्रिय हितैषी मुसकुराता है! उनका उत्साह तब और भी बढ़ा जब व्यापारी के साथ कारखाने के बने उपस्कर (फर्निचर) कि बिक्री-आढ़त ठीक हो गई घोर कर्मठ आदमी इस अपरिचित संवेदनाहीन विदेश में भी आरम्भ से ही एक सपना पाले हुए थे। इन्होंने अपने व्यवसाय में दुःखीमन से हमेशा महसूस किया था कि मध्य-वर्ग की जनता के लिये लकड़ी की साधारण चीजें बहुत मंहगी पड़ती हैं जिसकारण वे खरीद नहीं सकते और कष्ट पाते हैं। शिवदत्त जब शहर में रहा करते तब लकड़ी की कमी देख इस कष्ट को अनिवार्य समझा करते। लेकिन जब से पोंगा आये तब इन्होंने स्पष्ट देखा कि लकड़ी की कमी नहीं, केवल पर-हित-प्रेरणा और सक्रियता का अभाव है। इधर लकड़ी की बरबादी जा रही है और उधर लकड़ी की कमी के कारण लोग नाहक कष्ट झेल रहे हैं। तभी से इन्होंने एक ऐसे कारखाने का चित्र मन में तैयार किया जहाँ साधारण जनता की जरूरत की चीजें तैयार की जायँ, जैसे तख्तपोश, स्टूल, मामूली कुरसी और टेबुल,

चारपाई के पावा-पाटी, केवाड़, चौखट, नहान की चौकी, कपड़े टाँगने की खूँटी, बैलगाड़ी के चक्के, हल 'जुआठ, इत्यादि। ये चीजें बनें मुख्यतः लकड़ी की उन किस्मों और हिस्सों से जो अभी जंगल में ही छोड़ दिये जाते थे महज इस लिये कि इन्हें बाजार तक पहुँचाने में कीमत से अधिक खर्च पड़ता था। यदि जंगल में ही इन्हें चीर-काट कर इनसे उपस्कर के विविध अंग तैयार कर लिये जायँ तब ले जाने में अधिक खर्च न बैठे। व्यवसायी को लाभ भी हो, राष्ट्र की सम्पत्ति का सदुपयोग हो, और साथ-साथ जन-साधारण की आवश्यकता सस्ते दाम में और सुविधा से पूरी हो जाय।

जेफरन की अनुभवी व्यवसाय-बुद्धि परिस्थिति की तह तक पहले ही पहुँच चुकी थी। वे समझ गये थे कि लकड़ी की बरबादी यदि कम की जाय तो लाभ अधिक होगा। उन्होंने इसी कारण उपस्कर तैयार करने की योजना बनाई थी और यह कारखाना खोला था। लेकिन जेफरन की नजर स्वभावतः आर्थिक पहलू पर ही थी। कुछ भी बने, बरबाद जा रही लकड़ी काम में आने से ही कम्पनी का लाभ बढ़ेगा। और स्वभावतः ही उनकी सूची में अमीरों के इस्तेमाल के सरंजाम थे जैसे सुन्दर ड्राइंग-रूम सेट, सोफा, पलंग, कीमती आलमारी, शराब के भड़कीले छोटे टेबुल, आराम कुरसी, इत्यादि। शिवदत्त इस दृष्टिकोण के अलावे साधारण जनता और राष्ट्र-हित की नजर से समस्या को देखा करते। हमारे राष्ट्र की वन-सम्पत्ति से जन साधारण को लाभ होना चाहिये क्योंकि लाभ पहुँचा कर ही वन-रक्षा की ओर इनकी सहानुभूति और सक्रिय सद्भाव आकर्षित किया जा सकता है। इस लिये वे जेफरन की योजना के बावजूद भी अपने मन से ही मामूली चीजें ही बनाया करते। मनसुख दास इसमें हस्तक्षेप करते और नाना प्रकार से शिवदत्त को सताया करते। जेफरन के यहाँ शिकायत भी ले जाते कि शिवदत्त आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है। जेफरन सुन लेते लेकिन न कुछ करते न कोई हुक्म ही देते। उनका शिवदत्त पर पहले से ही विश्वास था। वे जानते थे जो कुछ शिवदत्त कर रहे हैं सोच-विचार कर अच्छे के लिये ही कर रहे हैं। शिवदत्त को खुल्लम-

खुल्ला शह तो न दे सकते थे, एक तो मनसुख दास के रोब-दाब का सवाल था दूसरे इथेल दास की मधुरिमा का जादू। लेकिन भीतर-भीतर वे सब कुछ जानते थे। अन्त में जब आढ़त का प्रश्न आया तब जेफरन को खुलना पड़ा। तब से शिवदत्त को आत्म-विश्वास हुआ और बिक्री के निश्चय से उत्साह ने उन्हें प्लावित कर दिया।

मनसुख दास की हार तो हुई लेकिन उन्होंने शिवदत्त के साथ अपना बुरा बरताव न छोड़ा, बल्कि उनका डंक और तेज हुआ। ईर्ष्या तथा आत्म-रक्षा ने और भी नग्न रूप धारण किया। एक दिन मनसुख दास ने शिवदत्त की बनाई चीजों को ऐसे अपमान से ठोकर मारी कि शिवदत्त कट कर रह गये। अन्य कर्मचारी इस अनाचार पर क्षोभ और क्रोध से विचलित हो जंजीर से बँधे खूँखार वन-जन्तुओं की तरह मनसुख को देखते रह गये। दूसरी बार मनसुख दास का बूट शिवदत्त की टाँग में आ लगा। मिसेज इथेल दास साथ थीं। जब शिवदत्त बूट की चोट से तिलमिला उठे तब मिसेज दास मुंह पर रूमाल डाल खूब आनन्द से हँसने लगीं।

यों तो शिवदत्त अब यदि मनसुख को ईंट का जवाब पत्थर से देते और इन्हें चल हट कह कर इनकी अनसुनी कर देते तो इथेल के लाख रूप-सौदा के बावजूद भी जेफरन शिवदत्त का ही पृष्ठपोषण करते। किन्तु शिवदत्त की विनयी प्रकृति मानो भारत-सभ्यता की अपरिसीम क्षमा और सहिष्णुता की प्रतिमूर्त्ति हो! वे ऊपर से उसी पूर्ववत शिष्टता से बरताव करते गये, गम खाते गये, अन्याय का प्रतिकार सोचा तक नहीं। कारखाने के अन्य कर्मचारीगण मनसुखदास की ओछी निर्दयताओं और अन्याय-व्यवहारों से इतना ऊब गये थे कि यदि शिवदत्त उन्हें बराबर धर्म और अहिंसा की शिक्षा न देते रहते तो एक न एक दिन मनसुख दास की शामत आ गई होती। परन्तु बाहर कोई खास फर्क न होते हुए भी शिवदत्त के मन का पलरा बिलकुल पलट गया था। पहले शिवदत्त राना मनसुख के अमानुषी व्यवहार पर मार्मिक पीड़ा पाते और असहाय निराशा में डूबे हुए सोचा करते, भगवान ने मुझे कैसे विषैले काँटों में फेंका, मैं कै दिन यहाँ टिक सकूँगा। अब वे प्रसन्न-मन दयामय परमात्मा को धन्यवाद

देते कि उन्हें वह काम करने का अवसर मिला जो उनके जीवन की सबसे बड़ी मुराद था। अब वे मनसुख दास के ईर्ष्या तथा दुष्टता भरे दोषारोपण पर उतना ही ध्यान देते जितना ऊँट के काफिले के पीछे कुत्ते के भूँकने पर ध्यान दिया जाता है। अब मनसुख दास इनकी बनाई चीजों को या इन्हीं को ठोकर मारते तो शिवदत्त मुसकुराया करते!

कुछ दिनों के बाद शिवदत्त को उपस्कर की लकड़ी चुन कर लाने के लिये बाबूडेरा जाना पड़ा। बाबूडेरा नाम से यह मत समझिये कि वह चहल-पहल की बस्ती है, बाबू लोगों की आसाइश के वहाँ सरंजाम हैं, पान-सिगरेट की दूकानें, होटल-सराय। बाबूडेरा गंभीर सारंडा-वन की निभृत निर्जनता में एक विन्दु-स्थान है। इस वन-सागर में स्थान विशेषों का नामकरण उतना ही मुश्किल है जितना असीम समुद्र में जगह-जगह का नाम रखना। लेकिन बाबूडेरा ने नाम इस तरह पा लिया कि बहुत वर्ष पहले कम्पनी के कुछ कर्मचारी आस-पास का काम देखने के लिये यहाँ लकड़ी-घास की झोपड़ी बना कर कुछ दिन रहे थे। निकटवर्ती आदिवासी इस पहाड़ को बाबूडेरा कहने लगे। अब उन झोपड़ियों का नामोनिशान भी नहीं पर जगह का नाम कायम है।

जम्बोरा हो और परदन हो को ले शिवदत्त बाबूडेरा के लिये रवाना हुए। शिवदत्त का सामान ढोने के लिये एक मजदूर भी साथ चला। परदन और जम्बोरा अपना थोड़ा बहुत सामान खुद ले चल रहे थे।

थोड़ी दूर चलने के बाद एक पहाड़ी नाला मिला। पत्थरों के साथ ऊधम मचाता, कोलाहल करता, समुच्च शाल वृक्षों की छत्र-छाया में यह अशान्त स्रोत इस तरह खेलता-कूदता बह रहा था मानो माँ-बाप की देख-रेख में छोड़ा बच्चा मगन-मत्त हो! कैसी अतल निस्तब्धता थी, किस तरह जल-धार के इस पार और उस पार के उन्नत तरुवर आध्यात्मिक स्तर पर गले मिल रहे थे! जल-स्रोत मूक अरण्य को मुखर कर रहा था और सदियों की तपस्या से अर्जित तपोभूमि के ज्ञान को भोले बालक की भाषा में भरमे हुए मानव को दे रहा था!

आगे बढ़ने पर वन और भी सघन होने लगा। एक ओर गहरी पथरीली

खाई के बीच नाले की पतली अधीर धारा, दूसरी ओर दीवार की तरह खड़ा पहाड़। और दोनों ओर अभेद्य वन का अनन्त प्रसार। शिवदत्त के पैर तो भय से रुकने लगे लेकिन अपने साथियों पर उन्हें पूरा भरोसा था। ये आदिवासी उसी मात्रा में इन अरण्यों के अधिकारी कहे जा सकते हैं जिस मात्रा में वृक्ष-पल्लव अथवा वन-जन्तु। वन की एक-एक नाड़ी इनकी उँगलियों के नीचे रहती है। वनस्पति-समाज से इनका पल-पल का संग है। वन-जन्तुओं को ये लोग इतनी घनिष्टता से जानते हैं जैसे पोस न मानने वाले घरेलू जानवर हों!

जाड़े के दिन थे। ओस रात को इतनी पड़ी थी कि सुबह नौ बजे तक पत्तों से शबनम की बूँदें टप-टप गिर रही थीं। अतल नीरवता में यह टप्-टप् शब्द ऐसा लग रहा था जैसे प्रकृति के मौन संगीत का तरल ताल हो। शिशिर-सिक्त लता-पल्लव सूर्य के प्रकाश में चम-चम चमक रहे थे और फाँकों से पार कर जहाँ-तहाँ धूप के टुकड़े विविध आकार-प्रकार लिये जमीन पर पड़े हुए थे। जम्बीरा हो रास्ते को निहारता हुआ जा रहा था। एक जगह वह रुक कर बोला—कल रात इसी रास्ते एक साम्भर, एक बाघ और कई जंगली कुत्ते हम लोगों के आगे आगे गये हैं।

शिवदत्त के पैर एकाएक बँध गये। उन्हें ऐसा लगा जैसे बाघ अपनी मंडली के साथ चालाकी से आगे निकल कर बैठा हुआ है कि शिवदत्त जी जहाँ पहुँचे कि उन्हें चट किया। उन्होंने जम्बीरा हो से पूछा—अब क्या होगा? हम लोगों के पास तो बन्दूक भी नहीं। बड़ी भूल हुई जो इस तरह आ गये। खैरियत अब इसी में मालूम होती है कि हम लोग चुपचाप लौट चलें नहीं तो बाघ हम तीनों को तीन शाम की खुराक बना लेगा।

यह कह वे लौट पड़े।

जम्बीरा ने अपने पैर आगे की ओर बढ़ाते हुए कहा—नहीं, राना जी, डरने की कोई बात नहीं। हम लोग अपनी राह चलते चलें।

शिवदत्त को यह आश्वासन वैसा ही लगा जैसे मरणासन्न मनुष्य को दार्शनिक का दिलासा, कोई डर नहीं, आत्मा अमर है, मृत्यु तो केवल गृह-परिवर्तन मात्र है! बोले—हाँ, मरने के बाद तो कोई डर बचा नहीं

रहेगा। मगर दर्शन भी यह नहीं कहता कि जान-सुन कर हम मौत के मुँह में कूद पड़ें। जब सामने राह के ऊपर मुँह खोले बाघ बैठा है तब यह कौन सी बुद्धिमानी है कि हम आँख खोले उसके मुँह में एक-एक कर समा जायँ?

फिर उनका ध्यान गया साम्भर के ऊपर। साम्भर तो हिरन जाति का जन्तु है, यह आदमी को नहीं मारता, बल्कि बाघ ही इसे खाता है। पूछा—और यह साम्भर क्यों बाघ के साथ घूम फिर रहा है? क्या इसे बाघ नहीं मारता? हाँ, हो सकता है कि आदमी के सुस्वादु मांस की प्रतीक्षा में बाघ साम्भर की परवाह न करे। हमने सुना है कि बाघ को जब एक बार आदमी के मांस और रक्त का स्वाद मिल जाता है तब हिरन या मवेशी उसकी देह पर भी गिरें तब भी वह आँख उठा कर नहीं देखता।

ज़म्बीरा हो ने कहा—साम्भर को ही तो पीछा करते करते बाघ गया है, आगे-आगे साम्भर, पीछे से दबे पैर लुकता-छिपता बाघ। साम्भर बाघ के बल के सामने तो कुछ भी नहीं, लेकिन उसके पैरों में गति है, शरीर में आत्म-रक्षा की प्रेरणा है, उसे पकड़ कर मार डालना बाघ के लिये आसान नहीं। कभी-कभी सारी रात या कई दिनों तक भी किसी हिरन, साम्भर या जंगली सूअर का पीछा करते रहने के बाद ही बड़ी हैरानी, परेशानी से, कौशल-छल से, बाघ उसे पकड़ पाता है। बाघ के नर-भक्षक बन जाने का एक कारण यह भी है।

परदन और जम्बीरा दोनों को सम्पूर्ण निर्भय देख शिवदत्त भी आगे बढ़ने पर राजी हुए। इन सरल अनुभवी आदिवासियों पर इनका पूरा विश्वास जम गया था। लेकिन जम्बीरा का अन्तिम वाक्य सुन कुतूहल ने प्रश्नों की भीड़ लगा दी और ये प्रश्न शिवदत्त के मन में एक दूसरे के साथ इस तरह हाथा-पाई करने लगे जैसे सिनेमा घर के फाटक पर दिलदार फिल्म के दिन चौथी श्रेणी के दर्शकवृन्द किया करते हैं। चलते-चलते ज़म्बीरा हो से पूछा—बाघ का तो आदम-खोर नाम ही है, जहाँ आदमी को पाया, पकड़ा और खाया। उसके खास तरह से नर-भोजी होने की बात कहाँ से आई?

जम्बीरा ने अनुभव की गहराई से जवाब दिया—नहीं राना जी,

स्वभाव से बाघ नर-भोजी नहीं होता। वह आदमी से उतना ही बच कर रहना चाहता है जितना आदमी उससे बचना चाहता है। हिरन, साम्भर जंगली सूअर ही उसके स्वाभाविक खाद्य हैं। लेकिन बुढ़ापे के कारण या घाव रोग से जब वह दुर्बल हो जाता है और जंगली जानवरों की दौड़ पकड़ में जितने परिश्रम की आवश्यकता होती है उतना परिश्रम नहीं कर पाता तब प्राण-रक्षा के लिये उसे सहज मार्ग की खोज करनी पड़ती है। मवेशी मारना वन-जन्तुओं को मारने से आसान है और सबसे आसान है निरस्त्र आदमी को मारना।

घातक बाघ की विनय-स्तुति सुन इस भय-अनिष्ट के वातावरण में भी शिवदत्त मुस्कुराये। चुटकी लेते हुए बोले—तब आपका कहना यह है कि अगर बाघ बूढ़ा न हो और न उसे घाव-रोग ही हुआ हो तब जो चाहे उसके साथ भेंट मुलाकात करे या सामने से उसको शुभेच्छा-सहित आवे-जाय। अगर बाघ कुछ बोलेगा भी तो यही कहेगा, देखिये मैं हट्टा-कट्टा मजबूत जवान हूँ, मेरी पेशियों को छूकर देखिये, मेरी सख्त हड्डियों का मुलाहजा फरमाइये, मैं क्यों किसी को पकड़ूँ-मारूँ ?

जम्बीरा हो ने पहले ही की गंभीरता से फिर कहा—हाँ राना जी, ऐसा भी देखा गया है कि अकेले राहगीर को बीच वन में टेढ़े-मेढ़े रास्ते के मोड़ पर अचानक बाघ बैठा हुआ मिल गया। आदमी तो डर से काठ हो गया, अपने प्राणों का वहीं अन्त समझने लगा, लेकिन बाघ ने कौतुक से उसे एक बार देखा फिर नाहक तंग किये जाने को हल्की गुर्राहट के साथ धीरे-धीरे रास्ता छोड़ कर हट गया। आदमी अपनी राह बढ़ता गया।

इसी बीच अगले घुमाव पर ही यात्रियों को तीन-चार मोर-मोरनी नजर आये। सड़क पर स्वच्छन्द चर रहे थे, कल्लोल कर रहे थे। आदमी को देख आश्चर्य से निहारने लगे मानो पूछ रहे हों, आप सरीखा पशु-पक्षी तो कभी देखा नहीं, आखिर आप हैं कौन ? शिवदत्त चुपचाप खड़े, तन्मय हो, इस नैसर्गिक छटा से अपना मन-प्राण भर रहे थे। चारों ओर भेद-भरी निस्तब्धता सोई पड़ी थी। ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े पहरा दे रहे थे। कुछ दूर से निर्झर का हर हर शब्द कानों में आ रहा था जैसे महादेव-मंदिर में

कोई स्तुति-पाठ कर रहा हो! एक क्षण के बाद मोरों ने अविश्वास का मौन प्रस्ताव पास किया और चौंक कर झाड़ियों में भाग गये।

चलते-चलते शिवदत्त ने कहा—कितने सुन्दर हैं ये जंगली मोर! मैंने पालतू मोर देखे थे, घर में, चिड़ियाखाने में, लेकिन इनमें और उनमें जैसे असल और नकली का फर्क हो! इस सौम्य प्रभुता से विचर रहे हैं जैसे प्रकृति-साम्राज्य के ये ही गर्वीले उत्तराधिकारी हों! मगर मोर को नाचते मैंने कभी नहीं देखा।

जम्बीरा—इनका नाच देखना हो तो अप्रैल-मई में आपको दिखाऊँगा। नर मोर पंख फैलाये नाचता है, मोरनियाँ घेर कर, घूम घूम कर, मुग्ध नयन निहारती हैं। डेढ़ दो महीने रोज सुबह-शाम अखाड़ों में नाच होता है। हर एक मोर अपना अलग अखाड़ा बना लेता है और वहीं जाकर रोज नाचता है। अखाड़े में पहुँच मस्तानी गर्दन उठा कर "केहों केहों" पुकारता है। यह संकेत-ध्वनि सुन प्रेम-विह्वल मोरनियाँ मँडराती खिच आती हैं। तब मोर नाचता है, मोरनियाँ लालसा और प्रशंसा की आँखों से ताकती रहती हैं।

शिवदत्त का मन भी भय के भँवर से निकल रस-अम्बर में मँडराने लगा जहाँ मोर गर्व से नाचता है, मोरनी अपने साजन की छवि देख धन्य होती है। भय-गर्भित वन विनोद-वाटिका बन गया। फाँस की तरह झूलती लतायें शकुन्तला की सखी हो गई! लेकिन तुरत रास्ते के ऊपर हाथी की लीद मिली, सड़क के आर-पार झुकाये हुए बाँस के झाड़ मिले और कठोर वास्तविकता ने शिवदत्त को फिर निर्दय झटका दिया। शिवदत्त रुक गये तो जम्बीरा ने कहा—कुछ ही देर पहले जंगली हाथी हम लोगों के आगे-आगे गया है।

शिवदत्त—अगर हाथी सामने मिल जाय तो क्या करना होगा? हमें तो कुचल ही डालेगा!

जम्बीरा—हथिनी हो तो हमला नहीं करती, रास्ते से हट जाती है। नर हाथी भी दल में रहे तो साधारणतः घातक नहीं होता, डराता है पर हमला नहीं करता। हाँ, बदमाश हाथी हो तो खतरा है।

शिवदत्त ने पहेली पर प्रकाश माँगा—बदमाश और नेक की क्या पहचान है ?

जम्बीरा—हाथी हमेशा दल में रहते हैं, चार-छः, आठ-दस मादा हाथी और एक नर। दल कितना भी बड़ा हो, एक नर हाथी से अधिक एक दल में नहीं रह सकता। यदि दूसरा नर कहीं से आ जाय और दल को दखल करना चाहे तो दोनों में मल्ल-युद्ध आरम्भ हो जाता है। जो हारता है वह भाग जाता है और तब से पागल क्रोधी की तरह जिसे पाता है अकारण मारता फिरता है। कभी-कभी तो दो में एक लड़ते-लड़ते मर भी जाता है। अभी हाल में ही दो हाथियों के बीच घोर संग्राम हुआ था। दोनों के चिंघाड़ सुन वन-पहाड़ दहल जाते, हम लोगों को कितना डर लग रहा था! अन्त में उनमें से एक बुरी तरह घायल हो पानी पीने कोइना नदी में घुसा और चट्टानों के बीच गिर कर मर गया। उसके शरीर में कई जगह दाँत के छेदे हुए घाव मिले। मरे हाथी के दाँत वन-विभाग ने सरकारी खाते में जमा कर दिये लेकिन उसका सिर अभी तक कोइना नदी में सड़ रहा है। आँखें गीधों ने निकाल ली हैं, चमड़ा सिकुड़ कर सड़ रहा है, क्या दर्दनाक दृश्य है! एक दिन यही हाथी मतवाला बना, राजा बना, गर्व से डोलता फिरता था, आज कोइना नदी की क्षुद्र धार उसके सड़े झूलते चमड़े को थपेड़े मार रही है और आँखों के खोखल दीन दृष्टि से दिगन्त की मौन मिन्नतें कर रहे हैं!

किन्तु शिवदत्त की मानस-स्थिति न तो प्राणी-शास्त्र के जिज्ञासु की थी न एक मरे हाथी की दीन अवस्था पर आँसू गिराने की। वे तो स्वयं अपनी रक्षा की चिन्ता में डूब उतरा रहे थे। पूछा—मगर आपने यह न बताया कि यदि हाथी हमला कर ही दे तो किस तरह बचाव किया जाता है।

जम्बीरा—हाँ, तो यदि हाथी आदमी पर टूटे तब पहाड़ के उतार पर भागना चाहिये। समतल पर दौड़ने या ऊँचाई पर चढ़ने में हाथी से हम पार नहीं पा सकते। इतना विशाल शरीर लेकर वह तेज दौड़ कैसे सकता है समझ में नहीं आता लेकिन थल-मल करता हुआ वह घोड़े की

चाल भागता है। केवल उतार पर वह बेकाबू हो जाता है। हर घड़ी डरता रहता है कि कहीं लुढ़क न जाय क्योंकि एक बार यदि इन तीखे उतारों पर लुढ़क जाय तो हाथी टुकड़े-टुकड़े बन पाताल पहुँच जायेगा।

अगले मोड़ पर सड़क से नीचे दलाईगाड़ा नाला में एक सुन्दर दह मिला। शिवदत्त कुछ थक गये थे, भूख भी लग रही थी, इस लिये निश्चय हुआ कि इसी दह के किनारे जरा आराम कर लिया जाय। इन पहाड़ी नालों में जहाँ-तहाँ छोटे-बड़े दह मिलते हैं—पानी झील की तरह फैला हुआ, गहरा, शान्त, नितान्त गति-हीन। ऐसा लगता है जैसे अशान्त धावमान जल-स्रोत, पत्थरों से लड़ता, चट्टानों पर चोट करता, कभी कूदता, कभी लुढ़कता, जब श्रान्त हो जाता है तब विश्राम के हेतु जहाँ-तहाँ पड़ाव डालता है! क्या मनोरम शान्ति थी! अनन्त-यात्री आत्मा को निर्वाण में कदाचित् यही कमनीय शान्ति प्राप्त होती हो! तट से लगे बेल-गुल्म मस्तक झुका इस समाधिस्थ तपस्वी को प्रणाम कर रहे थे! उनके पीछे बधू-लता श्वेत पुष्पों के यौवन-मद से उन्मत्त इठला रही थी। कहीं पेड़ों को बाहु-पाश में बाँध रही थी, कहीं अलसा कर झाड़ियों पर बिखरी पड़ी थी। ऐसा मालूम हो जैसे प्रकृति अपने कानन-कुसुम की सम्पूर्ण निधि से नवोढ़ा बधू का श्रृंगार कर अपनी साध पुरा रही हो!

परदन ने कहा—इन दहों में हम लोग मछली मारते हैं।

शिवदत्त—जाल से?

परदन—हाँ जाल से, छोटा-छोटा गोल-गोल जाल होता है। फिर बंसी से भी। कोई कोई विष से मछली मार लेते हैं लेकिन यह वन-विभाग के कानून से मना है।

शिवदत्त को आश्चर्य हुआ कि मछली को विष कैसे खिलाया या पिलाया जायेगा। विष खिलाने के लिये तो पहले मछली को पकड़ना पड़ेगा या उसे निमन्त्रण देकर बुलाना पड़ेगा। और जब मछली को पकड़ ही लेंगे तो विष पिलाने का क्या काम? इनको चकराये हुए देख जम्बोरा ने कहा—कई ऐसे पेड़ होते हैं जिनकी छाल या फल को कूट-पीस कर दह में डाल दिया जाय तो सारी मछलियाँ मर कर ऊपर छितरा जाती हैं।

इन मछलियों के खाने से आदमी को विष नहीं लगता। कहीं कहीं डाइनामाइट (विस्फोटक) को पानी के भीतर फुटा कर दह की मछली मार ली जाती है। लेकिन ये दोनों तरीके बुरे हैं इस लिये इनकी मनाही है।

शिवदत्त का ध्यान फिर जंगली जन्तुओं पर गया। पूछा—यहाँ तो बाघ-हाथी पानी पीने भी आते होंगे?

जम्बीरा—हाँ, गरमी के दिनों में आते हैं। इस मौसम में और जगह भी पानी मिल जाता है।

परदन ने कहा—गरमी में दहों के पास छिप कर शिकारी लोग हिरन, साम्भर, बाघ इत्यादि मारते हैं। बेचारे प्यासे जानवरों को आना ही पड़ता है, दिन रात में कभी न कभी, और शिकारियों को बिना परेशानी के शिकार हाथ लग जाता है।

जम्बीरा—हिरन या साम्भर को इस तरह मारना निरी कायरता और नीचता है।

नीति के प्रवाह में बह कर शिवदत्त ने कहा—मैं तो कहूँगा कि प्यास की विवशता से लाभ उठा कर घातक बाघ को भी इस तरह मारना कोई बहादुरी नहीं।

कुछ देर विश्राम करने के बाद फिर चारों आदमी चल पड़े। वन और भी सघन होने लगा। घाटी अति संकीर्ण हो गई। दोनों ओर से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ वन-सरिता को बलात् दबाये हुए थे और वह इस अन्याय का उच्च कण्ठ से विरोध करती हुई शायद न्यायालय झपटी जा रही थी! जहाँ-तहाँ हल्के गुलाबी रंग के कचनार फूल खिले हुए थे। पुंजीभूत निस्तब्धता में अचानक खर-खुर शब्द सुन पड़ा। जम्बीरा ने गौर से देखा और चुपके-चुपके उँगली से बता कर कहा—देखिये, दो साम्भर खड़े हैं। आहट पा ये पहले भाग खड़े हुए थे, फिर कुतूहलवश ठमक कर ताक रहे हैं।

एक क्षण के बाद दोनों साम्भर दौड़ मारते हुए झाड़ियों और कोमल पौधों को रौंदते हुए निकल भागे।

शिवदत्त ने मुग्ध हो कहा—बड़ा सुन्दर दृश्य है वन-पशुओं को स्वच्छन्द वन में विचरते देखना! लेकिन मैं तो सोच कर आया था कि

यह दृश्य पग-पग पर मिलेगा, यहाँ तक कि हमें आगे बढ़ने के लिये सशरीर उन्हें हटाना पड़ेगा या हमेशा हल्ला-गुल्ला करते रहना होगा। यहाँ हम लोग इतना चुप-चाप चल रहे हैं तब भी अब तक ये दो साम्भर ही दीख पड़े हैं।

जम्बीरा——जैसा मैंने आपसे एक बार पहले भी कहा है, जंगली जानवर आदमी से उतना ही दूर रहना चाहते हैं जितना आदमी उनसे बचना चाहता है। इसीलिये आदमी की आहट पा या गंध पा ये सरक जाते हैं। इनका कान सतर्क होता है और नाक इतनी तेज कि मील भर से आदमी की गंध पा जायें, खासकर यदि हवा उनकी ओर बहती हो। एक कहावत है कि जितनी देर में आप एक वन-जन्तु को देख पाये हैं उतनी देर में दस वन-जन्तु आप को देख चुके हैं।

घुमघुमाव रास्ते पर चलते-चलते एक अति विशाल शाल वृक्ष मिला। स्तंभ सा सुडौल सीधा, ऊँचा डेढ़ सौ फुट से कम न होगा। सफेद रंग से उसके तने पर लिखा हुआ था, चौदह फुट सात इंच घेरा। वन-विभाग ने वनस्पति के इस श्रेष्ठ गौरव को संरक्षित कर लिया है ताकि भावी पीढ़ियाँ परमात्मा की ऐसी महान कृति से प्रेरणा पायें। आँख उठा कर चोटी निहारते सर चकरा जाता है। अक्षत-फूल दिखला कर जम्बीरा ने बतलाया कि आस पास के आदिवासी इस पेड़ की पूजा करते हैं। क्यों न पूजा करें जब अनायास मस्तक नत हो जाता है उस अलौकिक अचिन्त्य शक्ति के सम्मुख जिसकी सृष्टि यह अद्भुत विशाल वृक्ष है! इसी शक्ति को कोई प्रकृति कहता है, कोई परमात्मा कहता है। आदिवासी इसे बोंगा कहते हैं, जिसका अर्थ देवता या भूत प्रसंगानुकूल दोनों होता है। नास्तिकगण इस शक्ति को चेतनाहीन बताते हैं जिसे अपनी कृतियों का श्रेय पाने का अधिकार नहीं। ईश्वर के ऊपर न विश्वास करने वाले कहेंगे, शाल वृक्ष का ऊँचा, सुडौल और मोटा होना तो स्वभाव-सुलभ है, इसमें शक्ति की प्रेरणा अथवा परमात्मा की महिमा का कहाँ समावेश है? इनकी दलील उसी तरह की है जैसे पिता की कमाई पर अबोध बालक कहे——बाबूजी के पास तो पैसा रहता ही है, इसमें उनके परिश्रम या अक्ल

की बात क्या ? जो भी हो, शिवदत्त बड़ी देर तक ध्यान-मुद्रा में खड़े इस गगन-चुम्बी शाल वृक्ष को देखते रहे। मानव-सृष्टि के प्रभात में जब प्रथम बार मनुष्य को पत्थर से ठेस लगी थी उस समय उसके मुँह से अनायास निकल पड़ा था---इसमें कुछ है, जो इसे ठोकर मारेगा उसे यह भी ठोकर मारेगा। जब उसने आँधी देखी, तूफान से हार कर गुफा में भागा तो फिर कहा---इसमें कुछ है। इसी तरह जल-प्रपात का घहरन सुन, दावानल को लपट से स्तंभित हो, उसने फिर कहा---इसमें कुछ है। यही आदि-ज्ञान---इसमें कुछ है---स्वयं से परे किसी अगम्य शक्ति का बोध ही ईश-कल्पना का मूल है। दर्शन, धर्म, अथवा विविध मतों ने इस शक्ति को अलग-अलग साँचे में ढाला है, अपनी अपनी कल्पना का रूप दिया है, नाम दिया है---ठीक उसी तरह जैसे छेने से कोई रसगुल्ला बनाता है, कोई पानतुआ, कोई संदेश। नाना तर्कों द्वारा ईश्वर का स्थित्व भी प्रमाणित किया जाता है। परन्तु ईश्वर अनुभूति की वस्तु है, तर्क की नहीं। महात्मा गांधी ने कहा था---यदि मेरे सामने अकाटच तर्कों और प्रमाणों से साबित कर दिया जाय कि ईश्वर नहीं है, फिर भी मैं अपने विश्वास को पकड़े ही रहूँगा कि ईश्वर है, ठीक उस बच्ची की तरह जो प्रमाणों के बावजूद, जब दो भाई-बहन के मरने के बाद पाँच ही बचे थे, अन्त तक कहती रह गई---हम सात हैं। प्रकृति के इस आध्यात्म्य-क्षेत्र में परमेश्वर की अनुभूति हर पग पर सशरीर खड़ी है। यदि इस श्रेष्ठ शाल में ईश्वर नहीं है तो कहाँ है ?

खैर, शिवदत्त को रात होने के पहले बाबूडेरा पहुँचना था, अधिक रुकने की गुंजाइश न थी। कहीं चढ़ाई मिलती थी कहीं उतार था। चढ़ने में साँस फूलती थी, उतरने में घुटनों पर ऐसा जोर पड़े जैसे ये दो टूक हो कर ही रहेंगे। किसी तरह अँधेरा होते होते बाबूडेरा पहुँच गये।

सीमाहीन सागर में कहीं कहीं जैसे एक चट्टान का टापू होता है उसी तरह इस घने वन के बीच बाबूडेरा का पड़ाव है। ओरेबुरु नाले के किनारे ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के नीचे काठ-घास की चार-छः मड़ैया हैं। चारो ओर पहाड़ों का घेरा, मानो यह प्रकृति की नाटचशाला हो। इस पर

आधिपत्य पाने के लिये सूर्य और पर्वत में अजीब होड़ लगी रहती है। सूर्य इस सुन्दर वन-बाला को भर-आँखों देख लेना चाहता है किन्तु गिरि-शिखर दोनों भुजाओं से उसे टालता रहता है! सुबह दस बजे तक सूर्य यहाँ पहुँच नहीं पाता और अपरान्ह में ही ढाई बजते न बजते शाम हो जाती है। नीरवता इतनी प्रगाढ़ है कि ऐसा लगता है जैसे दूर-दूर से वन और कन्दराओं की सुसुप्त शान्ति तार-तार खिंच कर यहीं पुंजीभूत हो गई हो! केवल मात्र एक ही शब्द है, ओरेबुरु वन-स्रोत का शिशु-कलरव। किन्तु इससे भी तीव्र वन और पर्वत की ध्वनि जान पड़ती है जो मूक भाषा में शान्ति भंग करने वाले इस नादान बच्चे को कह रहे हैं, चुप चुप!

शिवदत्त और उनके साथी इन्हीं झोपड़ियों में से एक में ठहरे। मजदूर जंगल के काम से लौट अपना-अपना भात पकाने में लगे हुए थे। किसी की मिट्टी की हाँड़ी थी, किसी का अलमुनिया का तसला। अलग-अलग चूल्हे पर सबका भात खदबद कर रहा था और मजदूर आग के पास फैल कर बैठे हुए अपनी थकान मिटा रहे थे। कोई कोई गा भी रहा था, कोई फीका बना कर पी रहा था। भात और माँड़ ये ही भोजन की मुख्य सामग्री थे। जिनके यहाँ विलास की गुंजाइश थी वे दाल भी पका रहे थे। कोई माटा की पत्ती जंगल से तोड़ लाया था, उसी की चटनी बना रहा था। कोई सारला या कोइनार के पत्तों का साग सिझा रहा था। शिवदत्त भी अपना भोजन बनाने बैठे। उन्हें यह वन-भोज अत्यन्त आह्लादकारी लग रहा था। पका रहे थे और मुग्ध-नयन चतुर्दिक ताक रहे थे, कभी कान लगा कर सुना करते। उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे जीवन की एक बड़ी कामना पूरी कर रहे हों। धार्मिक पुरुष थे, धर्म-ग्रन्थों में तपोवन का वर्णन पढ़ते तो चिन्तन में लीन हो जाया करते—किस प्रकार का सघन वन होगा, सुरम्य कुटी होगी, कैसा आध्यात्मिक वातावरण होगा! शहर से आकर पोंगा रहने का अपना अनुभव वे रामचन्द्र जी के बनवास से मिलाया करते थे—अनिवार्य, कष्ट-साध्य और एक आदर्श की पूर्ति के निमित्त किया हुआ। किन्तु बाबूडेरा की यात्रा उन्हें ऋषि-मुनियों की तपस्या के निमित्त की गई हिमालय-यात्रा सी लग रही थी। ठीक ऐसे ही

आश्रम में तपस्वी महात्मा रहते होंगे, इसी तरह का अरण्य गह्वर, ऐसी ही अतल शान्ति, ध्यान को घनीभूत करने के लिये ऐसे ही वन-निर्झर का तानपूरा! इसी अपार्थिव नीरवता में मनुष्य अपनी आत्मा की क्षीण वाणी सुन सकता है, जो आत्मा जन-कोलाहल में कुंठित हो पराई बनी रहती है। ऐसी पुण्य-भूमि में पहुँचते ही मनुष्य अनुभव करने लगता है जैसे सारी अनित्य सांसारिकता उसके शरीर से झड़ चुकी है, मन से कामनाएँ धुल चुकी हैं। ध्यान-तप द्वारा शरीर का परित्याग कर आत्मा परमात्मा में किस तरह लीन हो जाती है यह भी बोध-गम्य होने लगता है।

रसोई बनाते समय एक कोटरे की आवाज रह-रह कर आ रही थी। अचानक बाघ का गर्जन सुन पड़ा और दूसरी ओर से हाथी का चिंघाड़। वन काँप उठा। यह छोटा सा पड़ाव भय से और भी सिकुड़ गया। शिवदत्त स्तंभित हो शून्य दृष्टि से दूसरों का मुँह निहारने लगे और उनके कान सतर्क हो दिशाओं में गड़ गये। जम्बोरा से पूछा—अब क्या होगा?

जम्बोरा मुस्कुराया—होना क्या है?

—क्यों? इधर बाघ, उधर हाथी। हम लोग कैसे बच सकते हैं?

जम्बोरा ने समझाया—डरने की कोई बात नहीं। बाघ तो न आयेगा, हाँ, हाथी आ सकता है। बाबूडेरा तो हस्तीस्तान है ही! हम हाथियों के राज्य में हैं। आपने शायद गौर नहीं किया कि हाथियों ने सड़क का साइन-बोर्ड गिरा दिया है, छोटे-छोटे पेड़ों को तोड़ गिराया है, और उनकी अभी की लीद तमाम पड़ी हुई है।

एक क्षण के बाद मन्द हास्य के साथ जम्बोरा ने फिर कहा—मगर हम लोग तो हाथियों के शरणागत हैं और आपने एक बार कहा भी था कि धर्म पुस्तक शरणागत की सेवा सिखलाती है। फिर हाथी शायद गणेश का रूप भी है। हाथी हमारी अतिथि-सेवा करेंगे, हम डरें क्यों?

शिवदत्त सोच रहे थे, क्या धर्म पुस्तक का अर्थ निकालना है और क्या शरणागत की सेवा है! सेवा तो हाथी कर सकता है पैरों से कुचल कर भी या बाघ मुंह में निगल कर, क्योंकि दोनों विधियों से इस किल्बिस-आलय जड़-शरीर से आत्मा मुक्ति पा जायेगी! वैसे तो बाघ भी दुर्गा

का वाहन है। लेकिन इन विकराल घातक जन्तुओं से न दुर्गा बचा सकती हैं, न गणेश। यदि कोई बचा सकता है तो ये अनुभवी निडर आदिवासी संगी ही। बोले—धर्म-पुस्तक और गणेश अपनी अपनी जगह हैं, यहाँ तो आप लोगों का ही भरोसा है।

शिवदत्त जब सोने गये तो उन्हें तपस्वियों की उस परिस्थिति का आभास मिला जब वे राक्षसों और हिंस्र जंतुओं से त्रस्त हुआ करते थे।

११

जेफरन साहब अपने बाग में टहल रहे थे। कुछ देख रहे थे, कुछ सोच रहे थे। सोच रहे थे शायद अधिक, क्योंकि आँखें पृथ्वी के बदले आकाश को ही निहार रही थीं। हेड बेयरा अलीजान बरामदे के कोने में खड़ा शायद आदेश की प्रतीक्षा में ताक रहा था। जेफरन ने उसे बुलाया और फूल की क्यारियाँ दिखा कर कहा—बाग की हालत अच्छी नहीं है, अलीजान।

बाग का अच्छा न होना अलीजान की निजी शिकायत थी क्योंकि जेफरन को बाग बड़ा प्यारा था और उसका पूरा दायित्व इन्होंने खास अलीजान के ऊपर दे रखा था। अलीजान भी अपनी स्वाभाविक दक्षता से फूल-पत्तों को बढ़ाने-सँवारने में मुस्तैद रहा करता। साहब के कहने पर उसने बाग में फिर से नजर दौड़ाई। इस मौसम में फुलवारी जैसी रहा करती है वैसी ही थी—बीस, उन्नीस नहीं। अलीजान यह गैरवाजिब शिकायत सुन चकित और दुःखित हुआ। लेकिन साहब की बात न काट उसने अर्ज की—मैं तो, हुजूर, बराबर खुद देखा करता हूँ।

जेफरन—देखा करने ही से क्या होता है, अलीजान ? मैं दिन भर खड़ा रेगिस्तान को देखा करूँ तो क्या वह इसी से फूलने-फलने लगेगा ?

—नहीं, हुजूर।

—तब फिर ?

अलीजान—मैं खुद काम में शरीक हो मेहनत भी करता हूँ, हुजूर। कहाँ क्या होगा इसको तज्वीह करता रहता हूँ, कौन काम कैसे होगा यह भी खड़ा होकर बताता हूँ। देखिये न, गुलाब का वह नया पौधा जो है, उसको तो मजदूरों ने तमाम कर दिया होता अगर उनकी उँगली पकड़ मैंने न बताया होता।

जेफरन अलीजान की ओर घम कर बोले, उस भाव से जैसे बहुत देर तक ढूंढ़ते रहने के बाद रास्ता मिल गया हो—ठीक यही कहने का मेरा भी मकसद है, अलीजान। मजदूर अगर ठीक न हों तो तुम्हारी या मेरी खबरदारी कुछ नहीं कर सकती। गधे के साथ सालों मेहनत करने के बाद भी क्या उससे बाँसुरी की तान निकाली जा सकती है?

अलीजान—नहीं हुजूर।

—तब फिर?

अलीजान कई क्षण तक सोचने के बाद बोला—मजदूरों का अच्छा होना जरूरी है, हुजूर।

जेफरन—ठीक यही बात। बागबानी शौक की दीगर चीजों की तरह रुचि की वस्तु ठहरी। जिसकी रुचि घोड़े को घास काटने में है वह डिनर नहीं तैयार कर सकता।

—हाँ, हुजूर।

—तब फिर?

अलीजान—मैं अच्छे मजदूरों की तलाश करूँगा, हुजूर। मगर मुश्किल तो यह है कि ये लोग बागबानी बिल्कुल जानते ही नहीं। मोटी मजदूरी कर पेट भर पाल लेते हैं।

जेफरन—नहीं, अलीजान, यह मैं नहीं मानता। फूलों से इन आदिवासियों को जितना प्रेम है उतना तुमको हमको क्या होगा। और औरतें जिस मस्ती से फूल लेकर सिर सँवारती हैं उस मस्ती को तौलने के लिये हमारे-तुम्हारे पास बटखरा भी नहीं। कोई-कोई तो बड़े चाव से बागवानी भी करती हैं। यहीं तो उस दिन मैंने खुद देखा कि एक जवान औरत सहज मजदूरी के पैसे छोड़, जीविका की परवाह न कर, अपनी बूढ़ी माँ को लिये

जंगल-जंगल पौधे कोड़ती फिरती थी। उसे बागबानी से कितनी रुचि होगी यह अन्दाज से भी जाना जा सकता है।

अलीजान—किस तरफ, हुजूर?

—उसुरिया गाँव के नजदीक। नाम भी देखो बताया था, भला सा नाम है। मुँह में आ कर रह जाता है। हाँ, शायद बुदनी। ठीक, यही नाम है। बड़ा शौक है उसे फूलों-पौधों से।

अलीजान बुदनी को जानता था। कौन इस छावनी में, आस-पास के गाँवों में, बुदनी से अपरिचित था? बुदनी वह ऊँची मीनार थी जिसके ऊपर दिन में चमचम रेशमी झंडा फहराता है और रात में लाल-हरी रोशनी नाचती रहती है। उसे बिना देखे कौन रह सकता है? पोंगा हाट में विलास-वस्तुओं पर सतृष्ण दृष्टि डालते हुए बुदनी को देख अलीजान यह भी जानता था कि किस चीज से बुदनी को शौक है। दिकुओं की आँखों में प्रेम-लालसा अनजान से उभार देना, यही भर बुदनी जानती थी। फुलवारी का मर्म वह क्या जाने? लेकिन बुदनी की ओर साहब के आकर्षण की बात हवा में मँडराते-मँडराते अलीजान के चौकस कानों तक पहुँच चुकी थी। इसने यह भी देखा था कि जब हफ्ते की मजदूरी लेने बुदनी पोंगा आती है तब पोशीदा तौर से जेफरन साहब उसे भर-आँख देख लेने को उत्सुक रहते हैं। बोला—हाँ हुजूर, मैंने भी यही कई दिन हुए सुना है। और सोच ही रहा था कि उसे बाग के काम में लगाऊँ। मेरा अपना जो थोड़ा-बहुत शुबहा था वह आज आपके कहने से मिट गया।

जेफरन—ऐसे ही मजदूरों से तो बाग की खूबसूरती बढ़ेगी।

—हाँ, हुजूर।

—तब फिर?

अलीजान ने लपक कर कहा—तब फिर आज ही खबर भेजता हूँ, हुजूर। कल से बुदनी यहाँ काम करने लग जायेगी।

और ठीक कल से बुदनी बागबानी में लग गई। फूल खिले हों या मुरझा रहे हों, बुदनी सर्वदा खिली हुई दीखती। उसके मनोभाव मशीन के उस बोल्ट के थे जो गलत चूड़ी वाले छेद में भद्दी ताकत से ऐंठे जाने के

बाद अन्त में अपने ठीक सौकेट में पहुँच गया हो और अब इशारे से घूमता हुआ बढ़ रहा हो। बुदनी को जब जंगल का कड़ा काम करना पड़ता तब अंग-प्रत्यंग को देखती, अपने चिकने रंगीन ब्लाउज पर नजर फिराती, और रसिकों की आँख में अपना रूप निहारती। उस समय उसे शरीर से अधिक मन में ही कष्ट होता कि वह गलत रास्ते पर चलाई जा रही है, उसका अक्षम्य दुरुपयोग किया जा रहा है। अब उसे कोई शिकायत नहीं रह गई। बाग में मनमाना काम करती, कभी बँगले के बरामदे पर बड़ी देर तक बैठी जेमा-मजदूरिन से गप्पें लड़ाया करती। अलीजान की संतुष्ट मुखाकृति से ऐसा जान पड़ता था जैसे बुदनी की मेहनत से नहीं बल्कि उसकी परछाई से गुलशन गुलजार होगा। बुदनी ने पोंगा हाट से एक छोटा सा आइना खरीद रखा था। उसे साथ लेती आती और काम में लगने के पहले उसे बरामदे की दीवार-आलमारी के एक कोने में छिपा कर रख दिया करती। जब जेमा के साथ गप्प करने बैठती तब आइना ले कर बीच-बीच में अपना मुँह देख लिया करती। जेफरन साहब जब आवश्यकता-वश कमरे से बरामदे में निकलते और बुदनी पर अचानक उनकी नजर पड़ जाती तो बुदनी मुस्कुरा का जेमा को कुहनी मारती और दोनों खिलखिला कर हँस पड़तीं। हँसी के बीच भी बुदनी जेफरन को एक-टक देखती रहती और अकारण ब्लाउज सम्हालने लगती। लोग कहते हैं, इस शोखी की अदा पर, इस बन-कुसुम के अकृत्रिम आह्वान पर, कलाकार जेफरन, मैनेजर जेफरन को, इस तरह झटके देने लगते जैसे पार्क में बच्चा वर्जित फूल को तोड़ने के लिये माँ-बाप को खींचने-तानने लगता है!

संयोग से ऐसा होता कि बुदनी के विश्राम के समय ही कमरे के भीतर रेडियो बजने लगता, या जब रेडियो बजता तभी बुदनी के विश्राम का समय भी हो आता। कभी-कभी कुतूहल-वश बुदनी और जेमा के अतिरिक्त दीगर मजदूर-मजदूरिन भी रेडियो सुनने के लिये काम छोड़, बरामदे के निकट आ कर खड़े हो जाते। तब अलीजान उन्हें डाँट कर कहता—अपना-अपना काम करो, भीड़ मत लगाओ।

और सब चले जाते, बुदनी और जेमा रह जातीं।

एक दिन जेफरन ने कहा—अलीजान, आज अच्छा प्रोग्राम है। मेरी इच्छा हो रही है कि सभी मजदूरों को अन्दर कमरे में बैठा कर सुनाऊँ। बेचारों को और कहाँ रेडियो सुनने को मिलता होगा, कमरे की दरी और कालीन आधी मोड़ दो।

कमरे में भीड़ लग गई। मर्द आगे बैठ गये, औरतें पीछे रहीं। जेफरन ने अपनी पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप आदेश दिया—महिलायें आगे आ जायँ, मर्द पीछे बैठें।

स्त्रियाँ आगे आ गईं। बुदनी अधिकार की भाव-भंगिमा से सर्वाग्र पंक्ति में मुख्यासन पर बैठी। बैठते समय उसकी आँख जेफरन की आँख से मिल गई और दोनों मुस्कुरा दिये।

रेडियो का संगीत चल रहा था। श्रोता-मंडली में कानों के बजाय नेत्र ही अधिक क्रियाशील थे। सभी की आँखें लगी हुई थीं रेडियो-यन्त्र पर कि आखिर बोलता कौन है, इस छोटे से बक्स में आदमी घुस कैसे गया ! चुपके से कागज की एक गोली बना जेफरन ने बुदनी के शरीर पर फेंका। बुदनी चौंक पड़ी और अस्त-व्यस्त हो कपड़ा झाड़ने लगी कि कोई कीड़ा तो नहीं घुस गया। अन्त में जब कागज की गोली मिली तो उँगलियों से दबाते हुए उसने स्मित हास्य से जेफरन साहब की ओर देखा। जेफरन भी मुस्कुरा रहे थे। सारी मंडली मनोरंजन से खिलखिला कर हँस पड़ी।

इसके बाद से बुदनी और जेमा बरामदे के कोने में न बैठ दरवाजे पर खड़ी होकर रेडियो सुनतीं और झाँक-झाँक कर अन्दर देखा करतीं। जब जेफरन न रहते तो कमरे के भीतर भी चली जातीं और कई क्षण रेडियो से सट कर खड़ा रहने के बाद झटके से निकल भाग आतीं जैसे अबाटो लड़का वर्जित काम कर रहा हो। एक बार जब बुदनी ने झाँक कर देखा तो जेफरन पर नजर पड़ गई और नजर पड़ते ही बुदनी भागी और उसके पीछे-पीछे जेमा। जेफरन हँसते हुए निकले और बोले—भागती क्यों हो ? तुम दोनों अन्दर आ कर बैठो और गाना सुनो। डरने की क्या बात है ?

उसी दिन शाम को जेफरन ने अलीजान को बुला कर कहा—बँगले

की मरम्मत तो अभी कुछ दिनों के बाद होगी, अलीजान, लेकिन दीवारें मैली लगती हैं, क्यों न इनकी सफाई के लिये मजदूर लग जायँ ? रोज-रोज थोड़ा बहुत करते रहेंगे ?

कुछ क्षण बाद फिर बोले—मसलन, बुदनी और जेमा भी तो यह काम कर सकती थीं। कुछ देर बाग में काम किया, कुछ देर बँगले में।

अलीजान ने सम्पूर्ण सम्मति दे कर कहा, हाँ, हुजूर।

दूसरे ही दिन बुदनी और जेमा का दौरान सारे बँगले का हो गया। कुछ झाड़-पोंछ कर देतीं, अधिकतर बँगले में मँडराती रहतीं। जब हवा-खोरी की जरूरत मालूम होती तो फुलवारी में घूमने चली जातीं क्योंकि दोनों जगहों का काम इन्हें मिला हुआ था। जेफरन अक्सर देर-देर तक खुद खड़े होकर दीवारों की सफाई करवाते। कुछ दिनों से हो भाषा सीखने का अथक परिश्रम कर रहे थे। उसी का अभ्यास बुदनी और जेमा पर किया करते। खूब मनोरंजन रहता। कभी-कभी रबर या कागज की छोटी सी कोई चीज या दियासलाई का खाली डिब्बा बुदनी की छाती पर निशाना लगा कर फेंकते जब बुदनी का ध्यान दूसरी ओर रहता। बुदनी चौंक कर सीने पर हाथ फेरती और जेमा खिलखिला कर हँस पड़ती। बुदनी काम रोक कर वक्र अधरों से जेफरन की ओर इस तरह ताकती कि इतना दूरत्व न होता तो उसके नेत्र कहते—पाजी ! एक बार जेमा ने बुदनी को पीछे से अचानक ऐसा ढकेला कि वह जेफरन की गोद में आ गिरी, और जेफरन ने भी गिरने से बचने की प्रतिक्रिया में बुदनी को भुजाओं में बाँध लिया। क्षण के भीतर ही परिस्थिति का ज्ञान लौटा, उनकी भुजायें खुल गई और बुदनी घूम कर हँसती हुई जेमा को पीटने लगी।

दो दिन बाद अलीजान ने जेमा से कहा—बँगले के भीतर इतना ज्यादा काम नहीं है कि दो मजदूरिनें इसी में लगी रहें। बुदनी अकेले सम्भाल लेगी, तुम बाग में ही काम करो, कम्पनी का पैसा मशक्कत का पैसा है।

अब बुदनी अकेले बँगले में काम करती है। अलीजान हाता के परले छोर पर मजदूरों का काम देखता रहता है, दूसरे खानसामा और नौकर अलग बावर्चीखाने में अपना काम करते रहते हैं। बुदनी के काम का निरीक्षण

खास जेफरन के ऊपर आ पड़ता। झाड़-पोंछ में अक्सर उसके साथ रहते और थोड़ी-थोड़ी देर पर रेडियो सुनने चले आते तो बुदनी को भी साथ ले आते। जेफरन कुरसी के ऊपर बैठते, बुदनी बगल में कालीन पर। कभी-कभी बुदनी की उँगली पकड़ वे रेडियो का कल पुर्जा घुमाना उसे सिखलाते। बुदनी खड़ी होती रेडियो के सामने, जेफरन ठीक उसके पीछे कुरसी पर बैठे रहते। कल-पुर्जा घूम जाने के बाद भी काफी देर तक, मानो कर्म-फल की प्रतीक्षा में, बुदनी रेडियो के सामने खड़ी रखी जाती और शायद उसकी भुजाओं को स्टैंड की जरूरत थी क्योंकि जेफरन की दोनों बाहें बुदनी के नितम्ब से घुमाव ले लेतीं और उनके दोनों हाथ बुदनी की कलाई थामे रहते, बड़ी देर तक। एक बार जेफरन ने बुदनी को ऐसा झटका दिया कि वह उनके जंघों के बीच कुरसी पर आ गिरी। जेफरन का आलिं-गन-पाश उन्नत उरोजों पर अनायास बँध गया और वे उसके वन-श्री में डुबोये अधरों को गन्ने की तरह चूसने लगे। कई क्षण तक बुदनी संज्ञाहीन अवस्था में जेफरन के गाल से गाल सटाये, भुजाओं में भरपूर जकड़ी हुई उनकी गोद में सम्पूर्ण शिथिल पड़ी रही। फिर तुरत बिजली की गति से उठ खड़ी हुई और बरामदे के कोने में जा काँपने लगी।

१२

पोंगा में साप्ताहिक हाट लगा करती थी। हाट इन छोटा नागपुर अंचलों में विशेष महत्व और उत्सव का दिन है। हाट के दिन आदिवासियों की उमंग देख कर ऐसा लगता है जैसे सप्ताह के छः दिन केवल इसी आशा-प्रतीक्षा में बिताये गये हैं कि यह सातवाँ दिन आने वाला है। इस सातवें दिन प्रत्येक हाथ काम से हट गालों और बालों में लग जाता है। युवतियाँ भर-जोर गालों पर तेल मलती हैं, कुसुम का तेल हो सही, गंध उसकी क्यों न सड़े पुआल की हो, पर लालायित लोचनों से देख रहे रसिकों के लिये यही स्वर्ग-सौरभ है। युवक बालों को सँवार, उनमें कंघी अँटका, गले में मूँगों

का हार डाल निकल पड़ते हैं, बाँसुरी हाथ में लिये, निरन्तर आह्वान-भरी साप्ताहिक हाट की ओर। यहाँ हाट केवल खरीद-बिक्री की जगह नहीं है, इसका दायरा नीरस व्यवसाय तक ही सीमित नहीं, बल्कि देखने से मालूम होता है जैसे व्यवसाय ही गौण है, आनन्द-उत्सव हाट का प्रधान अंग है। यहाँ दूर गाँवों के साथी-सम्बन्धी आपस में मिलते हैं, समाचार का विनिमय होता है, शादी-ब्याह तय होते हैं, हँड़िया (एक तरह की हल्की शराब) पी जाती है और मुर्गे की लड़ाई में बड़े-बड़े घुड़दौड़ के जोश मात होते हैं। जिस सड़क को देखिए, जिस राह को भी निहारिये, किसी दिशा में दृष्टि दौड़ाइये, आदमी उमड़े आ रहे हैं हाट की ओर, जैसे बरसाती नदियों की बाढ़ हो! स्त्रियों के सिर भारी टोकरी है और पीठ पर बच्चा। मर्दों का कंधा बँहगी के भारा से गरम हो उठा है, कोई काठ का बंडल ढो रहा है, कुम्हार-कुम्हारिन मिट्टी के लाल-लाल बरतन ले जा रहे हैं, युवतियाँ और बच्चे साल-गुंगु के पत्ते लिये हुए हैं, और इन सभी के बीच कहीं-कहीं लम्बे केश की तरह गुँथी हुई सबाईघास या रस्सी जा रही है जो किसी को साधु की जटा की तरह लगती है, किसी को बाला की वेणी सी। किसी के पास कुछ भी नहीं, या है तो बस बाँस की एक बाँसुरी। लेकिन वह भी उसी तरह लपकता हुआ चला जा रहा है जैसे वाणिज्य का भारी सामान वह भी ढो रहा हो! हाँ, वह भी ढो रहा है अपने भावुक हृदय का सौदा, बेचेगा अपनी प्रेयसी को जो इसी क्षण शायद हाट में खड़ी सतृष्ण लोचनों से उसकी बाट देख रही है, या इसी उमंग और रफ्तार से, प्रेम से बोझिल, किसी और रास्ते हाट की ओर बढ़ती चली आ रही है। एक बूढ़ी औरत पन्द्रह मील से चली आ रही है दो सेर बैगन बेचने। एक आदमी बीस मील से चला आ रहा है गाय के लिये रस्सी लेने। बहुतों की गोद में एक-एक मुर्गा है, मस्त लड़ाका मुर्गा, जो अपने मालिक के लिये मरने या मारने जा रहा है। बने-सँवरे युवकों की मँडराती हुई टोलियाँ भी हैं, जो सप्ताह के छः दिन आवारागर्दी करते हैं, गुलेल से चिड़ियाँ मारते हैं, या धान खेत में चूहे पकड़ते हैं, लेकिन सातवें दिन हाट के लिये कर्मठ हो उठते हैं। मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े, जवान, सभी इस धावमान स्रोत में शामिल हैं, सभी साफ कपड़ा पहने, सजे-सजाये,

आपस में हँस-हँस कर बातें करते हुए। न सौदे का भार इनके आनन्द-उत्स को दबा सकता है, न चिन्ता इनकी कल्लोल-लहरी को शिथिल कर सकती है। सब चला जाय, इनकी आनन्द-निधि कभी नहीं जा सकती।

बुदनी हर हफ्ते हाट जाया करती। उसे देखने वाले बहुत हुआ करते लेकिन वह देखती केवल बिसातियों की दूकान पर चमचम चीजों को। मनोहरपुर, चाइबासा, दूर-दूर से बिसाती अपनी दूकानें लाते। चमकीली चूड़ियाँ, आइने, अमरीकी रंगीन कंघियाँ, खिलौने, टार्च, पैसा रखने की खूबसूरत छोटी-छोटी थैलियाँ, नकली सोने के नाजुक झूमक, सस्ते भड़कीले ब्लाउज, साबुन, तेल, विदेशी इत्र, ये सारी चीजें पोंगा हाट में आतीं। बुदनी बड़ी देर तक इन दूकानों पर खड़ी रहती और भर-आँख इन दुर्लभ चीजों को देखा करती लेकिन मजदूरी के पैसों से खाना-कपड़ा चलना ठहरा, मन भर कभी न खरीद पाती। जब इन अप्राप्य सुन्दर वस्तुओं को वह निरुपाय खड़ी देखा करती तब उसके मन-प्राण इन निर्दय पर्वत-घेरों को पार कर उस लोक में पहुँच जाते जहाँ से बिसाती लोग ये चीजें लाते होंगे, जहाँ हर दूकान में ढेर का ढेर ये रहस्यमयी लुभावनी वस्तुएँ यों ही पड़ी रहती होंगी। वह सोचती, यदि कोई स्त्री इन सारी चीजों को खरीद ले और एक साथ पहन ले तो वह कितनी अच्छी लगेगी! परियाँ शायद इसी तरह शृंगार करती हों! वह देश कैसा होगा जहाँ सौन्दर्य के इतने इतने उपकरण हैं! वहाँ के लोग भी कैसे रसिक और कलाकार होंगे! इस मनोभाव के साथ उसे जेफरन के बँगले की सजावट याद आती और जेफरन का प्रेम-प्रदर्शन। मुँह की भाषा अलग-अलग होते हुए भी हृदय की भाषा संसार भर में एक ही है। सभ्य समाज हो अथवा असभ्य, न्यूयार्क का फिफ्त-एभेन्यू या अरण्य-सघन अफ्रीका, फिनलैंड या भारतवर्ष, सब कहीं प्रेम की मूक भाषा एक ही है। प्रेम-कला की अभिव्यक्ति विभिन्न हो सकती है, लेकिन उसकी प्रतिक्रिया एक ही होगी। जेफरन की तरह बुदनी सूक्ष्म रसज्ञ न थी पर मौलिक आवेश उसके भी वही थे। जब उसे याद आया जेफरन की कलाई पकड़

गोद में बैठाना और चूमना तब फिर उस दिन की तरह सुख और शंका भरे कम्पन से वह हिल गई और झट दूकान से भाग गई।

पता नहीं क्यों इधर कुछ दिनों से फैशन की चीजें बहुत सस्ती हो गई हैं। जिन बसन-सामग्रियों को बुदनी पहले ललचाई आँखों दूर से ही देख कर घर लौट जाती और रात भर सपनाती, उन्हें अब मोल ले लेने पर भी पैसे बच रहते हैं। जिस किसी दूकान पर जाती है दूकानदार चीजें दिखाने के लिये आतुर से रहते हैं---पैसों के लिये कोई बात नहीं, बेटी, अपनी दूकान समझो, जब चाहे दाम दे देना। अलीजान जब कभी उस ओर से आ निकलता तो दूकानदार पर भेद-भरी दृष्टि डालता और दोनों मुसकरा देते! दूकानदार धीरे से सलाम बेहरा जी कहकर और भी उत्साह से बुदनी को भड़कीली चीजें दिखाने लग जाते।

एक दिन बुदनी को तीन आने में बड़ा-सा टार्च मिल गया। दिन में तो रोशनी की तेजी न दिखी लेकिन दूकानदार ने आश्वासन दिया कि आधी दुनिया इससे नजर आ जायेगी! उसने बुदनी को जलाने-बुताने का कल-पुर्जा भी बता दिया। बुदनी ने अपने हाथ से एक बार जलाया और बुताया, पर दूसरी बार जला कर बुताने लगी तो बटन न हटा और उसने घबरा कर टार्च को हाथ से छोड़ दिया। दूकानदार ध्यान से बुदनी की कार-रवाइयों को देख रहा था, शायद टार्च गिरने की प्रतीक्षा में भी था क्योंकि चट उसने हाथ बढ़ा कर टार्च को लोक लिया। हँसते हुए बोला---"इसमें कोई डर नहीं, जरा देर तक जलता भी रहे तो कोई खतरा नहीं होगा।" फिर उसने बुदनी की उँगली पकड़ बटन पर रखा और दो-तीन बार बटन को नीचे-ऊपर करने के बाद बोला---"कभी-कभी बटन जरा कड़ा चलता है तब ताकत लगानी पड़ती है।" यह कह उसने बुदनी की उँगली बटन के ऊपर जोर से दबा दी, और मुसकरा कर बोला---"ऐसे"। बुदनी ने उँगली झट खींच ली और मीठी नाराजगी से दूकानदार की ओर देखती हुई हाथ झाड़ने लगी।

अलीजान भी चीज खरीदते-खरीदते इसी दूकान पर आ पहुँचा। बुदनी के सामने टार्च देख कर बोला---"बिजली बत्ती ले रही हो, बेटी?"

फिर दूकानदार के हाथ से टार्च लेकर देखने लगा और पूछा—"अच्छा माल है कि ठग रहे हो जी? दाम कितना लिया?"

दूकानदार होठों पर हल्की हँसी लाकर बोला—तीन आने।

अलीजान ने क्षण भर सोचकर कहा—हाँ, शहर में तो दाम कुछ कम है लेकिन तुम लोग इतनी दूर से आते हो, चीज लाते हो, तीन आना खैर ज्यादा नहीं है। बैटरी ताजा है न? देख लिया है?

दूकानदार—बैटरी बहुत अच्छा है, फिर भी टेस्ट करके तब दूँगा।

अलीजान ने बुदनी से कहा—देखो बेटी, ये लोग किसी तरह तुम्हें धोखा दें, ठगने की कोशिश करें, मुझसे कहना। मैं साहब से रपट कर इनकी शामत बनवा दूँगा। यह हाट तो कम्पनी की जमीन में है, जिस दूकानदार को चाहें फाइन करें, निकाल दें। बात अपने हाथ की है। और कुछ लोगी?

बुदनी का मन अनिश्चित देख कर अलीजान ने फिर कहा—मैं आ गया हूँ तो लिहाज के मारे दाम कुछ और कम हो जायेगा। पसन्द कर लो, जो चीज अच्छी लगे, ले लो। दाम पीछे दे दिया जायेगा, इसको कोई फिक्र नहीं।

बुदनी का मन इस उदार आमन्त्रण पर क्षण भर के लिये डोल गया। उसे इतनी आसानी से रानी बनने का सुअवसर कभी न मिला था। लेकिन इस बिजली बत्ती की प्राप्ति से उसका मन भर चुका था। पहले जब दूसरों के हाथ में टार्च देखती तो मन में सोचा करती थी—आह! मुझे यह बत्ती मिल जाती! मैं कैसे कैसे तमाशे दिखाती गाँव में, जंगल में, अचानक जला जला कर। मगर यह तो अपनी पहुँच के बाहर की चीज ठहरी, चाँद-तारों की तरह। इसलिये टार्च पाकर बुदनी को परमात्मा से भी माँगने को अब कुछ न रह गया, फिर मनुष्य के प्रलोभन की क्या बिसात? उसने सिर हिला कर कह दिया—ना।

बुदनी घर लौटी, टार्च को कपड़े में छिपाये हुए। किसी से कुछ न कहा। मन में सोच कर उत्फुल्ल हो रही थी कि आधी रात को लोगों को छकाऊँगी तो कैसा मजा आयेगा! जब अँधेरा हो गया तो घर के कोने में

छिप छिप कर जलाती और मुग्ध-नयन निहारती। दो एक बार अँधेरे में दूर तक चली गई और जब घर आड़ में पड़ गया तब बत्ती जला चारों ओर दिन कर दिया। इस रोशनी से उसे कितना साहस होता था ! वह सोचने लगी, अब तो दस बोंगा भी आ जायँ तब भी कोई डर नहीं। बाघ तो एक मील दूर से भागेगा। जब चटाई पर सोने गई तो रह-रह कर कपड़े के भातर भुक-भुक जलाती। आधी रात के करीब उसने छप्पर के नीचे रोशनी फेंकी और काफी देर तक प्रकाश को वहीं केन्द्रित किये रही। माँ की नींद खुल गई और वह बावली की तरह धड़फड़ा कर उठी और "सेंगेल, सेंगेल" (आग-आग) चिल्लाने लगी। घर के सभी लोग उठ गये, कुछ पड़ोसी भी दौड़े आये पर किसी को आग न दिखी। यहाँ तो एक चिनगारी भी नहीं थी। बुदनी सोई की सोई रही। समवेत हितैषियों ने समझा, बुदनी की माँ को दुःस्वप्न हुआ होगा। कुछ देर तक आपस में बातें करने के बाद लोग अपनी अपनी जगह सोने के लिये जाने लगे तो एकाएक छप्पर के नीचे आग नजर आई लेकिन तुरत अपने-आप बुत भी गई। अब तो मारे आतंक के सन्नाटा छा गया। साफ ही बोंगा का प्रकोप था। डर के मारे सभी की साँस रुकने लगी। अचानक बुदनी ठहक्का मार रक हँस पड़ी। लोग चकित हो उससे पूछने लगे कि बात क्या है, लेकिन जितना उससे पूछा जाय उतना ही वह और जोर जोर से हँसे। अन्त में उसने अपनी पालतू आग दिखाई। कुछ लोगों ने टार्च दूर से देखा था मगर इस गाँव में किसी के पास टार्च होगा, और इतना तेज, इसकी कल्पना कोई न कर सकता था। जब बुदनी के छोटे भाई ने कहा—"यह तो दस-बीस रुपये का मिलता है, केवल बड़े बड़े लोग ही लेते हैं", तब बुदनी गर्व से बोली—"मैं क्या किसी से कम बड़ी हूँ ?"

शिवदत्त भी हर हफ्ते हाट जाया करते। हाट के दिन कारखाना बन्द रहता, और साग-सब्जी हफ्ते में एक बार ही मिलती थी। लेकिन उनका सबसे अधिक मनोरंजन होता मुर्गे की लड़ाई में। दल के दल भले लोगों को मुर्गा-लड़ाई में पागल होते देख इन्हें अजीब सा लगता। कलकत्ते में घुड़दौड़ का नशा देखा था, लोगों को दीवाना होते भी पाया था, और

एक बाजी में हजारों रुपयों का इधर से उधर हो जाना सुना था। यहाँ भी इस मुर्गे की लड़ाई में वही जोश था, उतना ही नशा था, आशा-निराशा का चढ़ाव-उतार भी कम न था। और जो चार-आठ आने की बाजी में यहाँ हार-जीत होती वह इन गरीब आदिवासियों की हैसियत के हिसाब से कलकत्ते के हजार की बाजी को मात करती थी।

हाट-टाँड के किनारे लड़ाई का अखाड़ा रहता है। मुर्गे के मालिक, बाजी लगाने वाले, छुरी बाँधने वाले तथा निष्काम दर्शक, सभी अखाड़े को घेर खड़े होते हैं। कोई आदमी अपना मुर्गा गोद में लिये अखाड़े में आ उतरा। मान लीजिये मुर्गा लाल रंग का है। तुरत चारों ओर से "लाल, लाल, लाल, लाल" की रट लग गई। इतनी देर में एक दूसरा आदमी चुनौती ले अपने मुर्गे के साथ अखाड़े में आ गया। मान लीजिये उसके मुर्गे का रंग काला है। तुरत "काला, काला, काला, काला" की चिल्लाहट चतुर्दिक होने लगी। इसके मानी ये हैं कि जो सोचता हो कि लाल मुर्गा जीतेगा वह "लाल, लाल, लाल, लाल" चिल्लाता है, और दो आने, चार आने जो उसको खुशी हुई घूम-घूम कर दिखाता है। जिसका अंदाज है कि लाल मुर्गा हार जायेगा वह उस आदमी से उतने पैसे की बाजी लगाता है। इसी तरह जिसको उम्मीद है कि काला मुर्गा जीतेगा वह "काला, काला, काला, काला" चिल्लाता है और जिसका मन कहता है कि काला मुर्गा हार जायेगा वह उससे बाजी लगाता है। शिवदत्त ने जब पहली बार यह आत्महारा चीत्कार सुना और खलबली देखी तो घबड़ा उठे। उन्हें ऐसा लगा जैसे चोर कोई चीज लेकर भागा जा रहा है और कुछ लोग पकड़ो-पकड़ो चिल्ला रहे हैं, कुछ लोग बैठे हाय-हाय कर रहे हैं! अगर दोनों मुर्गों का रंग लाल है या दोनों काले अथवा सफेद रंग के हैं, तो मुर्गे के मालिक की हुलिया पर आवाज उठती है और बाजी लगती है। मान लीजिये एक मुर्गा-मालिक धोती पहने हुए है, दूसरा हाफ पैंट। तो एक ओर की आवाज होगी, "धोतीवाला, धोतीवाला, धोतीवाला, धोतीवाला।" दूसरी ओर की "पैंटवाला, पैंटवाला, पैंटवाला, पैंटवाला।"

युद्ध आरम्भ होने के पहले हर मुर्गे के पैरों में तेज छुरी बाँध दी जाती

हैं। छुरी बाँधने वाले खास यही काम करते हैं, यही उनकी जीविका है। छुरी उनकी अपनी होती है, बाँधते भी वे ही हैं। एक बार बाँधने के लिये एक आना लेते हैं, और लड़ाई खत्म होते ही अपनी छुरी खोल लेते हैं।

मुर्गा-मालिक अपना-अपना मुर्गा दोनों हाथों से पकड़ दूसरे मुर्गे से भिड़ा देते हैं और एक-दो बार उनकी चोंचों को आपस में टकरा कर छोड़ देते हैं। बस दोनों मुर्गे लड़ने लग जाते हैं। और ऐसी नाछोड़ घमासान लड़ाई लड़ते हैं जैसे ये दोनों जन्म के दुश्मन रहे हों, मानो एकमात्र इसी पुण्य प्रतिशोध के निमित्त परमात्मा ने उन्हें कलेवर दिया हो! एक मुर्गा दूसरे मुर्गे को उछल-उछल कर, लपक-लपक कर, प्राण और शरीर की सारी शक्ति लगा कर, चंगुल के नखों से नोचता है। एक हमले के बाद दोनो मुर्गे फिर अपना-अपना दाँव ढूँढ़ते हैं—गर्दन लम्बी किये, रोयाँ खड़ा किये हुए, खून-सवार सिर को दायें-बायें, नीचे-ऊपर, झटके से घुमाते हुए, लाल-लाल आँखों से क्रोध की लपटें फेंकते हुए। फिर अचानक उड़ान होती है, फिर नोचा-नोची। यदि चंगुल के नाखून ही अस्त्र होते तो लड़ाई बड़ी देर तक चलती रहती, लेकिन तेज धार की छुरी तुरत काम तमाम कर देती है। छुरी इस तरकीब से बाँधी जाती है कि मुर्गे के झपटते ही दूसरे मुर्गे की गर्दन या छाती में लग जाय। साधारणतः एक दो उड़ान में ही एक मुर्गा कट कर छटपटाने लगता है और हार-जीत का फैसला हो जाता है। कभी-कभी जब कम जीवन्त अंगों में छुरी लगी तो दोनों घायल हो जाते हैं पर कोई गिरता नहीं। ऐसी अवस्था में देर तक यह दयनीय, कारण-हीन संग्राम चलता रहता है। कभी एक मुर्गा दूसरे के पंख में अपना सिर छिपाने लगता है या दोनों अपनी गर्दन मिला लेते हैं मानो कह रहे हैं—"यह नाहक की लड़ाई बहुत हो चुकी, चलो अब भी हम मेल कर लें।" किन्तु तुरंत फिर अंध प्रकृति आवेश उड़ेल देती है और दो मरणासन्न पक्षी, अदृश्य प्रेरक के दो करुण पुतलों की तरह, अपने अवशिष्ट क्षीण प्राण-बल से, फिर झपट पड़ते हैं, हत्या करने उसकी जिसे पहले कभी न देखा था, न नाम ही सुना था, और न उससे कोई बैर-दुश्मनी कभी रही थी। दोनों घायल मुर्गे जब नितान्त क्लान्त-शिथिल हो जाते हैं और लड़ाई में

मजा न पा दर्शकगण बेसब्र होने लगते हैं, तब मुर्गा-मालिक अखाड़े में कूद कर अपना अपना मुर्गा पकड़ लेते हैं और उनकी चोंच खोल बीड़ी का धुआँ फूंकते हैं। इससे पुनः प्राण-स्फूर्ति संचरित हो जाती है और मूर्ख मुर्गे फिर लड़ने लगते हैं जब तक एक मर न जाय या आहत हो जमीन पर लोट न पड़े। जिसका मुर्गा जीत जाता है वह हारे हुए मुर्गे को ले लेता है। यही उसकी विजय का फल है। जिन लोगों ने बाजियाँ लगाई थी वे आपस में लेन-देन करने लगते हैं जब तक फिर दूसरा जोड़ा अखाड़े में न आ जाय।

जब विजयी मुर्गा-पति अपने मुर्गे को गोद में और हारे हुए मुर्गे को हाथ में ले, गौरव से झूमता अखाड़े से निकलने लगता, जब पराजित मुर्गा-मालिक अपनी लाज छिपाते भीड़ में जा मिलता, और जब बाजी लगाने वाले अपने सही चुनाव पर गर्व या गलत अन्दाज पर पछतावा करते, तब शिवदत्त भाव-मुग्ध खड़े रहते और संसार-लीला पर विचार करते। वे मन में सोचते—आखिर ये मूढ़ मुर्गे बिना कारण क्यों आपस में लड़ पड़ते हैं? एक दूसरे के प्राण लेने के लिये अपनी जान दे देने पर उतारू हो जाते हैं, क्यों? एक ने तो दूसरे का कोई अहित नहीं किया, न उसे मार डालने से इसका कोई लाभ ही है। फिर मनुष्य की लड़ाई पर उनका ध्यान जाता। युद्ध में दो विपक्षी सिपाही जब आपस में लड़ मरते हैं, एक दूसरे पर गोली चलाते हैं या भाले-तलवार से वार करते हैं, तब क्या उनमें से कोई कभी सोचता है कि उस दूसरे सिपाही ने इसका क्या अहित किया है, अथवा मार डालने से इसका अपना क्या लाभ होगा? युद्ध-स्थान से बहुत दूर दो व्यक्तियों का आपस का बैर है अथवा एक दूसरे की अपरिमेय तृष्णा के मार्ग का रोड़ा है, बस इसी कारण हजारों लाखों समझदार सिपाही और ज्ञानी अफसर विपक्षी दल से भिड़ जाते हैं और प्राण लेने या देने तक अमानुषी क्रूरता से लड़ते रहते हैं। फिर इन मुर्गों को क्या दोष दिया जाय? मुर्गे के पक्ष में तो इतना कहा भी जा सकता है कि लड़ाई के पहले उनकी चोंचों को टकरा कर उनका खून गर्म कर दिया जाता है। किन्तु परमात्मा का प्रतिरूप मनुष्य ठंढे खून में ही अधम नृशंसता कर सकता है!

१३

बुदनी पहले शाम तक काम करके दीगर मजदूर-मजदूरिनों की तरह घर लौट जाया करती थी, लेकिन इधर अब कई दिनों से रात को भी उसे पोंगा में ही रह जाना पड़ता है। बँगले से लगे हुए आफिस के लिये कई कमरे जोड़े जा रहे थे, उन्हीं की छत-पिटाई चल रही थी। छत-पिटाई में चौबीस घंटे का काम रहता है और यह काम करती भी हैं मजदूरिनें ही। इसलिये बुदनी को रह जाना पड़ता है। बँगले के बाहर-घरों में जहाँ नौकर-चाकर रहते थे, एक कमरा खाली था, उसी में बुदनी रहने और खाने-पकाने लगी। जब छत-पिटाई खत्म हो गई तब बाग का काम बढ़ गया। अलाजान लालटेन लिये अँधेरा होने के बाद तक बुदनी को और एक बूढ़ी मजदूरिन को ले बाग में काम करता रहता था। अधिक घंटे काम करने के लिये बुदनी को दूनी मजदूरी मिलने लग गई। एक काम के बाद दूसरा काम आता गया। अब बुदनी को किसी रात घर लौटने का मौका नहीं मिलता। हाट के दिन सुबह एक बार घर से हो आती और अपराह्‌न में हाट करने के बाद पोंगा में रह जाती। जंगल के काम में मजदूर-मजदूरिन आम तौर से अक्सर पड़ाव बना कर हफ्तों घर से बाहर रहा करते हैं। पोंगा में बुदनी के अलावे और भी मजदूर-मजदूरिन रात को रहा करते। मजदूरी भी दूनी मिलती ही थी। माँ-बाप की आपत्ति का कोई प्रश्न ही न था।

एक दिन शाम से ही घमासान वृष्टि आरम्भ हुई। बाहर-घर के कमरे बेतरह चूने लगे। जेफरन सदय आदमी थे, अपने मातहतों के सुख-दुख में शामिल रहा करते। जाकर देखा तो बुदनी के कमरे में सोने बैठने भर भी सूखी जगह न बची थी। उन्होंने कहा—बँगले में सामान रखने वाला जो कमरा है उसी में जगह बना कर बुदनी रह जाय। दूसरे नौकर-बावर्ची बँगले के बरामदे में रात काट लें। कल पूरी मरम्मत का प्रबंध कर दिया जायेगा।

लेकिन मरम्मत का सामान इतनी जल्दी जुट न सका। पानी फिर बरसे तो भाग-दौड़ करनी पड़ेगा, इस लिये बुदनी को सलाह दी गई कि वह बँगले वाले कमरे में ही अभी रहे, जब उसका अपना कमरा पूरा तरह ठीक हो जायेगा तब उसमें लौट जायेगी। शेष कर्मचारी और मजदूर बाहर-घर में ही रहते, देखा जायेगा जब पानी बरसेगा।

बँगले के भीतर मजदूरी का काम मिलने के कारण बुदनी प्रायः सारा दिन बँगले में ही रहती, जहाँ चाहे जाय-आवे, बैठे, विश्राम करे। कहीं रोक-टोक नहीं, किसी को पूछ-ताछ नहीं। जेफरन जब रेडियो सुनते तब बुदनी बेचूक कालीन पर आ बैठती। जब वे नहीं रहते तो खुद कल-पुर्जा घुमाने लगती और इधर-उधर ताक कर कुरसी पर बैठ जाती। अलीजान दूर से देख कर मुसकराता। दूसरे नौकर-मशालची आपस में खोद-खोद कर हँसते और विनोद की बातें किया करते।

खास बँगले के कमरे में रहने वाली की हैसियत से अब बुदनी का दौरान रात में भी हो गया। पहले दिन में ही रेडियो सुना करती, अब रात को भी बैठ कर सुनने लगी। खाने-पीने का प्रबन्ध जेफरन ने करा दिया था। वहीं एक "हो" कर्मचारी था, वही अपने भोजन के साथ बुदनी का भी खाना पका दिया करता था। बुदनी को शाम के बाद कोई काम न रहता, इसलिये वह ज्यादा वक्त रेडियो-संगीत सुनने में ही बिताती। उसे संगीत का शौक भी था। जब नौकर-बावर्ची खा-खिला कर सोने चले जाया करते, और बँगले के दरवाजे भीतर से बन्द कर लिये जाते, तब भी बुदनी जेफरन के पास बैठी रेडियो सुनती रहती। सुबह जब अलीजान पलंग-चाय लेकर जेफरन साहब के पास जाता तो उन्हें अजीब तरह से उनींदा देखता। बुदनी भी देर से उठा करती और अलसाई सी मँडराती रहती।

मिसेज इथेल दास ने जिस दिन जेफरन के मुँह से छलकते प्रेम के बदले अजाना देश की अप्रत्याशित ज्ञान-वार्त्ता सुनी, उसी दिन से टरक गई थीं। देखा कि जब दाल गलने ही को नहीं तब बेकार का अधिक ईंधन क्यों खर्च किया जाय? जेफरन के बँगले पर आना-जाना छोड़ दिया।

पति-पत्नी बैठ कर यही सलाह किया करें कि अब क्या करना चाहिये। चला तो था कुछ दिन खूब मजे से, ऐसा मालूम हो कि शिवदत्त क्या, जेफरन भी एक दिन मनसुख की राह से निकल जायेंगे जैसे बंसी में फँस कर छटपटाती हुई, शायद पछताती हुई, मछली पानी से निकल जाती है। मगर अब तो उलट कर आ पड़ा मनसुख की नौकरी पर। यह काठ-कम्पनी का मैनेजर निरा काठ ही है। जहाँ तक मिसेज दास ने प्रेम-जाल फैलाया था, जहाँ तक रूप-यौवन के दाने बिखेरे थे, वहाँ तक उनकी अनुभूति के दायरे में कोई भी पुरुष साधारणत: निकल नहीं सकता। कलकत्ते में भावुक विलासियों के लिये और भी कई रास्ते हैं, विविध आकर्षण हैं। वहाँ वशीकरण-कला को कभी-कभी उस्तादी मार मारनी पड़ती है। लेकिन यहाँ सुदूर सुनसान जंगल में जहाँ सुन्दरी इथेल के रास्ते में कोई प्रतियोगिता न थी, जहाँ वन की आपदाओं से घिरे हुए मनुष्य की मनोवृत्ति यही होती है कि आज जी लो, कल की कौन जाने, वहाँ जेफरन इनके प्रेम का तिरस्कार करें? फिर मिसेज दास को याद आती जेफरन की भावुकता, किस कलात्मक रसज्ञता से वे इथेल की कलाई और उँगलियाँ पकड़ते, उनके नेत्रों का अकलुष शिशु-प्रेम, ज्योत्स्ना-जड़ित निर्जनता में लोचनों का वह आवेदन जो मानो कह रहा हो, या तो मुझे अपने में गला लो या तुम मुझमें गल जाओ—ना, ऐसा आदमी कभी काठ नहीं हो सकता। वह प्रेम-प्रतिदान की जगह ज्ञान का बस्ता ही कैसे खोलेगा? कितने विज्ञों का विवेक सुन्दरियों के रूप-प्रवाह में बह गया। कितने तपस्वियों का घोर तप अप्सराओं ने भंग किया!

मिसेज इथेल दास इसी उधेड़-बुन में लगी रहतीं। एक दिन कहीं से कानों में आ पड़ी बुदनी की चर्चा। इस छोटी सी छावनी में कोई भी बात छिपी नहीं रह सकती थी। किसकी हाँड़ी में चावल के कितने दाने पड़े इस जानकारी में सभी का शामिलात हिस्सा समझा जाता था। जेफरन-बुदनी का संबंध जगह-जगह तरह-तरह से अतिरंजित होता, लेकिन कानाफूसी से ऊपर किसी की आवाज न उठ पाती। जेफरन इस छोटी दुनिया में सर्व-महान थे, किसी का भी वारा-न्यारा इनकी चुटकियों का

खेल था। फिर आदमी इतने सज्जन थे, इतने कर्म-निष्ठ और दयाशील, कि सभी सच्चे दिल से इनकी भक्ति किया करते। कहते, है तो रहा करे, बुदनी या किसी और के साथ दो घड़ी निष्पाप विनोद से बिता ही लिया तो किसी का क्या? इतने ही से मनुष्य दुराचारी नहीं हो जाता। फिर भी हमारे समाज में ऐसे विषय का इतना महत्व है कि अफवाह सुन लोग तरह-तरह की कल्पना करने लगते और शिवदत्त के पास आकर जेफरन के प्रति क्रोध या दया दिखाते। तब शिवदत्त कहते—सदाचार और दुराचार का निर्णय करने के लिये किसी भी व्यक्ति के सारे गुण-दोषों की नाप-तौल करनी चाहिये। कोई आदमी बेईमान हो, झूठा हो, क्रूर हो, कर्तव्य-हीन हो, किन्तु प्याज-लहसुन न खाता हो, पर-स्त्री के ऊपर आँख न उठाता हो, उसे इतने से ही हम साधु नहीं कह सकते। इसके विपरीत दूसरा आदमी ईमानदार है, सत्यवादी है, दयाशील और कर्तव्य-परायण, लेकिन रमणी की कलात्मक सरसता से आकृष्ट होता है, उसे इतने ही से हम यदि पापाचारी कह दें तो भूल करेंगे।

धीरे-धीरे शिवदत्त के उच्च विचारों का प्रभाव सभी लोगों पर पड़ा और दुर्भावनायें मिट गईं। लेकिन इथेल दास का कुतूहल और उनकी कल्पना का क्षेत्र दिनानुदिन विस्तृत होते गये। अपने एक नौकर को चौबीस घंटे का यही काम दे रखा था कि वह बुदनी को घूरता रहे और जहाँ तक देख-सुन पावे बुदनी-जेफरन की दिनचर्या की, और यथा-सम्भव रात्रि-चर्या की भी, पूरी-पूरी खुलासा रिपोर्ट दिया करे। इथेल सोचतीं, यही कारण था कि जेफरन ने मेरे प्रेम का तिरस्कार किया। वही तो मैं कहूँ, आखिर इतने दिनों का मेरा पका-माँजा अनुभव धोखा कैसे दे रहा है! कौन जाने यहाँ ऐसे गहरे जल में डुब्बी मार कर पानी पिया जा रहा है कि एकादशी के बाप को भी पता न चल सके? मगर इस तरह वर्जित जल पीते-पीते एक न एक दिन टेंगरा मछली गले में अटक ही जाती है। देखो न, ऊपर से कितना कोमल प्रेम-प्रदर्शन, पैर चूम कर निहाल हो जाने का कैसा झूठा भाव! उस पर ज्ञान और शिक्षा की बातें, कर्त्तव्य की कोरी दुहाई! बिना किसी अन्दरूनी बात के मुझ सी सुन्दरी स्त्री के

सुकोमल स्पर्श पर ज्ञान का लेक्चर मुँह से नहीं निकल सकता। मैं जैसे कुछ भी नहीं हूँ! मैं बदन पर गिरूँ, वे पैर से ठुकरावें, और यह जंगली फूहड़ भद्दा गंदा औरत! मैंने क्या उसे देखा नहीं है कि मान लूँ वह परी है? उस दिन जेफरन की गैरहाजिरी में उनके बाग में जो मैं गई थी और अलाजान को साथ ले बाग को देखने का भान किया था वह तो केवल बुदनी को ही देखने का छल था। काली नहीं तो क्या गोरी कह दूँ? जरा सा गंदुमी रंग हुआ कि यहाँ के लोग समझने लगते हैं, बस अप्सरा इससे अधिक क्या गोरी हो सकती है! (यह सोचते-सोचते मिसेज इथेल दास शृंगार-आइने के सामने आ खड़ी होगईं और अपना शरीर-मुँह गौर से देखा) और सोने पर पहाड़ ढोने से ही कोई सुर-सुन्दरी नहीं कही जा सकती! फिनलैंड में, और बहुत-कुछ इँगलैंड में भी, वक्षःस्थल का चौरस होना, लड़कियों के ब्याह का, समाज में मान का, पासपोर्ट है। हाँ, यह आदिवासी लड़की निरन्तर विहँसित रहती है, मैं मानती हूँ। लोग कहते हैं, प्राण-स्फूर्ति से पूर्ण है। कहने को तो कल्पना में बसने वाले कविगण कहेंगे, इसकी धमनियों में रक्त के बदले आनन्द का स्रोत प्रवाहित रहता है, यह परमानन्द परमात्मा की मूर्ति है! जिन लेखकों और कवियों के दिमाग का स्क्रू ढीला है वे इसके मोटे होठों के नियमहीन टेढ़ेपन को मुस्कान कह देंगे, समझावेंगे कि इसके मन्द मृदु-हास में जूही की कमनीयता के साथ उत्तुंग पर्वत-शिखर की गरिमा है! अँगरेजी लेखक टामस हार्डी ने एक कुरूपा लड़की पर पूरा उपन्यास लिख मारा। कलकत्ते के बंगाली समाज में सुना, रवीन्द्रनाथ टैगोर भी, जिन्हें प्रतिभावान समझ संसार ने नोबेल प्राइज दिया, खेत में काम करने वाली एक काली लड़की पर लट्टू हो गये और उसके काले नयनों पर कविताञ्जलि चढ़ा दी। यह सब बेजा बात है। जब हम सभ्य होने का दावा करते हैं तो सभ्यता के नियमों पर ही हमें चलना चाहिये। सभ्यता जिसे सौन्दर्य कहे, सौन्दर्य के उपकरण कहे, हमें भी वही कहना चाहिये। जिन सीढ़ियों से मनुष्य अपने आदि-पूर्वज सिम्पांजी-योनि से उठा है, उन सभी उत्थान-स्तरों का अपना-अपना अंदाज रहा है, अपनी-अपनी नाप और अभिरुचि रही है।

इस असभ्य लड़की को उसके अपने समाज में लोग भले ही मानस-हंसिनी कहा करें,—यों तो होठों की मोटाई पर कहीं-कहीं निग्रो जन-जाति में सौन्दर्य निर्धारित होता है, प्राचीन चोन में एक उँगली लम्बे पैरों वाली, असहाय, लँगड़ी औरतें ही आदर्श सुन्दरी समझी जाती थीं—लेकिन जेफरन का इस पर रीझना या टामस हार्डी और टैगोर का इस सरीखी लड़कियों पर साहित्य लिख मारना सभ्यता के प्रति जुर्म है। ऐसे लोगों को न्यायालय से दण्ड मिलना चाहिये। मति-भ्रष्ट मर्द कहेंगे, इसका शरीर कैसा हृष्ट-पुष्ट निठोल है, अंग-प्रत्यंगों का ऐसा अनुपम समन्वय है कि ग्रीक मूर्त्तिकार इसे अपनी कृति का आदर्श समझते! फिर कल्पना में खो कर कहेंगे, यह उन्नत-उरोज सुघड़ नितम्बिनी अजन्ता या एल्लोरा की प्रस्तर-मूर्त्तियों से तुलना करने के योग्य है। तो मैं पूछती हूँ, क्या स्त्री को पहलवान बनना है, या हम अभी तक उसी पिछड़े प्राचीन युग में हैं जब अजन्ता-एल्लोरा की गुफाओं में गढ़ी औरतें मोहिनी समझी जाती थीं? अजन्ता की औरत आज कलकत्ते के चौरंगी रास्ते पर या लंदन के पिकेडली में चले तो उसी दिलचस्पी से लोग उसे घूरेंगे जैसे चार सींगों वाली गाय हो! खैर जो कुछ भी हो, मैं देखती हूँ जेफरन कैसे मेरा तिरस्कार कर इस जंगली औरत को सिर पर चढ़ाते हैं। स्त्री सब कुछ सह सकती है लेकिन अपने स्त्रीत्व का अपमान नहीं सह सकती। जहाँ नारी-गौरव का ह्रास हो, वहाँ आराम से खाना-पहनना हराम है, वहाँ तो मर-मिटना कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

१४

ईर्ष्या और कुतूहल ने मिसेज इथेल दास के पैर आगे बढ़ाये। प्रेरणा के पीछे ये विचार भी थे कि जब यहाँ रहना है तो जेफरन की किसी भी हालत में खुशामद करनी ही पड़ेगी। जरा-जरा सी बात में अपना अनादर मान लें और परिस्थिति को आशाहीन समझने लगें, यह भी तो

कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं। एक दिन अपने पति से बोलीं—चलो, बहुत दिन हुए, जेफरन से मिल आयें।

फिर मुसकुरा कर कहने लगीं—और यह भी देख लेंगे कि उनकी पटरानी नई नवेलिन कैसी हैं!

इस पर मनसुख दास भी हँस पड़े।

गोल कमरे में जेफरन साहब रेडियो के सामने कुरसी पर बैठे हुए थे और पास ही कालीन पर आसीन बुदनी संगीत सुन रही थी। शाम के साढ़े सात बजे होंगे। मिसेज दास ने खुले दरवाजे को खटखटाया। अन्दर से अनायास अनुमति की आवाज आई, और दोनो कमरे में दाखिल हुए। जेफरन इथेल को देख क्षण भर चकरा गये। उठ कर बोले—यह लीजिये, ये तो मिसेज दास हैं। आज कैसे इधर भूल पड़ीं? मिस्टर दास से तो मुलाकात होती रहती है लेकिन आपसे पूरी एक शताब्दी के बाद मुलाकात हो रही है।

इथेल दास का मन-प्राण बुदनी कर केन्द्रित था। अतिथियों के भीतर आते ही बुदनी उठ खड़ी हुई थी और धीरे-धीरे परले बरामदे की ओर जा रही थी। इथेल ने अपनी आँखों में उसे गिरफ्तार कर लिया। बुदनी पहने हुए थी सफेद साड़ी और हलका हरा ब्लाउज। चिकने बालों का जूड़ा बँधा था और उसमें बड़ा-सा सफेद फूल गुँथा हुआ था। पान सरीखा चेहरा, गढ़ी लम्बी बाहें। सभ्यता के व्याकरण के बावजूद भी बुदनी उन्हें सुन्दर दिखी। इथेल के अपनी तर्कहीन भावनाओं से हजार लड़ने पर भी उनका मर्म कानों में कह रहा था—"क्यों न मरे कोई इस रूप पर!" परन्तु जिस मात्रा में बुदनी की बड़ाई का वे असहाय साक्षी बन रही थीं उसी अनुपात में उन्हें अपनी लघुता का यन्त्रणामय बोध हो रहा था और उनकी स्पर्धा चुनौती ले मुट्ठी बाँध रही थी। जेफरन ने उन्हें अन्यमनस्क देख फिर कहा—मिसेज दास, मैं आपही से पूछ रहा था।

इथेल दास झटके से वास्तविक परिस्थिति में लौट आईं और स्मित हास्य से बोलीं—माफ कीजियेगा। बहुत दिनों के बाद आने के कारण एक

नई दुनिया देख रही हूँ, और नई जगह जाने पर दायें-बायें देख कर ही चलना पड़ता है !

जेफरन ने हँस कर कहा—दोष तो आप ही का न है !

ह्विस्की चली, शैमपेन और शेरि। औपचारिक बातें हुईं। यह प्रत्यक्ष था कि दोनों ओर से पहले की सहज सहृदयता में गति-रोध आ गया था। जेफरन उसी दिन से विरक्त हो गये थे जब इन्होंने देखा कि सामाजिक मेल-जोल और आदान-प्रदान का ये लोग कर्तव्य-क्षेत्र में कुव्यवहार करना चाहते हैं। फिर जब से बुदनी बँगले पर रहने लगी थी तब से जेफरन के भाव गुफावासी के हो गये थे। मनसुख दास ने आजमा कर देख लिया था कि यह आदमी मेरी कलाबाजियों के चकमें में नहीं आने का और न काम के मामले में मेरी स्त्री का कौशल ही बहुत दूर तक कारगर हो सकता है। उस दिन झिड़की खाने के बाद से अब अलग रहा करते, क्या जाने काम और न बिगड़ जाय ! मिसेज दास सोचतीं, यह आदमी न पत्थर है, न रसिया, और है तो दोनों। कभी तो इसके सर्वांग के इशारों से ऐसा मालूम होता है जैसे वह प्राण खोल कर कह रहा हो—'आओ प्रिये, जन्म-जन्मान्तर तुम्हारी ही पुनीत प्रतीक्षा में मैं बैठा रहा हूँ ! आओ, हम दोनों मिल कर चले चलें, दूर, बहुत दूर, उस पार !" लेकिन एक कदम उस दूर, बहुत दूर, की राह पर बढ़ाओ, कि वह स्वयं रुक जाता है, और कर्तव्य-ज्ञान की बेतुकी तान छेड़ देता है !

एक दिन जब जेफरन बाहर थे इथेल दास बाग देखने फिर आईं। अलीजान मजदूरों से काम करवा रहा था। बुदनी इस समय बँगले के भीतर थी। अलीजान ने सलाम किया और कहा—हुजूर ने आजकल आना ही छोड़ दिया। इस बेवतनी के आलम में मेल-मिलाप से ही तो वक्त गुजरता है।

इथेल इस पर झेंप सी गईं, लेकिन प्रश्न का कोई उत्तर न दे अलीजान से पूछने लगीं—यह नई मजदूरिन . . . क्या नाम है ? . . . बुदनी ? . . . क्या यह बागवानी में निपुण है ?

अलीजान ने मुस्कुराहट को दबाते हुए जवाब दिया—मैं तो नौकर आदमी ठहरा, हुजूर, मुझे हुजूर लोगों का हुक्म बजाना है।

मिसेज दास—इस औरत ने बागवानी की तालीम कहाँ पाई? गुलाब, डहलिया, नेस्टारसियम, एस्टर, फारगेट-मी-नाट, इन सब शहरी फूलों को इसने कहाँ कभी देखा भी हो! इनका मर्म यह क्या जाने? कहावत है, बन्दर जाने आदी का स्वाद! और रहती है बँगले के बिलकुल भीतर?

अलीजान—बँगले के भीतर नहीं, हुजूर। उसका कमरा तो एक किनारे है।

इथेल दास झटके से अलीजान की ओर घूम गईं और तेवर बदल कर बोलीं—तो एक किनारे होने से उसका कमरा बँगले के बाहर हो गया? बँगले के भीतर नहीं तो हम उसे अलग मैदान में कहें, जंगल में या उसुरिया में? खूब चकमा देना जानते हो।

—मैं तो नौकर आदमी ठहरा, हुजूर।

—और बँगले में रहने लगी कब से? मालूम होता है पटरानी बना कर ही डोली पर लाई गई थी और "हैरम" में रखी गई। मजदूरी तो बहाना है, आँख की धूल।

अलीजान—नहीं, हुजूर। वह तो हम लोगों की लाइन में बाहर घर में रहती थी। वहीं खाती, पकाती, सोती थी, बँगले के अन्दर पैर भी नहीं रखती थी। यह तो उस दिन जोरों का जो पानी आया और चलनी की तरह घर चूने लगा तब हम लोग भाग कर बँगले के बरामदे में गये और वहीं रात काटी। साहब ने कहा, बुदनी का कमरा मरम्मत करा दो तब उसमें जायेगी, नहीं तो पानी बरसने से फिर भागना-छिपना पड़ेगा।

—तो अभी तक मरम्मत न हो सकी?

—कुम्हार इधर बड़ी मुश्किल से मिलते हैं, हुजूर। उस दिन एक कुम्हार मिल भी गया तो खपड़ों का बन्दोबस्त न हो सका। बहुत सारे खपड़े टूट गये हैं।

—और वह रात को रहती क्यों है पौंगा में ? दिगर मजदूरिनी की तरह घर क्यों नहीं लौट जाती शाम को ?

—बाग में काम बहुत ज्यादा आ पड़ा है, हुजूर। फिर बँगले की दीवारें नये से रँगी जायेंगी, उनकी सफाई करनी है। अँधरा होने तक काम होता रहता है जिसके लिये दूनी मजदूरी दी जाती है। घर लौटने का वक्त ही नहीं रहता।

मिसेज दास ने गम्भीर स्वर में कहा—मैं सब समझती हूँ। बाग में अधिक काम आ पड़ना, महीनों दीवारों की सफाई होते रहना, दूनी मजदूरी का देना, लाचारी बँगले के भीतर जवान छोकरी को रखना···।

—मैं तो नौकर आदमी ठहरा, हुजूर।

इथेल ने फुफकार कर कहा—नौकर नहीं हो जी, दलाल हो। अपने फायदे के लिये साहब को गुमराह कर रहे हो, उनकी अभिरुचि भ्रष्ट कर रहे हो।

—ना, हुजूर।

—ना क्या? मैं सब देख रही हूँ। तुम शायद सोचते होगे, मैं कौन होती हूँ। इसलिये मैं समझा देना चाहती हूँ कि मैं अँगरेज की बच्ची हूँ। हिन्दुस्तानी से शादी कर लेने से मैं और कुछ नहीं हो गई। जेफरन साहब का और मेरा समाज एक है। वे समाज के खिलाफ कोई काम नहीं कर सकते। समाज को मैं न गिरने दूँगी। मेरी अपनी जिम्मेवारी है। तुम मेरे समाज में दलाली के जरिये रुपया कमाने के लिये गंदगी नहीं ला सकते।

अलीजान जानता था जेफरन साहब उसे कितना मानते हैं। जेफरन साहब जिसे मानें उसका कौन बाल बाँका कर सकता था इस छावनी में ? मिसेज इथेल दास अँगरेज की बच्ची भले ही हों लेकिन यहाँ वे किस तरह खुद दलाली कर रही थीं, अपने रूप-यौवन के दाम से पति की तरक्की खरीदना चाहती थीं, यह अलीजान जैसे आदमी से छिपा न रह सकता था। साहब को फँसाने में इथेल मेम नाकामयाब रही हैं, यह भी अलीजान जानता था। उसके मन में आवेग उठा, दलाल के जवाब में मेम साहब

को भी कुछ उनकी सुना दूँ, लेकिन बहु-कालीन खानसामागिरी की शिष्टता ने उसका मुँह थाम लिया। अविचलित भद्रता से उसने जवाब दिया—मैं तो नौकर आदमी ठहरा, हुजूर।

इथेल दास ने इस शान्त उत्तर का अर्थ लगाया—"मैं जैसा करता हूँ करता रहूँगा, आप सरीखों के भूकने की मैं क्या परवा करता हूँ ?" क्रोध से तमतमाती हुई लौट पड़ीं और बोलीं—अच्छी बात है !

गमखोर खानसामा भी अन्दर-अन्दर तमतमा उठा। उसके मन ने भी कहा—अच्छी बात है !

जेफरन साहब जब दफ्तर से लौटे तो अलीजान ने मुख्तसर कहा—दास मेम साहब आई थीं।

जेफरन ने जो-न- चाहो-वही-होता-है की विरक्ति से पूछा—कब ? और कुछ पूछती भी थीं ?

अलीजान ने सागर से गागर भर निकालने के भाव से उत्तर दिया—कुछ खास बात नहीं, हुजूर। बाग देखते-देखते बुदनी के बारे में पूछने लगीं।

जेफरन—क्या ?

अलीजान—हुजूर, अब छोटे मुँह से बड़ी बात कैसे निकालें ? मेरे लिये तो आप सभी बराबर हैं। फिर भी नमक की शरीअत का ख्याल रखना ही होता है, हुजूर। अपने मालिक की शिकायत सुनना मजहब में तोबा है।

—शिकायत कर रहीं थीं ?

—मैं कुन्द-जहोन आदमी हूँ, हुजूर, हो सकता है समझने में भूल हुई हो। मगर बुदनी की बात खोद-खोद कर पूछ रही थीं। आपके बारे में भी जिस तरह बोल रही थीं मुझे तो अच्छा न लगा। जाते वक्त धमकाती भी गई हैं।

जेफरन ने कहा—"हूँ !" और उठ कर गोसल करने चले गये।

खैर, तो औपचारिक सामाजिकता अपनी राह चलती रही। मनसुख और इथेल दास हर रोज या हर दूसरे रोज शाम के वक्त जेफरन के घर

चले आते और कुछ देर तक शराब के सहारे हवाई बातें होती रहतीं। कभी जेफरन भी उन लोगों के घर चले जाते। आपस का मेल-विरोध जो भी हो, हर अँगरेज अपने को अपने देश और समाज के सम्मान-गौरव का संरक्षक समझता है। मिसेज इथेल दास अँगरेज न होते हुए भी अँगरेजी समाज की ही गिनी जाती थीं। आपस का मनमोटाव उस छावनी में प्रदर्शित न किया जा सकता था, इसलिये कड़वी दवा की घूँट पीने की तरह जेफरन इथेल और मनसुख का अनुचित आचरण सह लेते थे। इथेल भी जेफरन के गोल कमरे में अब इस तरह बैठतीं जैसे सोट गड़ती हो या कुरसी में खटमल हों! मन बराबर किसी अप्रिय आभास से उद्विग्न रहा करता।

एक बार जब मनसुख दास पत्नी को जेफरन के यहाँ छोड़ कर किसी काम से लौट गये तब इथेल ने रहस्य-भरी मुस्कुराहट के साथ जेफरन से पूछा—कैसी चल रही है दुनिया आजकल?

जिस मिलन की टकटकी में जेफरन को पहले पत्थर भी फूल सा लगा करता वह अब तरकारी में बालू बन गई थी। कर्तव्य-भ्रष्टता की ओर खींचने वाले इथेल के प्रेम से इनके भावुक मन को चोट लगी थी। चाहते थे किसी तरह औपचारिकता निबह जाय, इस छोटी सी जगह में जहाँ नाम पर काम होता है, छीछालेदर न होने पावे। इधर बुदनी के भोले सरल सान्निध्य ने इथेल की कृत्रिमता का रंग और भी कच्चा कर दिया था। सोचते, इस झूठी सभ्यता ने मानव को प्रकृति की सर्वोपम देन से कितना अलग कर दिया है! खैर, अपना-अपना स्वभाव है, संसार में अपना देना-पावना है। लेकिन अलीजान की संक्षिप्त रिपोर्ट से उन्हें पता चला कि यह औरत अपने गंदे पैर उनके पुण्य-प्रतिष्ठान तक बढ़ाने लग गई है, उनके व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करने लगी है। अँगरेज सब कुछ सह सकता है मगर अपनी निजी जिन्दगी के अन्दर, जिसे वह किला कहा करता है, किसी का साया भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। देखा अब गम खाने से नहीं चलने का। इथेल को बता देना होगा कि सब होते हुए भी

तुम्हारी जगह कौन सी है, और मेरी जगह कौन है। जेफरन ने इस एकान्त का इसी मनोभाव से स्वागत किया। गंभीर स्वर में बोले—भूगोल के अनुसार दुनिया एक चाल से हमेशा चलती रहती है।

इथेल—मगर मन की दुनिया अपनी चाल घड़ी-घड़ी बदलती रहती है।

जेफरन—मन की अपनी-अपनी अलग दुनिया होती है उसमें किसी और का प्रवेश-प्रयत्न अनुचित है।

—उसका भी जिसका दावा हो ?

—किस तरह का दावा ?

इथेल ने कई क्षण सोचने के बाद ट्रंप मारा—और नहीं तो मसलन समाज का ही सही। समाज तो हमारे मन की दुनिया में भी घुस कर नियन्त्रण डाल सकता है न ? और जिस कम्पनी का भार आप अपने ऊपर लेकर बैठे हुए हैं, उस पर भी तो आपके नैतिक पतन का बुरा असर पड़ेगा ही।

जेफरन की अवस्था उस सुमसुम पानी की थी जो कड़ी आँच पा एका-एक खौल उठा हो। उनका मुँह लाल हो गया, चेहरा तमतमा उठा, होंठ काँपने लगे। यह औरत मुझे सामाजिक शिक्षा दे और दायित्व का ज्ञान सिखलावे ! पहले तो इसे अपने अँगरेजी समाज के अन्दर गिनना ही मेहरबानी है, दूसरे इसका चरित्र-इतिहास कौन नहीं जानता ? मैं तो सिर्फ इसकी इज्जत निभा रहा था। हाँ, यह ठीक है कि मैं भी दो क्षण इसकी मधुरिमा का संयत उपभोग कर लिया करता था, किन्तु आप एक सुन्दर फल को देख कर, छूकर, तभी तक आनन्द पा सकते हैं जब तक यह न पता चल जाय कि फल विषैला है। समाज मुझ पर नियन्त्रण करेगा ! मुझे अपने चरित्र और आदर्श पर पूरा भरोसा है। समाज यदि मेरे दृष्टांतों पर चलता तो कब का सुधर गया होता। और यह कहना कि कम्पनी की ऊँची पद-प्रतिष्ठा से मैं पतित हो रहा हूँ ! हाँ, बदमाशों मतलबियों को तो ऐसा लगेगा ही। कड़क कर बोले—देखिये मिसेज दास, मैं अभद्र नहीं होना चाहता, लेकिन आप बहुत आगे बढ़ रही हैं। आप अपनी

जगह पहचानने की कोशिश करें, मैं अपना भला-बुरा अच्छी तरह जानता हूँ।

यह कह जेफरन साहब उठ कर सोने के कमरे में चले गये।

इथेल दास बहुत देर तक सिर झुकाये चुपचाप बैठी रहीं।

अलीजान एक बार झाँक कर देख गया था। बातें तो अँगरेजी में ही हुई थीं लेकिन अलीजान ने बड़े साहबों के यहाँ हेड खानसामागिरी क्या की थी अगर वह गोल कमरे के खत का मजमून न जान लेता लिफाफा देख कर? उसके सन्तोष का प्याला भर गया था।

इथेल उठ कर जाने लगीं तो अलीजान मुसकुराहट छिपाये हुए बरामदे में आ पहुँचा और व्यंग्य-भरी शिष्टता से अत्यधिक झुक कर बोला—सलाम, मेम साहब।

१५

बाबूडेरा की झोपड़ी में खाना खाकर शिवदत्त लेटे हुए थे। सोने के लिये खूटों के ऊपर चिरी हुई लकड़ी पाट कर मचान-नुमा ऊँची चारपाई बनाई हुई थी। जम्बीरा और परदन जमीन पर ही चटाई डाल कर पड़ गये थे। बीच में धूनी की तरह मन्द-मन्द आग जल रही थी।

हड्डी तोड़ थकावट के बावजूद भी शिवदत्त को नींद न आ रही थी। आज के विविध अनुभव उनके मस्तिष्क में हिलोरें ले रहे थे। बाघ, हाथी, साम्भर, बधू-लता, वन-सरिता का प्रशान्त दह, गगन-चुम्बी शाल वृक्ष, सघन अभेद्य वन, बाबूडेरा की तपोभूमि—ये सभी उनके मन के मेले में अलग-अलग तंबू गाड़ डेरा डाले हुए थे और चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे—"आओ देख लो, अनमोल तमाशा, फिर कभी न आयेगा यह अनमोल तमाशा, आओ देख लो।" इस मेले के कोलाहल में नींद कहाँ से आती?

जम्बीरा ही को सम्बोधन कर शिवदत्त ने कहा—अच्छा जम्बीरा जी, आप कह रहे थे कि बाघ स्वभावतः नर-भोजी नहीं होता, आदमी से

बचता रहता है, इत्यादि। मैंने यह नई बात सुनी। मैं तो यही जानता था कि बाघ आदमी की ताक में उसी तरह रहता है जैसे शैतान छोकरे बाग के पके अमरूधों की ताक में!

जम्बीरा फीका बना कर पी रहे थे। धीरे-धीरे धुआँ फेंकते हुए बोले—जैसा मैंने पहले कहा था, बाघ का आदमखोर होना उसकी कमजोरी का चिन्ह है, ताकत का नहीं। उसकी बेबसी आती है एक तो बुढ़ापे से, दूसरे साही का काँटा पैर में गड़ जाने से। साही का नुकीला लचीला काँटा शरीर में हड्डी की रुकावट पा बंसी की तरह घूमता जाता है। बाघ उसे निकाल नहीं पाता। उस जगह घाव हो जाता है। बाघ अब तेज दौड़ने लायक नहीं रह जाता। आसान शिकार न ढूँढ़े तो क्या करे? वह घास-पत्ता खा कर तो नहीं रह सकता, उसे मांस चाहिए ही।

जम्बीरा के सहज वर्णन से शिवदत्त को ऐसा लगा जैसे बेबस बाघ के लिये मांस का प्रबन्ध करना शिवदत्त का ही काम हो और यदि ये कोई इंतजाम न कर पायें तो इनका शरीर बाघ को नियामानुसार खाना ही पड़ेगा! ये आदिवासी भी कैसे सरल होते हैं, विश्व-ब्रह्माण्ड के नियमों को किस आत्मसमर्पण और निर्लिप्तता से ये अपनाते हैं! विमुग्ध हो शिवदत्त ने फिर पूछा—और भी कोई कारण होता है?

जम्बीरा—हाँ, एक और कारण है। वह है शिकारियों की दण्डनीय लापरवाही। शिकारी लोग जब जहाँ-तहाँ गोली चला देते हैं तो बाघ मरता नहीं, केवल घायल हो जाता है। इस घायल अवस्था में दुर्बल लाचार होकर वह नर-भक्षक हो जाता है।

शिवदत्त—आदमी अगर दल बाँध कर चले या पड़ाव डाले तो नर-भक्षक बन कर भी बाघ क्या कर सकता है?

जम्बीरा—जिसे बल नहीं होता उसे छल होता है। नर-भक्षक बाघ महाभारत के धर्म नियमों पर अपनी लड़ाई नहीं लड़ता। वह तो कौशल से, मक्कारी से, चोरी से, अपना शिकार पकड़ता है।

—जैसे?

—जैसे रात में गाँव के अन्दर घुस जाना और किसी दरवाजे पर

छिप कर बैठे रहना। रात में या तड़के जहाँ कोई भी निकला कि बिजली की तरह झपटा और पकड़ ले गया।

इस दर्दनाक दृश्य की कल्पना कर शिवदत्त सिहर उठे। उन्हें ऐसा लगने लगा जैसे उनकी अपनी झोपड़ी के बाहर खूँखार बाघ बैठा हुआ है और उनके बाहर निकलते ही उन्हें चट कर जायेगा। पूछा—यहाँ नर-भक्षक बाघ हैं?

जम्बोरा—नहीं। इस इलाके में आजकल नहीं हैं। जहाँ नर-भक्षक बाघ रहता है उसके इर्द-गिर्द बहुत दूर तक आतंक फैला रहता है। वीर भी कायर हो जाते हैं। सन्ध्या के बाद से ही कैसा भी काम क्यों न हो, कोई घर से बाहर नहीं निकल सकता। कहीं-कहीं गाँव का गाँव छोड़ कर लोग भाग जाते हैं जैसे प्लेग हुआ हो। किसी की भी खैरियत नहीं। लेकिन यह देखा गया है कि औरतों पर ही नर-भोजी बाघ अधिक हमला करता है।

—हाँ?

—हाँ। और कारण भी साफ है। औरतें मर्दों से कमजोर होती हैं और साधारणतः निरस्त्र भी रहती हैं।

शिवदत्त—मगर औरतें रात को घर से बाहर निकलेंगी तभी तो?

जम्बोरा—दिन को भी पकड़ लेता है। गाँव के नजदीक जंगल में घास काटने, पत्ता तोड़ने, लकड़ी इकट्ठा करने, औरतें जाती ही हैं। नर-भक्षक बाघ आदमी की आदतें जानता है, वहीं झाड़ी में दबक कर बैठा रहता है। एक बार दो बहनें लकड़ी लाने गई थीं। अचानक बाघ झपटा और दो में एक को पकड़ कर घसीटता हुआ ले चला। वह लड़की अभी मरी न थी, बाघ आधी देह पीठ पर लाद कर और आधी घसीटता हुआ लिये जा रहा था और वह अपनी बहन की ओर देखदेख कर हाथ-पैर पीट रही थी, बिलख रही थी। दूसरी लड़की असहाय खड़ी ताकती रही थी और हाय-हाय कर रही थी। जब बाघ उसकी बहन को लिये अदृश्य हो गया तब वह घर की ओर भागी और उसी क्षण से गूँगी हो गई। हाँ, एकाएक बिल्कुल गूँगी। तीन-चार साल बाद एक शिकारी ने उस बाघ को मारा। जब बाघ की लाश

उस लड़की को दिखाई गई और साबित किया गया कि वही बाघ है जिसने उसकी बहन को मारा था, तब वह एकाएक चिल्ला उठी और लोगों को बुलाने लगी—"देखो, देखो, बाघ मारा गया। जिसने मेरी बहन को मारा था वह बाघ मारा गया।" तब से फिर पहले की तरह बोलने-चालने लगी।

शिवदत्त—यह तो विलक्षण कहानी है। सुन कर रोयें खड़े हो जाते हैं। ऐसे बाघ को मारना भी मुश्किल काम होगा जब इतना चालाक होता है।

जम्बीरा—हाँ, बड़ा मुश्किल होता है। साधारण शिकार में तो भैंसा बाँध देने से अक्सर बाघ आ जाता है और मचान पर बैठे शिकारी लोग बाघ को मारते हैं। लेकिन नर-भक्षक बाघ सशंक रहता है, भैंसे पर नहीं आता। एक शिकारी ऐसा वीर था कि औरत के कपड़े पहन वह बाघ को अपनी ओर आकर्षित करता था।

—औरत के कपड़े पहन कर क्यों?

—इसलिये कि औरत के ऊपर नर-भक्षक बाघ निडर होकर हमला करता है। मर्द से सतर्क रहता है।

—मगर बाघ को आकर्षित करने का मतलब क्या? नजदीक पहुँ-चने पर तो खा ही जायेगा, औरत का वेष हो या मर्द का।

जम्बीरा ने समझा कर कहा—वह शिकारी गाँव की औरत के कपड़े पहन हँसुआ से घास काटने और गाने लगता था, और बगल में घास में छिपा अपना भरा राइफल रखे रहता था। ज्योंही उसपर बाघ झपटता कि हँसुआ फेंक वह राइफल से एक गोली में काम तमाम कर देता था।

शिवदत्त—अजब जीवट का आदमी था! और उसका निशाना कैसे कमाल का रहा होगा!

जम्बीरा—उसमें एक और खूबी यह थी कि वह बाघिन की बोली भी बोलता था। एक बार बाघ का पीछा करते शाम हो गई और बाघ ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने लगा। शिकारी ने देखा कि अब समय नहीं है कि उसके पीछे-पीछे पहाड़ पर चढ़ें और उसे मारें। तब वह पहाड़ के नीचे से ही

बाघिन के कामातुर बोल बोलने लगा। बाघ ने भी निमंत्रण-स्वीकृति की ध्वनि की। कई बार के आह्वान और उत्तर के पश्चात् बाघ उतर आया। तब शिकारी ने छिपकर उसे मारा।

शिवदत्त ने आश्चर्य और प्रशंसा के गद्‌गद् कंठ से कहा—विलक्षण शिकारी था वह ; यह वृत्तान्त तो जासूसी कहानी से भी अधिक रोचक लगता है। शिकारी कहते हैं इसको !

इस आदर्श शिकारी के अद्‌भुत् कौशल और साहस ने शिवदत्त के मन के अन्दर नर-भक्षक बाघ की समस्या का समाधान कर दिया। उन्हें ऐसा लगा जैसे बदमाश बाघ सभी के सभी खत्म कर दिये गये हैं और बचे-खुचे को बुला कर उनकी गर्दनें ऐंठ दी जा सकती हैं। अब उनका ध्यान गया, जंगली हाथियों पर। पूछा—अच्छा जंगली हाथी पकड़े भी तो जाते हैं ? सुना है इन्हें पकड़ पोस मनाते हैं तब बेचते हैं। यहाँ पकड़ने का कोई प्रबन्ध है ?

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। शेष सभी झोंपड़े घोर निद्रा में मग्न थे। ओरेबुरु गाड़ा का एक-तारा चिरन्तन वाद्य की तरह बज रहा था। नीरन्ध्र नीरवता में उसकी वाणी और भी उदात्त मालूम हो रही थी। चतुर्दिक अतल निस्तब्धता का साम्राज्य था। जब कभी वन-जन्तुओं के चीत्कार निद्रित वन को क्षण भर के लिये जगा देते।

परदन हो ने तो एक नींद ले ली थी। जग कर देखा कि जम्बीरा और शिवदत्त जी अभी तक बातें कर रहे हैं। उसने अँगड़ाई लेते हुए पूछा—आप लोग आज सोयेंगे नहीं क्या ?

शिवदत्त उठ कर बैठ गये और बोले—ऐसी रात जिन्दगी में रोज-रोज नहीं आती, परदन। अभेद्य अनन्त वन के बीच यह डेरा, वन-जन्तुओं का घेरा, सघन अँधियारी रात, यह अद्‌भुत् अनुभूति है। ऐसे वातावरण में जो सोया सो खोया के भाव उठने लगते हैं। सोने के लिये तो बहुत सी रातें मिलेंगी। किन्तु ऐसे परिवेश में वन-विज्ञों के मुँह से वन-कथायें सुनना, कब किसी को मयस्सर होगा ?

जम्बीरा इतनी देर में दूसरा फांका बना चुके थे। धूनी की आग

में सुलगाते हुए बोले—हम जंगलियों की कहानी सुनना ही कौन चाहता है, राना जी? सुनने के लिये सहानुभति चाहिये—हमसे, हमारे जीवन से, हमारे वन से। आप जैसे सज्जन और सहृदय जिज्ञासु बिरले ही मिलते हैं।

परदन—जम्बीरा जी से हाथी की कहानी तो सुनते ही रहिये। ये बहुत दिन उड़ीसा में भी रह आये हैं। इसी कम्पनी की शाखा एक वहाँ भी है, उसी में काम करने गये थे;

शिवदत्त—क्या उड़ीसा में जंगली हाथी बहुत हैं?

—हाँ। और खास बात यह है कि वहाँ हाथी पकड़े भी जाते हैं।

शिवदत्त बाल-सुलभ उत्सुकता से कहने लगे।—जम्बीरा जी, जरा सुनाइये कि हाथी कैसे पकड़े जाते हैं। मेरी तो समझ में ही नहीं आता कि इतने बड़े जानवर को आदमी कैसे पकड़ लेगा।

जम्बीरा—हाथी पकड़ने के तीन कायदे हैं। इनमें खेदा सबसे प्रमुख है। मैंने खेदा में काम भी किया है।

—अच्छा!

—हाँ। वामड़ा की बात है। उस खेदा में आठ बड़े-बड़े हाथी और तीन बच्चे पकड़े गये थे।

—कैसे?

जम्बीरा ने सविस्तार वर्णन आरम्भ किया—खेदा में दो-सौ तीन-सौ आदमी लगते हैं। पहले पता लगा लिया जाता है कि किस तरफ हाथियों का बड़ा दल है और कितनी दूर तक वे फैले हुए हैं। यदि बड़ा सा दल मिल गया तो काफी दूर तक घेरा बना कर आदमियों को बैठा दिया जाता है। इन पहरेदारों को चौबीस घंटे तैनात रहना पड़ता है। आग जलाये रख कर, ढोल पीट पीट कर, हाथियों को घेरे के बाहर निकलने से रोका जाता है। एक बार मैं भी घेरे पर रहता था। मेरे साथ वहीं का एक आदमी था। हम लोग सोते भी वहीं जमीन पर थे।

यह कह जम्बीरा अपने-आप हँसने लगा।

शिवदत्त ने पूछा—आप हँस क्यों रहे हैं?

जम्बीरा—एक मजे की बात याद आ गई।

—क्या ?

—एक रात हम दोनों पास-पास सो रहे थे। आग जल रही थी। आधी रात के बाद मेरा साथी तारापदो कहँर कर बोला—देखो न भाई, मेरे दाहिने पैर को न जाने क्या हो गया है, उठता ही नहीं। मैंने सोचा झिन-झिनी भर आई होगी, कहा, "पैर को जोर से झाड़ दो।" उसने फिर कहा, "जरा भी उठ नहीं रहा है, ऐसा लगता है जैसे किसी ने पकड़ लिया हो।" मैंने बेसब्र होकर जवाब दिया, "धत्, क्या यहाँ बाघ आकर तुम्हारा पैर पकड़ मालिश कर रहा है ? उठ बैठो।" तारापदो ने वेदना-भरी आवाज में कहा—"उठा भी नहीं जाता।" नींद बिगड़ जाने से मुझे क्रोध आ रहा था, झल्लाकर खड़ा हो गया। हे भगवान, देखता क्या हूँ कि एक महान अजगर ने तारापदो का एक पैर जाँघों तक निगल लिया है। मैं चिल्लाने लगा। आस-पास के लोग दौड़े आये और यह परिस्थिति देखी। अजगर साँप को काटा गया तब कहीं तारापदो का पैर निकल सका। सभी को आश्चर्य हो रहा था, और सबसे अधिक तारापदो को, कि किस अंदाज और मुलायमियत से साँप ने पैर को पकड़ा और निगल भी गया कि पैर वाले को पता तक नहीं ! अनुभवी लोग कहने लगे, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। खैरियत यही थी कि साँप एक ही पैर पकड़ सका। इसीलिये पैरों की फाँक पर उसे रुक जाना पड़ा। यदि दोनों पैर एक साथ उसके मुँह में आ गये होते तो तारापदो की गर्दन तक साँप पहुँच जाता और तारापदो को मरने तक का पता न चलता।

शिवदत्त इस रोमांचकारी वर्णन से सिहर उठे। पूछा—जंगल में इतने बड़े-बड़े साँप होते हैं ?

जम्बीरा—साँप ? मैंने तो एक ऐसा साँप देखा है जो एक ऊँचे लम्बे पेड़ पर चढ़ कर दो पास वाले पेड़ों पर फैला हुआ था और तीसरे पेड़ से झूलता हुआ जीभ निकाल रहा था !

शिवदत्त—बड़े ही भयानक सर्प हैं। इनसे आदमी का बचना तो कठिन जान पड़ता है, जंगली जानवरों से यदि बच भी जाय।

जम्बीरा—नहीं, सब होते हुए भी यह बात नहीं कि रास्ते-रास्ते

फंदा डाले साँप बैठे हुए हैं। हो सकता है कि बीसों वर्ष जंगल में काम करते रहने पर भी कोई इतना बड़ा अजगर साँप न देख पाया हो। अधिक खतरनाक छोटे-छोटे साँप होते हैं जो हरे रंग के हैं।

—हरे रंग का साँप ?

—हाँ, बिलकुल हरे रंग का। हरी पत्तियों में ये साँप छिपे रहते हैं, कोई जल्दी इन्हें देख भी नहीं सकता। डालियों से झूलते हुए ये आदमी के सिर में काट देते हैं। विषैले तो गेहुअन साँप से भी अधिक।

—अजीब-अजीब तरह के साँप जंगल में होते हैं !

—एक पानी का भी साँप होता है। यहाँ तो नहीं, मगर लोग कहते हैं कि राँची जिले के दक्षिण-पश्चिम अंचल में संख और ठेठइटांगर नदियों में यह साँप पाया जाता है।

—पानी का साँप तो सुना है विषैला नहीं होता।

—हाँ, विषैला तो नहीं होता, लेकिन दूसरी हिकमत से आदमी को मारता है। ये साँप शिकार तभी कर सकते हैं जब बरसात में नदी का पानी गंदला हो जाता है और थोड़े जल में ये अपने को छिपा सकते हैं। जिस घाट से आदमी आम तौर से पार हुआ करते हैं उसी के आस-पास दबक कर यह साँप इंतजार करता रहता है। ज्यों ही कोई पार होने के लिये पानी में पैठा कि साँप उसके पीछे पड़ गया। जब कुछ गहरे पानी और तेज धार में आदमी पहुँचता है तब साँप दोनों पैरों में लिपट बाँध लेता है। मर्द, औरत, बच्चा, जो भी हुआ पैर बँध जाने से पानी की धार में सम्भल नहीं सकता और गिर जाता है। गिरने से दोनों पैर साथ बँधे रहने के कारण आदमी डूब जाता है। तब साँप पैर को छोड़ उसकी नाक या कान के पास छेद करके खून पी जाता है। उसके बाद फिर दूसरे शिकार की ताक में लगता है।

शिवदत्त सिहर कर बोले—तब तो नदी के आर-पार बरसात के चार-छः महीने कोई भी न जाता-आता होगा ?

जम्बीरा—जीवन-समस्या ऐसी है, राना जी, कि बिना आये-गये बन भी तो नहीं सकता ! गाँव इधर है, बाजार उधर है, संगी-सम्बन्धी

भी इधर-उधर छिटके रहते हैं, न जाय तो क्या करे? लेकिन आदमी की बुद्धि साँप की बुद्धि से कब हार मानने वाली है? साँप की चतुराई का जवाब भी निकाल लिया है लोगों ने।

शिवदत्त ने उत्सुकता से पूछा—क्या उपाय निकाला?

जम्बीरा—जिन्हें पार करना होता है वे तेज छुरा या नोकाली कील, कोई-कोई औरतों के बाल के पिन भी हाथ में ले लेते हैं। सतर्क रहे और ज्योंही साँप ने बाँधना शुरू किया कि झट छुरे से साँप को मारा या कील की नोक घुसा दी। इतने से साँप झट छोड़ कर भाग जाता है।

शिवदत्त—अजीब दर्दनाक जीवन है वहाँ के बाशिन्दों का!

जम्बीरा—जी हाँ, मगर खैरियत यही है कि केवल दो-एक नदियों में ही ये साँप पाये जाते हैं और गँदले पानी में ही आक्रमण कर सकते हैं।

कई क्षण रुक कर जम्बीरा फिर बोले—मगर मैं हाथी की बात कह रहा था। सुनियेगा कि अब नींद आ रही है? क्यों न अभी हम सो जायँ, आप थके हैं, नींद सता रही होगी, फिर कल किस्से कहूँगा।

शिवदत्त अपना आग्रह प्रमाणित करने के लिये उठ बैठे—मेरी पलकों से नींद कोसों दूर है। मेरे मन-प्राण कान बन कर सुनने को आतुर हैं। सोता तो आदमी हर रात है। यदि जागता भी है तो प्रेम-लीला या रास-रंग के निमित्ति अथवा लाचार हो रोगी की सेवा-सुश्रूषा के लिये। ऐसे रतजगे का किसे सौभाग्य होगा कि घोर वन के भीतर, निस्तब्ध रात्रि में, बाघ-हाथी की आँखों देखी घटनायें सुने? आपको अगर नींद न आती हो तो कुछ और कहिये। इस वातावरण में वन-कहानी सुनने का माहात्म्य कुछ और ही है।

जम्बीरा ने झट उत्तर दिया—नहीं, मुझे तो नींद नहीं आ रही है। मैं एक और फाका पी लूँ तो बाकी रात बैठे बिता दूँगा। हम लोगों की तो रात जागने की आदत ही हो जाती है क्योंकि मचान पर रात भर न जगे चिल्लायें तो जंगली जानवरों से फसल का एक दाना भी न बच पाये।

शिवदत्त—हाँ, तो आप हाथी के घेरे की बात कह रहे थे। चौबीस घंटे वहीं बैठते सोते हैं। आग जला जला कर.........

जम्बीरा——जी हाँ, और घेरे को हर रोज कुछ कुछ छोटा किया जाता है। घिरे हुए क्षेत्र में केवल एक ओर सँकरा सा रास्ता रखा जाता है। इस रास्ते में दूर तक धान, ईख, केले के पत्ते, इत्यादि बिखेर दिये जाते हैं। रास्ते के अन्त में पचास-साठ फुट लम्बा-चौड़ा एक मजबूत बाड़ा बनाया हुआ रहता है। बन्दिश बस यही रहती है कि हाथी-दल को घेर कर रखें और बाड़े के रास्ते ही निकलने दें। बाड़े के भीतर सुस्वादु खाद्य पदार्थ भर दिये जाते हैं।

शिवदत्त——तो ये ही सुस्वादु पदार्थ खाने हाथी-दल बाड़े के भीतर घुस आते हैं?

——हाँ। हाथी-दल रोज तंग हो रहे घेरे के भीतर बेसब्र हो, आदमी के कोलाहल से आकुल हो, पहले तो घेरा तोड़ने की विफल चेष्टा करते हैं। साथ-साथ जब एक ओर अच्छी-अच्छी खाने की चीजें पाते हैं तब उसी ओर बढ़ते जाते हैं। बढ़ते-बढ़ते अजानते ही बाड़े के अन्दर घुस आते हैं। फाटक के ऊपर बैठा हुआ आदमी जब देखता है कि काफी संख्या में हाथी बाड़े के भीतर घुस आये हैं तब वह फाटक की रस्सी छोड़ देता है और फाटक गिर कर भीतर की ओर बन्द हो जाता है। उसी समय घेरा भी हटा लिया जाता है।

शिवदत्त——किन्तु हाथी जब देखते होंगे कि हम बाड़े के अन्दर फँस गये तब तो निकल भागने के लिये तोड़-ताड़ आरम्भ करते होंगे। सुना है जंगली हाथी को इतना बल होता है कि वह किसी भी चीज को तोड़ डाले।

जम्बीरा——आपने जो सुना है वह सही और दुरुस्त है। लेकिन हाथी के बल की भी तो कहीं हद होती है! तोड़-भागने की कोशिश तो ये हाथी इतनी करते हैं कि दूर बैठे हुए आदमी का भी कलेजा दहल जाता है। दीवारों को बार-बार सिर से, सूँड़ से, शरीर से, पागलों की तरह मारते रहते हैं, क्रोध और निराशा से रात-दिन चिंघाड़ते हैं। दीवारें रहती हैं मोटे-मोटे पेड़ों की बनी और तीन-चार तह खूँटों की। ये टूटने की नहीं। हाँ, फाटक कमजोर रहता है और ऊपर से बँधा सिर्फ झूलता

हुआ। लेकिन उसमें अन्दर से सैकड़ो नोकीली कीलें जड़ी हुई होती हैं, मारने से हाथी लहुलुहान हो जाता है, तोड़ नहीं पाता।

शिवदत्त—फिर क्या किया जाता है? बाड़े के भीतर भी हाथी को पकड़ना असम्भव जान पड़ता है।

जम्बीरा—जी हाँ, यों तो कोई जाकर उनके गले में रस्सी नहीं डाल दे सकता। इन हाथियों को छः-सात दिन भूखे प्यासे रखा जाता है ताकि ये दुर्बल हो जायें। इसी बीच मोटे रस्से का फंदा बना कर दीवार के नीचे-नीचे बाहर से फेंका जाता है। जो इस काम के विशेषज्ञ हैं, वे इसी तरीके से सभी हाथियों के पैर में फंदा डाल बाहर पेड़ में बाँध देते हैं। जब सब हाथी इस तरह बँध गये तब फाटक खोल दिया जाता है।

शिवदत्त—कभी-कभी हाथी के बच्चे भी साथ रहते होंगे। क्या इनके पैर भी बाँधे जाते हैं?

जम्बीरा—नहीं, बच्चों के पैर नहीं बाँधे जाते। ये तो जहां माँ जाती है वहीं जाते हैं, उसके पेट के नीचे से इधर-उधर जाते आते रहते हैं। बड़ा अच्छा लगता है इन बच्चों को देखते।

शिवदत्त—फिर हाथियों को पोस कैसे मनाते हैं?

जम्बीरा—बाड़े के अन्दर पालतू हाथियों को लाते हैं। एक-एक जंगली हाथी को बाँध कर बाहर खींच लाने में चार पालतू हाथी लगते हैं। एक एक कर सभी पकड़े गये हाथी पोस-पड़ाव पर लाये जाते हैं।

शिवदत्त—पोस-पड़ाव पर क्या होता है?

जम्बीरा—यहाँ कुछ खास काम नहीं होता। पालतू हाथियों के बीच रहते-रहते जंगली हाथी भी पोस मानने लगते हैं। जितनी दिक्कत इन्हें पकड़ने में होती है, उतनी पोस मनाने में नहीं होती।

इतने में वन-मुर्गे की बाँग कानों में आई। पौ फट रही थी।

१६

जिस दिन जेफरन ने प्रेम की जगह ज्ञान की बातें कर इथेल का तिरस्कार किया था उस दिन इथेल को चोट लगी थी जरूर। लेकिन वह

चोट अपनी जगह पर थी। संसार के हर व्यवहार के अनुरूप प्रेम-क्रीड़ा में भी ऊँचा-नीचा होता ही है। इथेल के लिये तो यह चूहे-बिल्ली की क्रीड़ा थी। इथेल मन में कह रही थी—बिल्ली एक झपेटे में चूहे को पकड़ ले सकती है, मगर नहीं पकड़ती—पकड़ती है, छोड़ती है, फिर पकड़ती है। जब क्षण भर के लिये छोड़ देती है तब चूहा समझता है, मैंने बिल्ली को कैसा हराया! और बिल्ली हँसती है। हम रूपसी स्त्रियाँ भी अपने मर्द-शिकार को उसी दाँव-पेच से पकड़ती हैं। हाँ, बिल्ली के समान हम शिकार को खा नहीं जातीं, बल्कि उसे वही सुख देती हैं जो स्वयं हम पाती हैं। यों तो कुछ लोग कामिनी के प्रेम-पाश में फँसे मनुष्य की गति चूहे की गति ही बताते हैं; कहते हैं, आखिर बिल्ली भी प्रत्यक्ष में न सही, परोक्ष में तो अवश्य ही, चूहे को सद्‌गति प्रदान कर उसकी आत्मा को वही सुख देती है जो स्वयं पाती है, बल्कि क्षणिक के बदले स्थायी आध्यात्मिक सुख! लेकिन छोड़िये उन बहिष्कृत तिरष्कृत निष्फलों की बात। अगर मर्द ऐसा कहता है तो वह वही है जिसमें मर्द के वे गुण ही नहीं जिनसे स्त्री आकृष्ट हो, या जिसके भाग्य में लावण्यमयी ललना के लोल अधरों और पुकार-भरे लोचनों का रसास्वादन आया ही नहीं। अगर स्त्री ऐसा कहती है तो वह वही है जिसे कोई मर्द पूछता ही नहीं। खैर, तो मैं जेफरन की बात सोच रही थी। जेफरन को देर-सबेर वशीभूत कर लेना और उन्हें काठ के पुतले की तरह नचाना केवल सब्र और समय का सवाल था। मजा तो ऐसे ही आदमी पर विजय पाने में है। जो रोज हलुआ-दूध खाता रहता है उसे दाँतों तले कड़ी चीज पाने की इच्छा होती है। कलकत्ते में कितने मेरे पीछे-पीछे फिरते रहते थे—डाँटो, डपटो, तिरस्कार करो, किसी तरह टलने को नहीं। अपने समाज में जिसके ऊपर एक मधुर मुसकान मैंने डाल दी वही पैरों पर लोटने लगता। जिस किसी पर मेरा मन गया वह बात बात में अपना हो गया। इस सहज शिकार से मन उमठ गया था। वह शिकार उसी तरह का था जैसे आखेट के सारे सरंजाम और प्रबन्ध के बाद बकरा मारा जाय! मेरा हृदय-मन एक ऐसे पुरुष के लिये लालायित था जिसे पाने में मुझे परिश्रम करना पड़े, जो रसज्ञ

और प्रेम-कलाकार होते हुए कड़ा हो, जो मुझे टरकावे और मैं वियोगिनी बन उसके पीछे-पीछे घाट-बाट घूमा करूँ। पुरुष मुझे डाँटे तो मैं नत-मस्तक सुनती रहूँ, मुझसे दोषों की कैफियत पूछे, मैं डर और शील से अपनी सफाई दूँ। मैंने समझा था शादी कर लूँगी तो पति का सबल आधिपत्य होगा, उसकी आज्ञा पर चलना पड़ेगा और पति पर अपने को सम्पूर्ण निछावर कर दिल की बेलज्जत आवारागर्दी निकाल फेकूँगी। क्योंकि ऊपर से जो कुछ भी कोई कहे दिखावे, स्त्री का परमानन्द शासित होने में है, शासन करने में नहीं। जो सुख योग्य नर-पुरुष के हाथों रोने में है वह अयोग्य पुरुष को उँगलियों पर नचा कर हँसने में नहीं है। अभाग्यवश मनसुख पति भी मिले तो ऐसे कि मेरी भौहों के इंगित के लिये टक लगाये रहते हैं। ये बाँस की वह कमानी भी नहीं जो दूसरी ओर खींचने पर फिर छूटते ही जोरों से आकर मारती है। ये तो भींगे पुआल का ढेर हैं जिसे जहाँ हटा दो वहीं रह जाता है। कभी-कभी तो मुझे ये उस दयनीय कुत्ते की तरह लगते हैं जो डर से पास तक नहीं आता बल्कि दूर से ही ताकता है और जरा हाथ उठा दिया कि दुम दबाकर भागता है। ऐसी परिस्थिति में जेफरन मेरे विनयी मन की दीन प्रार्थना के फलस्वरूप ही मिले थे। गई तो थी केवल पति की नौकरी-रक्षा और तरक्की के लिये लाग-बझाव करने। लेकिन यह पुरुष ऐसा विलक्षण निकला, कर्म का कठोर, प्रेम का कलाकार, ऐसा जिसे स्त्री की सारी अभिलाषाओं ने गढ़ कर तैयार किया हो—फँसाने क्या गई थी, खुद ही फँस आई। शिकारी शिकार बन गया। जेफरन में मैंने वही पाया जिसकी खोज मेरी अतृप्त आत्मा अहर्निश करती आ रही थी। वे मुझे डाँटते, मारते, मेरा तिरस्कार करते, या पति का ही हित-अहित जो चाहे करते। मैं सम्पूर्ण आत्म-समर्पण कर चुकी थी। मुझे सबमें सुख था। लेकिन किसी दूसरी स्त्री के वश में पड़कर मेरी अवज्ञा हो, मुझे नैतिक शिक्षा दी जाय, यह कोई स्त्री किसी तरह बरदाश्त नहीं कर सकती। ऐसी परिस्थिति में तो आराध्य देव को भी नष्ट किया जाता है कि वह गन्दे हाथों में न पड़े। हमने इतिहास में पढ़ा है कि वीर योद्धा जब शत्रु के आक्रमण से स्त्री-परिवार को न बचा सकते

थे तब अपनी सती स्त्री को पहले मार तब स्वयं मरते थे। मैं वीर योद्धा नहीं हूँ और न जेफरन मेरी सती स्त्री ही हैं, फिर भी देखती हूँ कि मुझे भी वही करना पड़ेगा।

इथेल ने जब देखा कि जेफरन को समझाने से काम नहीं बनता तो बुदना पर आक्रमण करने का निश्चय किया। यदि वही बँगला छोड़ कर भाग जाय, या उसके माँ-बाप और घर-समाज उसे यहाँ से हटने को बाध्य करें, तब जेफरन अपना सारा विभ्रान्त प्रेम लिये हाथ ही मलते रह जायेंगे। तब निरुपाय हो उन्हें इथेल के पाद-पद्मों पर फिर विनय-निवेदन करना पड़ेगा। एक दिन अवसर ढूँढ़ कर, जेफरन के साथ एक मिनट के सामाजिक काम का बहाना ले, ऐसे वक्त से उनके घर गई जब वे जानती थीं कि जेफरिन घर में नहीं हैं। गोल कमरे के अन्दर घुसीं तो देखा कि बुदनी कुरसी पर बैठ रेडियो के कल-पुर्जे को छू-छा रही है। इथेल को देखते ही वह खड़ी हो गई। इथेल दास बाघिन की तरह उस पर झपटीं और उसे धक्का देकर बोलीं——यह तेरे बाप का घर है या जेफरन साहब तेरे खाविन्द हैं कि इस सीनाजोरी से कुरसो पर बैठी हुई थी? तू मजदूरिन है, बँगले के भीतर रहती है तब भी मजदूरिन है। हाँ, लाज-शरम बेचती है तो रोटी का टुकड़ा पा जायेगी, मगर ज्यादा बढ़ने की कोशिश न कर।

पता नही बुदनी ने इस फेनिल वाक्य-धारा को कहाँ तक समझा, किन्तु कई क्षण तक क्षमा-प्रार्थना-भरे दीन नेत्रों से मेम साहब को देखते रहने के पश्चात् घूम कर पिछवाड़े बरामदे की ओर जाने लगी। इथेल दास ने लपक कर उसकी बाँह पकड़ ली और झकझोर कर अपनी तरफ खींचते हुए पूछा——क्यों री? बोलती क्यों नहीं? मेम बन कर साहबों को फँसाना चाहती है? तालाब की तरह बे-कद की ये आँखें पाई हैं तूने और छाती पर सींग जमाये लोगों से कौतुक करती फिरती है, बस इसी से समझ लिया कि तेरी त्रिलोक-विजय हो गई? खबरदार! एक पग और आगे बढ़ी तो तुझे कच्चा चबा जाऊँगी। तू देख लेगी की सभ्य लोग भी चबा-चबा कर आदमी खाते हैं। बोल, फिर ऐसा करेगी?

बुदनी उसी तरह शून्य नेत्रों से मेमसाहब को निहारती रही। उसके भाव थे, भाग सकूँ तो बचूँ।

मिसेज इथेल दास का क्रोध, बुदनी को मौन निश्चल देख, और भी भभक उठा। उन्होंने बुदनी के सर का बाल पकड़ कर खींचा—चुप क्यों खड़ी है ? जेफरन साहब के साथ तो खूब बढ़-बढ़कर बातें करती होगी, अब तेरी बोलती क्यों मारी गई ? तू चाहती है मुझसे ऊपर हो जाना ? चाहती है कि इस छावनी से मुझे निकाल तू रानी बन जाय ? मुझे जाना भी होगा तो तुझे और जेफरन दोनों को जिन्दा जला कर जाऊँगी। जेफरन को तू भुलावा दे सकती है, मुझे नहीं। पता नहीं जेफरन की मति पहले से ही मारी गई थी या तूने अपने जंगली टोना-मन्तर से मारी है।

इस पर भी बुदनी चुप रही। इथेल दास लाल-लाल आँखों से उसकी तरफ देख रही थीं। उनके नथने काँप रहे थे, निश्वास जोरों से चल रहा था। कुछ देर वे भी चुपचाप रहीं, फिर उसे एक तमाचा लगा कर ऊँची एँड़ी वाले चमचम जूते से ठोकर मारी—जा हरामजादी, भाग।

अलीजान मेमसाहब की ऊँची आवाज सुन बावर्चीखाने से आकर झाँक गया था। मामले को मेमसाहब और बुदनी के बीच गहरे पानी में देख वह भीतर न घुसा। इतने दिनों की खानसामागिरी से अलीजान को यह तो पता था ही कि जब दो व्यक्ति गोल कमरे में बात-चीत कर रहे हों तब खिदमतगार बिना बुलाये नहीं जा सकता। दरवाजे से सट कर वह सारी बातें सुन रहा था और बीच-बीच में लुक-छिप कर झाँक भी लेता।

जब बुदनी पिछवाड़े बरामदे में चली आई और इथेल दास वापस जाने को मुड़ीं तब अलीजान सामने चला आया और अदब से झुक कर बोला—सलाम, मेम साहब।

इथेल खड़ी हो गई—सलाम, अलीजान। तुम्हारे साहब कहाँ हैं ? आई थी उनसे एक बहुत जरूरी बात पूछने।

अलीजान—साहब तो, हुजूर, इस वक्त घर पर कभी नहीं रहते।

मैं बावर्चीखाने में था। अभी-अभी पता चला कि हुजूर आई हैं तो दौड़ा आ रहा हूँ।

इथेल की चौकस आँखों ने देख लिया था अलीजान को झाँकते हुए। यह भी उन्हें याद था कि किस व्यंग्य से उसने उस दिन इन्हें सलाम किया था जब जेफरन से तिरस्कार पा वे घर जा रही थीं। अलीजान दलाल है, इसमें इथेल को कोई सन्देह न था। मगर इस समय उस पर गुस्सा करें तो कौन जाने साहब का शह पाकर वह इनकी पूरी बेइज्जती न कर दे। अपनी इज्जत अपने हाथ वाले सिद्धान्त पर चलना ही ठीक था। मुसकुरा कर बोलीं—तुम्हारे साहब तो इस तरह काम-धंधे में लगे रहते हैं जैसे दीन-दुनिया कुछ है ही नहीं।

अलीजान कुछ न बोला।

इथेल दास ने फिर कहा—अलीजान, तुम्हें उस पुडिंग के लिये धन्यवाद देना तो भूल ही गई थी। तुमने जैसा बताया था मैंने ठीक उसी तरीके से बनाया। ऐसा उम्दा उतरा कि साहब तो बाग-बाग हो गये। वे बार-बार पूछें, कहाँ सीखा, लेकिन मैं उनकी उत्सुकता बढ़ाती जाती थी। अन्त में मैंने तुम्हारा नाम लिया तो वे झट बोल उठे, तो यही कहो। मैं सोच ही रहा था कि अलीजान के सिवा कौन इतना अच्छा पुडिंग बना सकता है! वे तुम्हें पुडिंग-किंग कहा करते हैं।

अलीजान ने झुक कर सलाम किया और कहा—हुजूर लोगों की नजर चाहिये।

—फुलवारी आजकल कैसी है, अलीजान?

—बाग में खूबसूरत से खूबसूरत फूल लगे हुए हैं, हुजूर।

—और तुम्हारी हो फुलवारी के फूल तो जेफरन साहब भी हैं!

अलीजान हँस पड़ा।

इथेल दास—मैं इस मानी में कह रही हूँ, अलीजान, कि साहब की पूरी देख-रेख तुम्हारे ही हाथ में है। तुम उनके पुराने खानसामा हो, तुम पर उनका कितना विश्वास है, तुम्हारे हाथ में तो वे बच्चे की तरह रहते हैं। तुमने बहुत दुनिया देखी है, अलीजान। कितने बड़े-बड़े

साहब तुम्हारे हाथ आये और चले गये। तुम्हारा जो भी ख्याल हो, मैंने तो जेफरन साहब-सा भला आदमी कभी नहीं देखा।

अलीजान—इसमें क्या शक, हुजूर!

इथेल—काम में इतने कड़े और कुशल, समाज और घर में कितने भोले-भाले! मैं तो यही सोचती रहती हूँ कि जिस स्त्री का इनसे ब्याह होगा वह अपने को कितना धन्य मानेगी! चरित्र देखो इतना ऊँचा और निर्मल कि मैं जवान औरत अकेले चली आती हूँ अविवाहित जेफरन साहब के घर और मन में जरा भी दुश्चिन्ता नहीं जागती।

एक क्षण रुक कर वे फिर बोलीं—मगर तुम पर भी तो कुछ जिम्मेवारी है न, अलीजान?

अलीजान—अल्ला नमक को शरीअत में चूक न कराये, मेरी तो यही दुआ रहती है।

इथेल—साहब की बदनामी तुम्हारी और हमारी बदनामी है।

—जी, हाँ।

—मन जब बे-लगाम घोड़े की तरह भागता है, उस समय नीचा, ऊँचा, समतल, गड्ढा, इसका उसे ज्ञान ही नहीं रहता।

—जी हाँ।

—संगत से बहुत कुछ होता है, बुरे समाज में बुरा, अच्छे में अच्छा।

—जी।

—जेफरन साहब संगत के मामले में भूल कर रहे हैं सो तो तुम देख रहे हो।

अलीजान ने निर्लिप्तता से उत्तर दिया—आप बड़े लोगों की बात में मेरी क्या बिसात?

अलीजान यही कह कर हमेशा निकलना चाहता था यद्यपि इथेल दास जानती थीं कि अपने लाभ के लिये ही उसने जेफरन को बुदनी में फँसाया है ताकि साहब सोलहो आने मुट्ठी में आ जायँ और उनका सब कुछ यह लूटे-खाय। उस दिन की तरह इथेल को फिर गुस्सा चढ़ा लेकिन अपने को

रोक कर बोलीं—बिसात क्यों नहीं है ? तुम नहीं चाहो तो क्या बुदनी बँगले में मेम बन कर रह सकती है ?

—मैं आप लोगों का गुलाम ठहरा, हुजूर।

इथेल और न सम्भाल सकीं—मगर गुलाम मालिक की आस्तीन में साँप नहीं पोसता, जैसा तुम कर रहे हो। एक गरीब आदिवासी लड़की की इज्जत खराब करा रहे हो सिर्फ अपने मुनाफे के लिये। साहब को समाज से गिरा रहे हो। उन्हें मिट्टी में मिला रहे हो अपने खेत को खाद बनाने के लिये। मुझे भी तो भगवान ने दो आँखें दी हैं और कंधों पर एक सिर !

अलीजान—जी।

इथेल का पारा दो डिग्री और चढ़ा—जी, जी, करते रहते हो और अपना मतलब गांठते हो। तुम क्यों कर सोच रहे हो कि मेरे रहते यह सब होता रहेगा ? क्या मैं नहीं देख सकती कि तुम्हारी मदद न हो तो यह सब कभी नहीं हो सकता ? मैं बुरा-भला नहीं कहना चाहती, लेकिन साफ लफ्जों में इसे दलाली कहेंगे और तुम्हें दलाल।

अलीजान ने आहत स्वर में उज्र किया—मैं इज्जतदार आदमी हूँ, हुजूर। आपने एक बार पहले भी इस नागवार लफ्ज का इस्तेमाल किया था। गरीब आदमी की भी आबरू होती है।

इथेल—तुम्हारी इज्जत है और मेरी कोई इज्जत नहीं ? एक आदिवासी लड़की इस बँगले में रानी बन कर रहे तो मेरी आबरू दूनी-चौगुनी बढ़ जाती है न ? मैं देखती हूँ तुम काफी गहरे आदमी हो। तो तुम देख लोगे कि मैं भी हथकंडे चला सकती हूँ। तुम जैसों को उखाड़ फेंकना मिनट भर का काम है। कलकत्ते के बड़े साहब भी मेरे हाथ में हैं।

अब अलीजान का भी रुख बदला। सहते-सहते दबा पिल्लू भी उभर उठा। संकेत-भरी भाषा में उसने शान्त भाव से कहा—सो तो देख रहा हूँ।

इथेल के बदन में काँटा गड़ा—क्या देख रहे हो ?

अलीजान ने व्यंगात्मक गाम्भीर्य से उत्तर दिया—मुझे भी अल्ला ने दो आँखें दी हैं और जिस्म के ऊपरी हिस्से में एक सिर।

इथेल—हूँ ! तुम इतनी दूर बढ़ आये ?

—क्या करूँ ? आप ही खींच रही हैं। मैं तो गहरा आदमी हूँ लेकिन आप ही के हाथों छिछले पानी में लाया गया।

इथेल ने क्रोध से काँपते हुए कहा—मैं यह बेइज्जती नहीं सह सकती। मैं तुम लोगों को उखाड़ फेकूँगी। जेफरन साहब बुदनी को लेकर मौज नहीं कर सकते इस बँगले में और न तुम ही दलाली करने पाओगे। समझे !

अलीजान—समझता तो सब हूँ लेकिन यह दो औरतों के बीच की बात है, इसमें कैसे पड़ूँ ?

इथेल के शरीर में जैसे चलती बिजली का खुला तार छू गया। तड़प कर बोलीं—क्या कहा ? दो औरतों के बीच की बात ? मेरी और बुदनी की ? मैं समझ रही हूँ तुम्हारा हौसला कहाँ तक बढ़ा हुआ है।

अलीजान—जी।

इथेल कई दीर्घ क्षणों तक अलीजान को आग्नेय नेत्रों से देखती रहीं, फिर क्रोध से काँपते हुए शरीर को घर की ओर झटके से घुमा कर बोलीं —अच्छा, देखा जायेगा।

अलीजान ने भी हल्की आवाज में कहा—देखा जायेगा।

\+ \+ \+

जेफरन जंगल में कम्पनी का काम देखने गये हुए थे, लौटने में शाम के पाँच बज गये। साधारणतः लंच के समय एक-डेढ़ बजे तक वापस आ जाया करते थे, लेकिन आज काम अधिक था, चलना भी कुछ दूर था, इसलिये साथ में सेंडविच, उबाले अंडे और थारमस में चाय लेते गये थे।

जिस समय काम का निरीक्षण कर रहे थे उस समय कठिन परिश्रम में युक्त आदिवासी मजदूर-मजदूरिनों का प्राण-भरा आनन्द देख-देख कर विस्मित हो रहे थे। आधुनिक सभ्यता के सुखों से वंचित, आधा-पेट खाकर देह-तोड़ मेहनत में लगे हुए ये नर-नारी, किस्मत को न कोस कर, इस निर्दय हड्डी-पिसाई को उस कृतज्ञता से अपनाये हुए हैं जैसे यही उनकी दीर्घ आराधना का फल हो। हमारी बाइबल, हिन्दुओं की धर्म-पुस्तक गीता, उनको तो यही शिक्षा है कि सुख-दुःख सभी को आनन्द-मय

समझो, आनन्द ही परमात्मा की प्रतिमूर्त्ति है, इत्यादि। लेकिन हम तथाकथित सभ्य मनुष्यों को इस आन्तरिक उल्लास की अनुभूति कहाँ कभी हो पाती है ? यहाँ लकड़ी के मोटे-मोटे बोटों को उठाते समय एक ओर पसीना टपक रहा है तो दूसरी ओर मुसकान के मोती झर रहे हैं ! ये आदिवासी ही अकृत्रिम रूप से सभ्य और पूज्य हैं।

जेफरन जब बँगले पर लौटे तो अलीजान ने उनमें गहरे आनन्द की झूम देखी।

शाम की चाय पीने के बाद जब बरामदे में जेफरन साहब आराम कुरसी पर फैल कर मोटा सिगार सुलगा धुयें की लड़ियाँ बनाने लगे तब अलीजान ने एक किनारे से कहा—दास मेम साहब आई थीं।

जेफरन को ऐसा लगा जैसे पुडिंग के प्लेट में मक्खी अगर गिर नहीं गई तो गिरने को मँडरा अवश्य रही है। पूछा—कब आई थीं ?

—यही करीब साढ़े दस बजे।

—क्यों ?

अलीजान ने खानसामा की विधि-निबद्ध निर्लिप्तता से उत्तर दिया—यह कैसे जानूँ, हुजूर ? मैं नौकर आदमी ठहरा। कहती थीं, हुजूर से एक मिनट का जरूरी काम था।

—वे तो जानती हैं मैं उस समय घर पर कभी नहीं रहता।

—यही तो अचरज है, हुजूर। और उससे भी ज्यादा यह कि गोल कमरे में बुदनी को पीटने लगीं।

जेफरन स्प्रिंग-चालित पुतले की तरह झटके से उठ बैठे और खानसामा की ओर गर्दन घुमा दी। अविश्वास के स्वर में पूछा—क्या ? बुदनी को पीटा ?

सिगार हाथ से छूट कर गिर गया था और उपेक्षित बालक की तरह ठुनक-ठुनक कर धुआँ फेंक रहा था !

अलीजान ने उत्तर दिया—हाँ, हुजूर।

—क्यों ?

—क्या जानें, हुजूर।

—बुदनी से नहीं पूछा ?

अलीजान ने निराशा के स्वर में कहा—बुदनी तो पूछने पर सिर्फ हँसती है, कुछ बोलती नहीं।

—और तुम तमाशा देखते रहे? बड़ा दिलचस्प लगा होगा तमाशा, एक गरीब लड़की का पीटा जाना!

अलीजान आहत भाव से बोला—नहीं हुजूर, मैं रहता तो यह होने पाता? मैं तो बावर्चीखाने में था। मेम साहब की ऊँची आवाज सुनी तो दौड़ा आया। आने पर मैंने सिर्फ यही देखा कि मेम साहब ने बुदनी को ठोकर मारी और गाली देकर भगा दिया। इनके हाव-भाव से अंदाज लगा कि उसके पहले इन्होंने उसे झकझोरा था, गालियाँ दी थीं, और उसके बाल भी नोचे थे।

जेफरन प्रशान्त ज्वालामुखी की तरह शान्त थे। कुछ देर की निस्तब्धता के पश्चात् बोले—बुदनी को बुलाओ।

बुदनी आई। जेफरन ने पूछा—मेम साहब ने तुम्हें मारा है ?

बुदनी चुपचाप खड़ी रही। कोई उत्तर न दिया।

जेफरन इस चुप्पी पर नाराज हुए और पूछा—बोलती क्यों नहीं ? मेम साहब ने तुम्हें मारा है ?

बुदनी मुस्कुराई। क्षण के भीतर ही जोर से हँसने भी लगी और बोली—हाँ, मैं कुरसी पर बैठ कर रेडियो जो छू रही थी।

यह कह वह दौड़ कर कमरे में भाग गई।

जेफरन ने अन्यमनस्क की तरह पूछा—तब फिर?

अलीजान—तब हुजूर, मैं मेम साहब से पिल पड़ा। साफ कह दिया, यह गैरवाजिब बात है। तब वे मुझे धमकाने लगीं।

—तुम्हें धमकाने लगीं ?

—हाँ, हुजूर।

—तब फिर ?

अलीजान ने न—कहना—चाहिये के स्वर में कहा—हुजूर, मैं तो

नौकर आदमी ठहरा, जैसा आपका वैसा दास मेम साहब का। लेकिन जब हुजूर को धमकाने लगीं तब मुझसे सहा न गया।

—मुझे धमकाने लगीं?

—हाँ, हुजूर।

—तब फिर?

अलीजान—तब फिर जाने क्या अनाप-शनाप बकने लगीं, मुझे उखाड़ देंगी, आपको भी देख लेंगी। कुछ इस तरह की बात भी कानों में आई कि कलकत्ते के बड़े साहब उनके हाथ या मुट्ठी, पता नहीं ठीक क्या कहा उन्होंने। मैं तो बाल बच्चेदार आदमी ठहरा, कुछ डर गया। फिर भी दबा नहीं।

—तब फिर?

—फिर और बातें बकती गईं। बोलीं, मेरे रहते बुदनी तुम्हारे साहब के आस-पास भी नहीं रह सकती, मुझे इसके हथकंडे मालूम हैं, वगैरह। कहने से मालूम हुआ शायद बड़ा साहब से शिकायत करने कलकत्ते भी जायँ।

जेफरन दूसरा सिगार सुलगा कर आराम कुरसी पर लेट गये और धुयें की क्रीड़ा को ध्यान से देखते हुए गंभीर स्वर में बोले—कलकत्ते तो उन्हें मैं खुद भेजूँगा।

जेफरन ने उसी क्षण निश्चय तो बहुत कुछ कर लिया, लेकिन आदमी गमखोर थे, उस पहाड़ की तरह जिसे कोई पत्थर फेंक-फेंक कर मारता रहे। मानव-सुलभ प्रतिशोध के भाव एक-एक कर सिगार के धुयें की तरह उठते, परन्तु उसी तरह कुछ देर मँडरा कर विलीन हो जाते। शायद वायुमंडल के समान विस्तृत और महान इनकी पराक्रम-संजात अहिंसा-वृत्ति भी थी। फिर बुदनी ने इस घटना का जो अर्थ लगाया था उससे ये इतना मुग्ध हुए कि अकेले बैठे अपने-अपने ही हँस रहे थे। ये आदिवासी कितने सरल होते हैं! मनुष्य का ओछापन इनके ऊपर उतना ही असर डाल सकता है जितना पानी कमल के पत्ते के ऊपर। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि उनका दिल फट गया और मनसुख दास या इथेल से मिलना-

जुलना बन्द करने का निश्चय कर लिया। बेयरा को हुक्म दिया—ये लोग जब मिलने आयें तो कह दिया करना, साहब के सिर में दर्द है या जरूरी काम में लगे हुए हैं, इत्यादि।

लेकिन मिसेज इथेल दास इतना गम खाने वाली नहीं थीं। जेफरन के बँगले से लौटते ही इस उधेड़-बुन में लग गई थीं कि किस तरीके से बुदनी को जेफरन से अलग किया जाय। इधर जब देखा कि जेफरन अब मिलना भी नहीं चाहते तब सोचा, बदमाश बुदनी ने जड़ी होगी। इससे इथेल की हिंसात्मक भावना और भी उग्र हुई। यदि जेफरन पहले की तरह प्रेम तथा विरह-वेदना के भाव से मिलते-जुलते रहते तो बुदनी के साथ जेफरन की एक-घड़ी पौन-घड़ी से इथेल अपनी आँख मोड़ भी ले सकती थीं। वे सोचा करतीं, आधुनिक सभ्य स्त्रियाँ जो भी कहें, आदि काल से ही एक राजा की तीन रानियों वाली कहानी चली आ रही है, और यह प्रथा इतने युगों और देशों में प्रचलित न रहती यदि स्त्री-जाति का इसमें समर्थन न होता। वर्त्तमान जीवन की जटिलता ने ही उस रिवाज को दूर किया, स्त्री के विरोध ने नहीं। मगर बुदनी बँगले में राज करे और मैं झाँकने भी न पाऊँ यह तो साफ सहिष्णुता के बाहर है और मेरी मर्यादा के लिये चुनौती। इथेल ने बुदनी के माँ-बाप को बुलवाया और वर्त्तमान तथा भविष्य के तरह तरह के लाल चित्र उनके सामने रख कर भड़काया। यों तो यहाँ अपने समाज के भीतर अविवाहित जवान लड़की स्वतन्त्र होती है, लेकिन जात की दीवार कोई नहीं तोड़ सकती। लड़की ऐसा कोई काम नहीं करने पा सकती जिससे माँ-बाप को समाज के बाहर निकलना पड़े। जात और समाज के लिये ही तो मनुष्य का जीवन है, नहीं तो इस नश्वर शरीर का मोल क्या? बाप इतना बिगड़ा कि कहने लगा—जो मेरी इज्जत लेना चाहता है उसका मैं प्राण ले लूँगा। इथेल यह सुन कर सिहर गईं लेकिन मन में कहने लगीं, यह तो जेफरन की अपनी करनी का फल है, मैं क्या करूँ? मैंने तो उन्हें बचाने का लाख प्रयत्न किया, मगर जो डूबने पर उतारू हो उसे कौन बचा सकता है?

बुदनी के बाप ने बड़ा शोर गुल मचाया। गाँव, समाज, छावनी,

सभी को सर पर उठा लिया। लेकिन अलीजान की अनुभव-आलमारी में सब मर्जों की दवा मौजूद थी। वह जानता था कहाँ चाँदी की चमक चलती है, कहाँ कोड़े की कड़क। माँ-बाप के जाति-पुनर्वास के लिये खासा हर-जाना मिल गया, बुदनी जात और घर से निकाल दी गई और मामला खत्म हो गया।

इधर जेफरन की अपार सहिष्णुता भी छोर पर पहुँच चुकी थी। उन्होंने कम्पनी को मनसुख दास के बारेमें काम का पूरा विवरण लिख भेजा। अन्त में था—मैं इतने दिन इनसे कोई काम न पाकर भी इस आशा में सब्र से बैठा रहा था कि धीरे-धीरे ये काम सीख जायेंगे और इस उपयुक्त वातावरण में इनके मनोभाव भी सुधरेंगे। किन्तु मेरी आशा विफल रही। मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ कि इस तरह का आदमी कभी सुधर नहीं सकता। और इनकी पत्नी ने हमारे समाज को यहाँ मिट्टी में मिला कर छोड़ा, कम्पनी की भी मर्यादा मिटा दी। मुझे आश्चर्य है इस तरह का आदमी क्योंकर यहाँ भेजा गया।

कम्पनी से तुरत चिट्ठी आई मनसुख दास की बरखास्तगी की। इथेल सुनते ही कलकत्ते दौड़ीं और कोशिश-पैरवी में आसमान-जमीन एक कर दिया। लेकिन फल कुछ भी नहीं हुआ। कम्पनी में जेफरन की धाक इस तरह जमी हुई थी कि उनकी सिफारिश के खिलाफ कोई कुछ न कर सकता था। उनकी रिपोर्ट ऐसी थी कि मनसुख को कम्पनी की किसी और शाखा में भी काम न मिल सकता था। लाचार हो इथेल लौटीं और बाँधना-छानना शुरू किया। विदाई के दिनों एक आदमी भी भेंट-मुलाकात करने न आया, न इन्हें किसी तरह की सहायता ही मिली। सहायकों में केवल एक शिवदत्त थे। वे मनसुख दास के घर रोज आया करते और जो कुछ भी मदद उनके पराक्रम के भीतर थी, सच्चे मन से दिया करते। मनसुख दास का निकाला जाना सुनकर छावनी में दावतें हो रही थीं। कारखाने के कुछ लोग शिवदत्त के पास यह प्रस्ताव भी लेकर आये कि मनसुख दास को अपमानित कर इनसे दुर्व्यवहारों का बदला लिया जाय, अब कौन सा डर है? कई लोगों ने कहा, चलते-चलाते इन्हें एक निशानी

भी दे दी जाय। एक मुस्टंडे मजदूर ने राय दी, क्यों न जंगल के रास्ते में इस पापी का सामान छीन कर सदावर्त में लगा दिया जाय? किन्तु शिवदत्त ने गंभीर मुद्रा से उत्तर दिया——यह अधम अधर्म और कायरता का प्रस्ताव है। हमारा धर्म है सदा सहायता करना, दण्ड देना परमात्मा का काम है। उनकी मर्जी, जिसे जिस अवस्था में रखें।

वापसी के समय मनसुखदास और उनकी स्त्री छावनी के अनादर और अपनी विवशता के बीच रो पड़े। अब इन्होंने अपने और शिवदत्त में तुलना करके देखा कि चालाकी और धूर्त्तता कहाँ तक कारगर हो सकती है और अहिंसात्मक कर्त्तव्य-पालन की देन क्या है। लेकिन इनका कुंठित मन अब भी मानने को तैयार न था कि चालाकी चमकते शीशे का बरतन है, जब तक चलता है, चमचम है, गिरा कि चूर-चूर। सच्चा व्यवहार पीतल का प्यालाः है जो मनहर न होते हुए भी टिकाऊ और कामू है। टूट जाने पर भी इसका कुछ दाम है।

१७

सामाजिक क्षति-पूर्त्ति की लेन-देन और जाति-वहिष्कार के पश्चात् बुदनी सम्बन्धी मामला इस तरह दब गया जैसे खौलता हुआ पानी रेफ्रिजरेटर में रख दिया गया हो। सहज भाव से सभी ने बुदनी को जेफरन की पत्नी मान लिया। सिर्फ जेफरन के मन को यह मानने में कठिनाई हो रही थी। उनकी अवस्था उस भावुक बालक की थी जो सुरम्य फुलवारी को बाहर से देख-देख कर मुग्ध हो रहा था, लुभावनी कलियों की मुस्कान के साथ मुस्करा रहा था, किन्तु नितान्त अप्रत्याशित रूप से अचानक उस असीम उद्यान का पूरा दायित्व अपने पर पाकर चकरा गया हो। जेफरन ने उस अँगरेज लेखक का मत पढ़ा था जिसके अनुसार प्रेयसी और पत्नी में गीत और गद्य का अन्तर है। फिर यह कोई सामान्य पत्नी-पाणिग्रहण भी तो नहीं था! यह अगाध में गोता लगाना था। मनुष्य समुद्र के किनारे

खड़ा होकर, उसकी प्रकांड रमणीयता में लीन हो जाना चाहता है, वेला-भूमि पर तरंगों की क्रीड़ा के साथ लीला करना चाहता है, पर मध्य सागर में डुबकी लगाने कौन जाता है? मन के मधुर आवेशों से प्रेरित हो, आत्मा की अकृत्रिमता की पुकार सुन, ये बुदनी की ओर क्रमशः अग्रसर हुए थे। इनकी कल्पना में बुदनी थी केवल वन-श्री की प्रतिमा मात्र! जिस तरह निराकार निर्गुण ब्रह्म की कल्पना में मूर्त्ति सहायक होती है उसी तरह वनस्थलि की आध्यात्मिक शोभा और मानवता की अकलुष विभूतियों की अनुभूति में ये प्रकृति-बालायें साधक हैं। किन्तु जेफरन उन मूर्त्ति-पूजकों में न थे जो पाषाण-मूर्त्ति को ही सब कुछ मान कर प्रकृत को भूल जाते हैं और परिणामतः ऊपर उठने के बदले अधोगति की ओर बढ़े जाते हैं। अपनी मानव-दुर्बलताओं के बीच जेफरन बुदनी के उसी निराकार रूप के पुजारी थे। इसलिये जब बुदनी कुई इन्हें पत्नी के रूप में मिल गई तब इनका स्वप्न भंग हुआ। जेफरन को ऐसा लगा जैसे इन्द्रधनुष के ललित रंगों को बटोर कोई बिसाती बेचने बैठ गया हो! यह नहीं कि जेफरन इतने नासमझ थे कि इन्हें इसका अन्दाज न मिला हो कि बुदनी के साथ इनका सम्बन्ध क्रमशः इसी मंजिल पर पहुँचायेगा ही। परन्तु हम कभी-कभी शरीर से नहीं तो मन से अवश्य ही निद्रितावस्था में चलते-फिरते हैं। कभी देखा पर विश्वास नहीं करना चाहते या काम का नियत परिणाम जानते हुए भी आशा में लगे रहते हैं कि शायद कुछ ओर हो जाय। और कभी-कभी जब खर स्रोत एक ओर खींचता है, तूफान दूसरी ओर, और तीर तीसरी तरफ, तब हम भावी पर भरोसा कर जीवन-नौका को उसी पर छोड़ देते हैं, जहाँ ले जाय!

किन्तु बुदनी पर प्रतिक्रिया दूसरी तरह की हुई। वह धीरे-धीरे महसूस करने लग गई कि अब साहब की मरजी पर ही नहीं बल्कि अपने अधिकार पर वह इस बँगले में रहती है। देखते-देखते अलीजान ने भी अपना बर्ताव बदल दिया। अब बुदनी की इज्जत अधिक होने लगी। बुदनी पहले जेफरन की अनुपस्थिति में नौकर-वरों की ओर ही ज्यादा रहा करती थी मगर अब उधर जाती है सिर्फ किसी काम का हुक्म देने के

लिये ही। उसके कपड़े भी बदले। पीतल के झुमके के बदले उसने सोने के झुमके बनवाये। पहले लुक-छिप कर स्प्रिंगदार पलंग पर बैठती तो उसे डर लगता कि कहीं पाताल न पहुँच जायँ, लेकिन अब उसे उत्तम श्रेणी के स्प्रिंग और मध्यम श्रेणी के स्प्रिंग में छूकर ही भेद मालूम होने लग गया है। अलीजान के ऊपर रोब जमाने लगी है और जरा-जरा सी बात में नाराज होती और बेयरा को जंगली कहती है। पहले आइस-क्रीम के लिये अलीजान की खुशामद किये फिरती, मगर अब भेनीला के बदले स्ट्राबेरी आइसक्रीम मिल गयी तो सूँघ कर छोड़ देती है। रेशमी साड़ी पहन अब बरामदे में भी बैठने लगी है और जेफरन साहब सारा फुर्सत का समय इसे अँगरेजी पढ़ाने में बिताते हैं। पहले जिन गीतों को सुन मात जाती थी, अब नोरस कह रेडियो बन्द कर देती है। और जब इस नई बुदनी की पतली साड़ी का आँचल बिजली पंखे के नीचे उड़-उड़ कर लहराता है तब ऐसा लगता है जैसे पुरानी बुदनी को वह कुत्ते की तरह बार-बार दुत्कार रही हो!

शिवदत्त राना को सहायक मैनेजर के पद की तरक्की मिली। अब कारखाने का सम्पूर्ण दायित्व और नियन्त्रण इन्हीं के हाथ आ गया। इनकी अध्यक्षता में सभी कारीगर खुश थे और पूरा मन लगा कर, अपना निजी काम समझ, परिश्रम करने लग गये थे। शिवदत्त काम लेने में कड़े थे किन्तु अपने मातहतों के सुख-दुःख में शामिल रहते जिसके कारण सभी लोग इन पर आन्तरिक श्रद्धा करते। श्रद्धा के पात्र तो शिवदत्त जी पहले ही से थे लेकिन बहुतों के मन में यह आशंका थी कि ऊँचे पद पर पहुँचने से मनसुख दास का कुछ साया इन पर भी न पड़ जाय। इसलिये जब लोगों ने देखा कि उत्थान के साथ इनकी नम्रता में भी गहराई आ गई है तो सभी आश्चर्य और प्रशंसा से भर उठे।

कारखाने के काम के सिलसिले में शिवदत्त जेफरन साहब के बँगले पर अब अक्सर आया करते। जेफरन इनकी पहले से ही इज्जत किया करते थे लेकिन मनसुख दास के माध्यम के कारण साक्षात का अवसर कम होता। अब ज्यों-ज्यों शिवदत्त के गुणों से जेफरन परिचित होते गये

त्यों-त्यों उनके प्रति इनकी श्रद्धा बढ़ती गई। शिवदत्त की साधु-प्रकृति से जेफरन बड़े प्रभावित हुए। इनके अहिंसात्मक गाम्भीर्य में, इनकी अतल सहिष्णुता में जेफरन को प्राचीन भारत की गौरवपूर्ण जाज्वल्य सभ्यता का आभास मिला करता। जेफरन ने भारत सम्बन्धी अनेक पुस्तकें पढ़ी थीं—धर्म की, दर्शन की, इतिहास की। वार्त्तालाप बहुधा इन्हीं क्षेत्रों में चला जाता। शिवदत्त का अध्ययन-क्षेत्र जेफरन की तुलना में बहुत ही सीमित था किन्तु वह स्थित-प्रज्ञता जो आचरण से उपलब्ध होती है शिवदत्त में सहज-सिद्ध थी। इनके उच्च विचार जेफरन बड़े ध्यान से सुना करते और कभी-कभी जब अधिक प्रभावित हो जाते तब बुदनी को समझाने लगते। बुदनी भी श्रद्धा से सुना करती, जो कुछ भी उसकी समझ में आता रहा हो।

एक दिन जब जेफरन इन दोनों को बरामदे में बैठे छोड़ गोसल करने चले गये तब बुदनी ने पूछा—राना जी, आपके घर में और कोई नहीं है क्या ?

शिवदत्त ने उत्तर दिया—है क्यों नहीं ? बूढ़ी स्त्री है और एक लड़की।

—लड़की कितनी बड़ी है ?

शिवदत्त ने ठंढी साँस लेकर कहा—बड़ी हो गई है। व्याह की चिन्ता में हूँ।

—क्या नाम है ?

—मनोरमा।

—बेटी को देखने की इच्छा नहीं होती ?

शिवदत्त अधीर ममता के स्वर में बोले—होती क्यों नहीं ?

—लेकिन आप तो यहाँ रहते हैं !

शिवदत्त की जैसे सोई पीड़ा जग गई—सब काम मनुष्य अपने मन का तो नहीं करने पाता। लाचार होकर ही घर से निकला और इन वनों में परिवार से अलग रह रहा हूँ।

फिर सत्वर एक आनन्द-ज्योति उनके नेत्रों में खेल गई। गंभीर

सुखद तुष्टि के स्वर में बोले—परन्तु ईश्वर दयालु और महान है। मुझे यहाँ लाकर जो उसने आत्मिक धन दिया वह शहर में नहीं मिल सकता था।

बुदनी ने बच्चों की उत्सुकता से पूछा—क्या दिया?

शिवदत्त की दृष्टि सम्मुख से खिच कर सुदूर से लिप्त हो गई। बोले—सब कुछ। वह धन जो मनुष्य-जीवन की अजर अमर सम्पत्ति है। वन-कानन का यह आध्यात्मिक शिक्षालय जिसने हमारे ऋषियों को ज्ञान की उपलब्धि दी, वेद-मन्त्रों के गुंजन में रत ये रमणीय निर्झर, आत्मा को पुष्टि देने वाली यह पावन शान्ति, स्थानीय सच्चे सरल श्रेष्ठ वन-वासी जिन पर परमेश्वर का प्रतिबिम्ब अमिट है.....

सहसा शिवदत्त को याद आया कि संस्कृत-गर्भित ये वाक्य बुदनी की समझ में बिलकुल न आते होंगे, और वे चुप हो गये। बुदनी समझ तो कम ही रही थी किन्तु सम्पूर्ण श्रद्धा से आँख उठाये शिवदत्त को देख रही थी। शिवदत्त के अन्तिम वाक्य से बुदनी को आभास मिला कि ये उसकी बड़ाई कर रहे हैं। इस पर वह आनन्द से खिलखिला कर हँस पड़ी।

एक क्षण के बाद उसने फिर पूछा—तो आप की बेटी आपके पास आने की जिद नहीं करती?

शिवदत्त मुस्कुरा कर रह गये।

बुदनी भी मुस्कुराई और चेतावनी के स्वर में बोली—मैं आपकी बेटी होती तो कभी न छोड़ती। आप जहाँ कहीं जाते मैं भी साथ जाती। बेचारी!

कई क्षण की निस्तब्धता के पश्चात् बुदनी ने पूछा—अच्छा आप घर जाते हैं तो आपकी बेटी मनोरमा क्या क्या करती है?

परोक्ष सुख का मानसिक उपभोग करते हुए शिवदत्त ने उत्तर दिया—बड़ी प्रसन्न होती है। पहले पैर छूकर प्रणाम करती है, फिर पंखा झलती है, जलपान लाती है....

इतने में जेफरन गोसल से लौट आये और बेटी का कर्तव्य-विवरण वहीं का वहीं रह गया। एक दो दीगर बातों के बाद ह्विस्की आई, कुछ

सैंडविच आये, और सोडा की बोतल। शिवदत्त को चुटकी लेते हुए जेफरन ने कहा---आप तो कुछ खाते-पीते नहीं, शरीर में ताकत कहाँ से आयेगी? और आप सरीखे कमजोर सिपाहियों को लेकर भगवान ही अपने धर्म की लड़ाई में कैसे फतह पायेंगे!

शिवदत्त ने हाथ जोड़ कर हँसते हुए कहा--सब आपकी कृपा है।

दो-चार मिनट के बाद शिवदत्त ने विदा ली। जाने के लिये ज्यों ही खड़े हुए कि बुदनी ने झट झुक कर उनके पैर छुए और प्रणाम किया। शिवदत्त आश्चर्य से मौन रह गये। जेफरन हक्का-बक्का हो ताकते रहे।

शिवदत्त के चले जाने पर जेफरन ने पूछा--यह क्या बुदनी? यह कहाँ सीखा?

उत्फुल्ल बुदनी ने उल्लसित हो उत्तर दिया--राना जी की बेटी इसी तरह इन्हें प्रणाम करती है!

१८

जब से शिवदत्त के हाथ में कारखाने का पूरा भार मिला तब से इसमें जान आ गई। जिस तरह देश के स्वाधीन होने पर हर व्यक्ति उसे उत्साह-पूर्ण आवेग से अपना निजी देश समझने लगता है उसी तरह कारखाने में कर्मचारियों ने अब नई दृष्टि डाली। सभी का अपना-अपना काम बँट गया, सभी के दायित्व-ज्ञान में जैसे नया सोता फूट निकला और अपनी-अपनी जिम्मेवारी के दायरे में हर आदमी स्वाधीन हो गया। उस पर न घड़ी-घड़ी का नियन्त्रण रह गया, न खोज-पूछ, और न गर्दन-पकड़। प्रत्येक कर्मचारी को रात-दिन यही चिन्ता रहने लगी कि कैसे मैं अच्छा से अच्छा और अधिक से अधिक काम कर दिखाऊँ। शिवदत्त के आदर्शों के अनुसरण के लिये कारखाने में स्वार्थ-हीन होड़-सी मच गई। देखते ही देखते कारखाने का रंग कुछ से कुछ हो गया। पहले जहाँ कर्मचारियों का अपना काम भार था, जहाँ आठ घन्टे की मियाद पैर में बेड़ी और

सर पर पहाड़ बनी रहती थी, वहाँ अब अपने मन से लोग अधिक काम करने लगे और जब शाम को घर लौटते तो हँसी-खुशी के साथ और हृदय का वह अवर्णनीय भाव लिये जाते जैसे प्रिय संगी से बिछुड़ कर आ रहे हों!

अपने आचरण तथा सद्व्यवहार द्वारा कारखाने में आदर्श अराजकता स्थापित कर शिवदत्त प्रस्तुत की जा रही चीजों की बिक्री की व्यवस्था को पुष्ट करने में लग गये। उन्होंने आढ़तें बढ़ाई और कई शहरों में कम्पनी की निजी दूकानें भी खोली गई। इनकी योजना यह थी कि पहले बिहार राज्य के अन्दर, फिर हो सके तो बाहर भी, हर एक शहर और प्रमुख गाँवों में भी कम्पनी की अपनी दूकानें रहें जहाँ लकड़ी की आम जरूरत की चीजें सस्ते दाम में जनता को मिला करें। एक बार वे वैद्यनाथ धाम तीर्थ करने गये थे तो रास्ते में किसी गाँव में टिकना पड़ा था। वहाँ देखा कि बर, गूलर, इत्यादि की नरम लकड़ी से लोग हल बनाकर खेत जोत रहे हैं। ऐसे कमजोर लचीले हलों से कड़ी मिट्टी कहाँ तक जुत सकेगी? यह गाँव जंगल से दूर था। वे जानते थे कि जंगल में कितनी लकड़ी बरबाद जाया करती है, सोचने लगे कि यदि उसी के हल बना कर इन गाँवों में भेजा जाय तो जनता की भलाई हो, राष्ट्र-धन का अपव्यय न हो, और जो कारबार खड़ा हो उसमें बेकारों को रोजगार मिले तथा व्यवसायी को मुनाफा भी हो। एक ओर अच्छी लकड़ी फेंकी पड़ी रहे और दूसरी ओर जनता को उसी के अभाव से कष्ट हो यह शिवदत्त के सहे न सहा गया। लेकिन शिवदत्त तो एक कम्पनी के कर्त्ता मात्र थे, उनका सब काम कम्पनी के आर्थिक लाभ-हानि पर ही निश्चित होना था। केवल जन-कल्याण के ही दृष्टिकोण से उन्हें कुछ भी करने का अधिकार न था। फिर भी अपना जहाँ तक सामर्थ्य चलता वहाँ तक, कम्पनी के लाभ के अन्तर्गत, वे जन-कल्याण के लिये आतुर रहा करते। कारखाने में जो चीजें बनती थीं सभी जन-साधारण की आवश्यकता के अनुसार ही। हल, बैलगाड़ी के चक्के, चोखट, किवाड़, ये सब भी बनने लगे और चारों ओर फैली हुई दूकानों में बिकने लगे। चीजों की इतनी माँग थी कि दूकानों में पहुँचते ही तुरत बिक जातीं। जब दूकानें शहर-शहर और कई गाँवों में भी फैल

गई तब कारखाने को भी बढ़ाना पड़ा। अधिक कर्मचारी नियुक्त हुए नये नये औजार लाये गये, अधिक सामान प्रस्तुत होने लग गये।

शिवदत्त ने एक ऐसा भी उपाय सोच निकाला जिससे घर-घर छोटा-मोटा कारखाना खुल जाय। अपने कारखाने में वे आदिवासी लड़कों को प्रशिक्षण देने लगे। ये लड़के काम सीखते और रोजाना कुछ मजदूरी भी पाते। तीन-चार महीने में जब वे साधारण चीजें बनाना सीख जाते तब कम्पनी की ओर से हर एक को चालीस-पचास रुपयों के औजार मुफ्त देकर बिदा कर दिया जाता था। तब से ये प्रशिक्षित युवक अपने ही घरों में काठ-सामग्री तैयार करने लग जाते। वन-विभाग से परमिट लेकर ये लोग जंगल से लकड़ी लाते, अधिकतर वही गिरी पड़ी लकड़ी जो ठीकेदार जंगलों में ही छोड़ जाते हैं इसलिये कि स्टेशन या बाजार ढो ले जाने में पोसाई नहीं पड़ती। इस तरीके राष्ट्र-सम्पत्ति के सदुपयोग में भी सहायता हुई। प्रस्तुत की गई सामग्री आस-पास के हाटों में बिका करती। शिवदत्त ने घोषित कर रखा था कि जिस किसी को कोई चीज बेचने में दिक्कत हो वह उसे कारखाने में दे जाय और अपना दाम ले जाय। इस जानकारी से कि जो कुछ भी बनाया जाय हाथों हाथ बिक जायेगा और एक दिन भी घर में पड़ा न रहेगा, चारों ओर उत्साह बढ़ गया और घर-घर जोश के साथ काठ की चीजें तैयार होने लगीं। बहुत से लोगों का पहले से ही लकड़ी के सामान बनाने और बेचने का पेशा था, जैसे लकड़ी की थाली, कटोरा, कठौत, कंघी, चुनौटी, खेलौना, बहँगी, खाट के पावा-पाटी, नहाने या पूजा-पाठ की चौकी, कपड़ा टाँगने की खूँटी, इत्यादि। इन कारीगरों के रास्ते में एक यही अड़चन रहा करती कि बेचने के लिये इन्हें गरजी समझ लोग सस्ते दाम खरीद लेना चाहते थे। चीजें न बिकीं तो फिर ढोकर घर लाओ। जब तक ये न बिकें तब तक और सामान तैयार करने का उत्साह नहीं होता था। लेकिन जब से शिवदत्त ने एलान किया कि लकड़ी का कोई सामान कहीं भी तैयार हो, बिकने की दिक्कत होने पर कारीगर उनके कारखाने में दे जायँ और बाजार दर नगद ले जायँ, तब से तमाम कारीगर रात-दिन काम में लिपटे रहने लगे। ये चीजें

कम्पनी की दूकानों में जहाँ-तहाँ चली जातीं और शहरों में लोग शौक से अच्छे दाम में इन्हें खरीदते। कारीगर भी पहले से अधिक दाम पाने लगे क्योंकि कम्पनी का उसूल था कि कम से कम मुनाफा लिया जाय और जहाँ तक गुंजाइश हो कारीगर ही लाभ का अधिकांश पायें।

धीरे-धीरे कम्पनी ने अपने कारबार का दायरा बढ़ाया। अब लकड़ी की चीजों के अलावा दीगर वन-पदार्थों से बने सामान भी खरीदे जाने लगे और शहरों में बिकने लगे, जैसे चोप की रस्सी, जड़ी-बूटी, त्रिफला, बाँस की बनी डलिया, चटाई, इत्यादि। वन के रमते लोगों में बिरहोर एक जन-जाति है। इनका मुख्य काम है खास-खास लताओं की छाल से रस्सी बनाना—पतली रस्सी, मोटा रस्सा, तरह-तरह के काम की डोरी। इन लताओं के काटने से वन का भी उपकार होता है और वन-विभाग को इन्हें काटने में हर साल काफी खर्च करना पड़ता है। लेकिन बिरहोरों के मार्ग में भी वही रोड़ा था—बेचने की दिक्कत। शिवदत्त ने इन लोगों को भी खबर दी कि बनी रस्सी कारखाने में दे जाओ और दाम ले लो। अब बड़े पैमाने पर रस्सी बनने लगी और शहरों में इसकी इतनी माँग बढ़ी कि माल जुटाना मुश्किल हो गया, क्योंकि नारियल की रस्सी से चोप की रस्सी अधिक मजबूत और मुलायम होती है। बिरहोर जो रस्सी न बिकने पर खाने की तकलीफ से चोरी भी किया करते थे, अब हमेशा उद्यमशील रहने लगे। इन्हें चोरी करने का न समय ही रहा, न आवश्यकता रही। इलाके में चोरी बन्द-सी हो गई।

जड़ी-बूटियों को तो वन खान ही है। आदिवासीगण अपनी चिकित्सा इन्हीं वन औषधियों से करते हैं। कई वन-पदार्थ एलोपैथी (अँगरेजी दवा) में भी लगते हैं, जैसे कुरची, लोध छाल, पैसार का गोंद, अनन्तमूल, चिरैता, कालमेघ, त्रिफला, रावलफिया, इत्यादि। लेकिन दवा के जितने पदार्थ वनों में मिलते हैं उनका एक छोटा अंश भी काम में नहीं लगाया जाता। उधर दवा महँगी बिकती है, इधर ये उपकरण नुकसान होते रहते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि दवा बनाने के कारखानों को सुविधा से जड़ी-बूटी मिलती नहीं और इस ओर पहचान कर भेजने वाला

भी कोई नहीं। कुछ माल मिला भी तो उसकी शुद्धता के विषय में शंका बनी रहती है। इसलिये शिवदत्त ने कम्पनी की मंजूरी लेकर एक निपुण वैद्य मुकर्रर किया। इनका काम था जड़ी-बुटियों को पहचान-पहचान कर इकट्ठा करवाना और दूर-दूर तक गाँवों में इनकी परख की शिक्षा देना। अब बड़ी मात्रा में औषधि-पदार्थ कारखाने में आने लगा। औषधालयों के साथ भी कम्पनी ने बन्दोबस्त कर लिया कि जैसे-जैसे माल इकट्ठा होता जायेगा वैसे ही निश्चित औषधालयों को चालान होता रहे और कम्पनी को निर्धारित दर पर उसका दाम समय-समय पर मिलता रहे। त्रिफला, (आँवला, हर्रा, बहेरा) तथा अन्य जड़ी-बूटियों का जमा करना ऐसा काम है कि इसमें मर्द, औरत, बूढ़े, बच्चे, सभी लग सकते हैं। चरवाहे मवेशी चराने जंगल में गये तो कुछ इकट्ठा कर लाये। मजदूर जंगल में काम करने गये तो अवकाश के समय या जाते-लौटते थोड़ा-बहुत जमा कर लाये। बूढ़ी गरीब औरतें भी नजदीक के जंगलों से कुछ एकत्र कर थोड़ा-बहुत पैसा कमा ले सकती थीं। बच्चे भी यह काम कर सकते थे। इस तरह शिवदत्त की योजना से बेरोजगारी उन अंचलों में बिलकुल मिट गई। हर आदमी के लिये हर समय इस योजना में कोई न कोई रोजगार का रास्ता खुला हुआ था। इन इलाकों की जनता खुशहाल हो गई। साथ ही साथ नैतिक स्तर भी ऊँचा होता गया, क्योंकि बेरोजगारी ही कुबुद्धि और अधर्म की जड़ है। शिवदत्त सोचते, जिस दिन देश के सब आदमी काम में लग जायेंगे—किसी तरह के काम में भी, बालू जोतने में ही सही—उसी दिन से देश का नैतिक उत्थान होने लगेगा। गांधी जी का चरखा इसी उद्देश्य की पूर्त्ति करता था—कुछ रोजी का भी सामान हो जाय, और शान्ति-प्रदायक कार्य में नर-नारी सभी संलग्न रहें ताकि झगड़ा, एक दूसरे की शिकायत, ईर्ष्या, दूसरे की हाँड़ी के भात की तलाश, इन सभी आलस्य-जात दुर्व्यसनों से जनता का परित्राण हो। शिवदत्त द्वारा आयोजित ये विविध प्रकार के वन-उद्योग गांधी जी के चरखा-उद्योग की श्रेणी के ही थे—इनसे भी रोजगार मिलता था, आलस्य का ह्रास होता था, और वन के शान्त वातावरण में चित्त-वृत्ति ऊर्द्धवगामी होती

थी। शिवदत्त का नाम गाँव-गाँव में कर्ण-प्रिय हो गया और विस्तृत क्षेत्र में जनता का बहुमुखी उत्थान होने लगा। वन-हीन अंचलों में भी, जहाँ पहले जंगल के नाम पर बाघ और ममेरिया दो ही के चित्र जन-साधारण के सामने आ खड़े होते, अब लोग अपने राष्ट्र की वन-सम्पत्ति का लाभ समझने लगे और उनमें वन-रक्षा की सद्भावना जाग्रत होने लगी। शिवदत्त को प्रमाण मिला कि किसी भी वस्तु का प्रचार करना हो तो उसके प्रत्यक्ष लाभ को जनता के सामने रखना होगा। जिस तरह निराकार ब्रह्म के ज्ञान-प्रसार में भी साकार मूर्त्ति की आवश्यकता होती है, उसी तरह वन-रक्षा-धर्म के प्रचार में वन-पदार्थों द्वारा जनता की सक्रिय सेवा अनिवार्य है।

जब उपस्कर तथा गृहस्थी के समान जोरों से बनने लगे और प्रदेश-विकीर्ण दूकानों से बिकने लगे तब शिवदत्त ने देखा कि यदि एक काम के लिये एक ही जाति की लकड़ी का इस्तेमाल हमेशा बना रहे, जैसा सनातन काल से चला आता है, तब तो चुनिन्दे काठों की कमी पड़ जायेगी और सैकड़ों तरह की दोगर लकड़ी बेकाम रह जायेगी। इस समस्या के समाधान के लिये वे देहरादून गये। वहाँ वन-शोध-प्रतिष्ठान में उन्होंने विविध जाति के काठों का नया-नया उपयोग देखा। सबसे बड़ी शिक्षा उन्हें यह मिली कि लकड़ी को यदि समुचित रूप से सुखा लिया जाय और विनाशकारी कीड़ों से बचाने के लिये उपयुक्त रसायन उसके रेशों में पिला दिया जाय तो आज जो लकड़ी बेकार जा रही है वह कल अच्छे-अच्छे कामों में लग सकती है। कच्ची लकड़ी को सुखाकर पक्का करने के दो खास तरीके हैं—एक हवा और प्राकृतिक गरमी के सहारे, दूसरा भट्ठे में वाष्प और ताप के नियन्त्रण द्वारा। पहले तरीके में लकड़ी को चीर कर खुली छावनी में इस तरह ढेर किया जाता है कि दो तख्तों या शहतीरों के बीच हवा स्वच्छन्द रूप से आती-जाती रहे। धीरे-धीरे लकड़ी सूखती जाती है। लेकिन इस तरीके का दोष यह है कि समय बहुत लगता है फिर भी सोलह आने निश्चय नहीं कि लकड़ी पूरी तरह सूख कर पक्की हो गई और अब फटेगी नहीं और न टेढ़ी होगी। लकड़ी की कई जातियाँ ऐसी हैं जो वर्षों बाद भी इस्तेमाल करने पर फट जाती हैं इन्हीं सब कारणों

से देहरादून के भट्टे द्वारा लकड़ी सुखाने का अनुसन्धान हुआ। अब चन्द घंटों के भीतर ही कोई भी लकड़ी हो सूख कर पक्की हो जाती है और टेबुल, कुरसी इत्यादि बनाने में फटती नहीं। भट्ठा भाप द्वारा गरम रहता है। उसी में एक-एक जाति की चिरी हुई लकड़ी बारी-बारी से साज कर रखी जाती है। हर जाति की लकड़ी के लिये निर्धारित किया हुआ है कि किस मात्रा के वाष्प और ताप में कितने समय तक रखने पर वह सूख कर पक्की हो जायेगी। कठिन से कठिन लकड़ी भी भट्ठे में सूख जाने पर फिर फटने की नहीं और निःशंक उसका उपस्कर बनाने में इस्तेमाल किया जा सकता है। शिवदत्त इसी तरह का एक भट्ठा कम्पनी के काम के लिये खरीद लाये। इसके द्वारा पकाई लकड़ी से जब सामान बनने लगे तब कम्पनी का नाम और भी बढ़ा क्योंकि एक तो चीजें अधिक पक्की होने लगीं और दूसरे दीगर जातियों की लकड़ी के इस्तेमाल से दाम भी कम हो गया। एक और लाभ यह हुआ कि अब ज्यादा रफ्तार से सामान तैयार होने लगे क्योंकि कच्ची लकड़ी को सुखाने में दिन के बदले घंटे ही लगते और नई-नई जाति की लकड़ी भी काम में आने लगी।

शिवदत्त सबसे अधिक प्रभावित हुए लकड़ी के रसायनी शोध से। लकड़ी जल्द सड़-गल जाती है केवल इसी कारण कि उसमें काठ खाने वाले कीड़े लग जाते हैं। सखुआ की लकड़ी सख्त होती है लेकिन इसके भी खंभे या खूँटे बनाकर गाड़िये —मकान या मचान बनाने के लिये या हाते को घेरने के लिये—तो एक दो वर्षों के अन्दर ही दीमक खाने लगती है, घुन लग जाते हैं, और चार-पाँच साल में इन्हें बदलना पड़ता है। यदि नरम लकड़ी के खंभे या खूँटे हों तब तो और भी जल्दी कीड़े इन्हें चट कर जायँ। देहरादून में अनुसन्धान द्वारा ऐस्क्यू नामक एक रसायन आविष्कृत हुआ। इसका गुण यह है कि यदि लकड़ी के रेशों में इसे पिला दिया जाय तो कीड़े लकड़ी को छू तक नहीं सकते। उनके लिये यह विष है। फिर तो नरम से नरम लकड़ी के खंभे या खूँटे आप गाड़ दें, बीस-पच्चीस साल तक इनका कुछ नहीं होने का। घर गृहस्थी के सामान बनायें, ये भी सड़े गलेंगे नहीं। शिवदत्त इस रसायन-प्रक्रिया के पूरे

उपकरण खरीद लाये। अब वह लकड़ी भी जिसे नितान्त निकम्मी समझ पहले फेक दिया जाता था, काम में आने लगी। उसे भट्टे में सुखाकर रेशों में मशीन द्वारा ऐस्क्यू पिला दिया जाता था और तब उन कामों में लगाया जाता था जिनके लिये सखुआ, पैसार, गम्हार इत्यादि कीमती काठ ही पहले लगते थे। इसके द्वारा दाम में पूरी किफायत हो गई और हमारे राष्ट्र की वन-सम्पत्ति भविष्य की बढ़ती आवश्यकताओं के लिये संरक्षित रह गई।

शिवदत्त शहरों में मकान की कमी देखकर द्रवित हो जाते। उद्वासित जनों की तकलीफ से वे विशेष मर्माहत हुए थे। वे सभी से कहा करते कि यदि सिमेंट और लोहे की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ रख कर हम बैठे रहें तो अनन्त काल तक बैठे रहना पड़ेगा क्यों कि देश के लिये जितना लोहा और जितना सिमेंट चाहिये उतना बनने में अभी कई दशाब्दियों की देर है। उन्होंने सरकार के पास कम्पनी की ओर से सुझाव भेजा कि उद्वासित परिवारों के लिये और आम तौर पर नये दफ्तरों और मुलाजिमों के रहने के लिये भी लकड़ी-बाँस से खूब सस्ते दाम पर जितने भी मकान चाहिये वे बना देने को तैयार हैं—और इस गारेंटी के साथ कि कम से कम बीस-पच्चीस वर्षों तक ये मकान अच्छी तरह टिकेंगे। सरकार इस प्रस्ताव पर राजी हो गई। कम्पनी ने काम हाथ में लिया। वे समस्त काठ इकट्ठा किये गये जो किसी भी काम में नहीं आते थे और जंगल में ही बरबाद हो जाते थे। उसमें एस्क्यू पिला कर शहर पहुँचाया गया। बाँस को भी एस्क्यू से पक्का किया गया। बाँस की मोटी-मोटी चटाई बनी और इनमें भी एस्क्यू पिलाया गया। इन्हीं सामानों से मकान तैयार होने लगे। बल्ले नजदीक-नजदीक गाड़ दिये जाते थे और उनके बीच मोटी चटाई जड़ दी जाती थी। फिर बालू, काठ की भूसी और थोड़ा सिमेंट मिला कर लेप दिया जाता था। उसके ऊपर चूना पुताई। खासी दीवार बन जाती थी। बाहर से कोई न कह सकता था कि ईंटे-पत्थर की दीवार नहीं है। छप्पर भी बल्ले, बाँस और चटाई से बना कर खपड़े से छाया जाता था। किवाड़, खिड़की, चौखट, सभी उन्हीं निकम्मे पेड़ों की लकड़ी से

बनते थे—हाँ सभी लकड़ियों को पहले भट्ठी में सुखाकर पक्का कर लेना और उनमें ऐस्क्यू पिलाना आवश्यक था। कम से कम बीस-पच्चीस वर्षों तक दीमक, घुन, इत्यादि कुछ भी लकड़ी, बाँस या चटाई में नहीं लगने के और मकान किसी तरह खराब होने का नहीं। बड़ी संख्या में सस्ते, सुन्दर मकान बनने लगे और कुछ ही दिनों में निवास की समस्या हल हो गई। कम्पनी की बड़ी प्रशंसा हुई और शिवदत्त का नाम घर-घर फैल गया। शिवदत्त कहा करते, इसी तरह के स्वच्छ सादे कुटीर बड़े अफसरों और उच्च कार्यालयों के लिये भी बनने चाहियें। गौरव निहित है चरित्र और कर्म की महानता में अथवा महलों की विशालता में? ऊँचे घर में नीचा विचार या नीचे घर में ऊँचा विचार—कौन श्लाघनीय है?

१९

बसन्ती राम अब शिवदत्त की जगह पर सुपरवाइजर हो गये थे। इनकी अवस्था सर्द देश के उस पथिक की थी जो पड़ती बर्फ में दबा, सिकुड़ा, कोसता, सिर झुकाये किसी तरह अब तक बढ़ता आया हो लेकिन बर्फ रुकते ही बदन झाड़, सर उठा, आत्मशक्ति की आँखों से चारों ओर देखे। पहले उन्हें ऐसा लगता था जैसे कारखाना उनसे काम करवा रहा हो, यह नहीं कि वे स्वयं काम कर रहे हों। अपना काम भी बेगाना था। लेकिन अब उनके परिवर्तित मनोभाव में अपना निजी काम ही नहीं बल्कि कारखाने के सभी कर्मचारियों का काम, यहाँ तक कि मशीन और औजारों का काम भी, इनका अपना काम और दायित्व हो गया। इनकी दबी शक्ति का ढक्कन खुल गया था। पहले वह अधीर शक्ति ढक्कन को हिला-डुला कर ही छोड़ देती और मनसुखदास की ओर विष्फोट का निशान लगाये निष्फल क्रोध से उछालती-गिराती रहती। शक्ति के इस नियंत्रण में शिवदत्त का ही हाथ था। वे शक्ति को विष्फोट रूप न देकर रचनात्मक कार्य में ही लगाना चाहते थे। विष्फोट पत्थर तोड़ कर रास्ता-

घाट बनाने के काम में भले ही लाया जाय किन्तु क्रोध अथवा प्रतिशोध के आवेश में किसी का सर तोड़ना या लाभ का हिसाब लगा कर हिंसा करना इसे शिवदत्त कभी अनुमोदित नहीं कर सकते थे। इसी कारण जब मनसुख दास के कुव्यवहारों से ऊबकर बसन्ती राम अपना पगहा तुड़ाने लगते तब शिवदत्त ही उन्हें संभालते। शिवदत्त के लिये बसन्ती राम वैसे ही थे जैसे रामचन्द्र जी के लिये हनुमान—दवा न ढूंढ़ सके तो सुमेरु पर्वत ही उठा लाये! जब से बसन्ती ने देखा कि शिवदत्त जी पर कारखाने का पूरा दायित्व आ पड़ा है तब से उन्होंने कारखाने को अपना अंग बना लिया। शिवदत्त को वे कहा करते—आप हुक्म भर दे दें, मैं सब कुछ करा लूंगा। आप बाहर का काम देखें।

एक दिन जेफरन कारखाना देखने गये। मनसुख दास के समय में कारखाना जितना बड़ा था उससे कई गुना अधिक अब फैल गया था। पहले तो यह कुटीर-उद्योग के पैमाने पर ही खड़ा हुआ था और असिस्टेन्ट मैनेजर मनसुख दास इसे उसी तरह दुहने में लगे रहते जैसे कलकत्ते के ग्वाले गाय को। कारखाना क्या था, इनके स्वार्थ-साधन का एक हीला मात्र था। जेफरन कारखाने का विकास चाहते हुए भी कई दृश्य-अदृश्य कारणों से मनसुख दास की कार्रवाइयों में हस्तक्षेप न करते। जेफरन साहब जब मुआयना करने आते तो देखते कि उत्साह-हीन कर्मचारीगण काम न कर, काम का बहाना कर रहे हैं और दीन, दलित, हिंसात्मक दृष्टि से मनसुख को ताक रहे हैं। स्वयं जेफरन के प्रति कर्मचारियों की आँखों में दुःख, दया और क्षमा थी। लेकिन अब किसी को ताकने की फुर्सत ही न थी, सभी कारीगर जी-जान से काम में भिड़े हुए थे। एक कर्मचारी के दाहिने हाथ में लकड़ी देकर पट्टी बाँधी हुई थी, फिर भी वह चेहरे पर दर्द को दबाये बायें हाथ से अपनी मशीन चला रहा था। जेफरन ने पूछा—क्या हुआ है हाथ में?

कारीगर काम में इतना गर्क था कि जेफरन के आने की आहट तक उसे न मिली थी। आवाज सुन चकरा कर उसने इधर देखा और पूछा—

हैं? क्या हुआ?

फिर एक क्षण के बाद परिस्थिति का ज्ञान होने पर वह मुस्कुरा कर बोला—ओ! सलाम साहब। प्रणाम राना जी।

जेफरन ने फिर पूछा—क्या हुआ है हाथ में?

कारीगर—हाथ में? कुछ नहीं, कल जरा हड्डी टूट गई मशीन में लग कर। डाक्टर ने बाँध दिया है, और कहा है कि दस-पन्दरह दिन आराम करो।

—तो आराम क्यों नहीं करते?

कारीगर चुप था।

जेफरन ने पुनः प्रश्न किया—तुम्हें मालूम है या नहीं कि ऐसी हालत में कम्पनी पूरे तलब पर छुट्टी देती है?

—मालूम है।

—तब क्यों नहीं छुट्टी लेकर आराम करते? तुम्हारा क्या घाटा होता है?

कर्मचारी ने गंभीरता से उत्तर दिया—कम्पनी के काम का तो हर्ज हो ही जायेगा!

कारखाने के बाहर कच्ची लकड़ी को भाप द्वारा सुखाने और पोल्ता करने का भट्ठा नया खड़ा किया गया था और कुछ दूर पर रेशों में ऐस्क्यू रसायन पिलाने की मशीन थी। दोनों जगह उसी एकाग्रता और कर्त्तव्य-प्रेम से काम हो रहा था। हर तरह की लकड़ियों का ढेर लगा हुआ था। एक आदमी का हाथ भट्ठा में जल गया था, फिर भी वह काम से हटता न था। जेफरन यह उत्साह देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने सुना कि रात को शिवदत्त के यहाँ पहले की तरह ही कर्मचारियों की बैठक होती है लेकिन अब वार्त्तालाप का विषय केवल यही रहता है कि आज किसने कितना और कैसा काम किया, किसका क्या नया अनुभव हुआ और किस प्रकार से बहुमुखी उन्नति की ओर और आगे बढ़ा जा सकता है। शिवदत्त प्रसन्न-चित्त यथा-योग्य प्रशंसा करते और कौशल से इन जोशीले नव-जाग्रत कर्मचारियों की रगों में रसायन की तरह कर्त्तव्य-प्रेम और देश-प्रेम पिलाया करते। कर्मचारीगण अब महसूस करने लगे कि असली सुख अपने काम में

मन लगाने में है, चाहे जैसा भी अपना काम मिला हुआ हो, न कि स्वार्थ की होड़में। शिवदत्त जी समझाया करते सुख या दु:ख चित्त की परिस्थि तिपर निर्भर करता है, वाह्य परिस्थिति पर नहीं। दैहिक सुख की कितनी भी सामग्री इकट्ठी की जाय, शरीर का जितने भी यत्न से लालन-पालन क्यों न किया जाय, खाने, पहनने, रहने का उत्तम से उत्तम प्रबन्ध क्यों न हो, किन्तु चित्त में यदि अशान्ति है, किसी निर्दोष को सताने को याद आ रही है अथवा छिप कर की गई बेईमानी की तस्वीर मन में उठ खड़ी होती है, तो नींद तक न आयेगी और आत्मा यन्त्रणा से व्याकुल रहेगी। शिवदत्त सर्वदा यही सिखलाया करते कि निस्स्वार्थ कर्म ही योग है, धर्म है, सर्व सुखों का श्रोत है।

कम्पनी का लाभ उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जेफरन को और उनके सहकारियों को प्रशंसा-पत्र आने लगे। जेफरन को परिस्थिति के विश्लेषण से यह निष्कर्ष मिला कि शिवदत्त की ओर भक्ति-भाव से प्रेरित होकर ही सभी कर्मचारियों ने कम्पनी के हित में अपना देह-मन उत्सर्ग कर दिया है। इन्हें इसकी चिन्ता नहीं कि इनका पसीना रुपया बन कर कम्पनी का खजाना भर रहा है, पर इनके वेतन में एक पैसे की वृद्धि नहीं हुई। मनुष्य की सारी शक्तियों को उभार कर काम में लगाने के लिये किसी प्रेरणा की आवश्यकता होती है—वह प्रेरणा चाहे भक्ति की हो, चाहे देश-प्रेम या नारी-प्रेम की, कर्त्तव्य या सत्य-सेवा की, अथवा अर्थ-लाभ की ही। व्यवसाय-कुशल जेफरन ने सोचकर देखा कि शिवदत्त के व्यक्तित्व की प्रेरणा अस्थायी वस्तु है, शिवदत्त किसी कारणवश कम्पनी में न रहें तो प्रेरणा भी चली जायेगी। वे कुछ ऐसी योजना को सक्रिय रूप देना चाहते थे जिसके द्वारा वह जोश, वह वर्त्तमान उत्साह, अपनी धारा को सर्वदा अक्षुण्ण रख सके। यही सब सोच कर उन्होंने कम्पनी को सुझाव दिया कि मुनाफे का एक हिस्सा कर्मचारियों में भी बाँटा जाय, लेकिन नगद न देकर हर आदमी के हिस्से के रुपये से कम्पनी के शेयर-कागज खरीद दिये जायँ। प्रति वर्ष यदि ऐसा किया जाय और इस तरह का मुनाफा कम्पनी को मिलता रहे, तो यथा समय ये कर्मचारी ही कम्पनी के पूरे मालिक बन

जायेंगे। प्रबन्धकर्त्ता और निर्देशक तो जैसे थे तैसे रह जायेंगे, वे अपना कमीशन लेते रहेंगे, फर्क यह होगा कि जितना भी लाभ हो, पूँजी-पतियों के बीच न बँट कर कम्पनी के कर्मचारियों को ही मिला करेगा। सभी कर्मचारी कम्पनी को अपनी निजी सम्पत्ति समझेंगे और यह प्रेरणा स्थायी रूप से इनकी योग्यता और कार्य-कुशलता की उन्नति में नियोजित किये रहेगी।

कम्पनी ने भी ऐसा ही किया। सभी कर्मचारी कम्पनी के मूल-धन और अधिकारों में कम या बेशी के साझेदार हो गये। अब वे मजदूर से मालिक बनने लगे। शिवदत्त को सबसे अधिक साझा मिला, बसन्ती को उनसे कम, और इसी अनुपात में और और कर्मचारियों को। किन्तु पता किसी को भी न था। जेफरन ने गुप्त रूप से सारी काररवाई की थी। न किसी से पूछा था, न किसी की सलाह ली थी, न किसी को जानने तक दिया था कि वे कम्पनी के साथ क्या-क्या लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। जब सब कुछ हो गया और शेयर के कागज भी व्यक्तिगत नामों में खरीद कर आ गये तब जेफरन ने एक सभा बुलाई। कम्पनी की ओर से कर्मचारियों की सभा पहले कभी नहीं बुलाई गई थी। लोगों के मन में सन्देह पैदा हुआ, कर्म-उत्साह में क्षणिक गति-रोध भी हुआ।

लोग सोचने लगे, आखिर कम्पनी की मंशा है क्या? अब कौन सा नया षड्यन्त्र खड़ा करने जा रहे हैं? जेफरन के ऊपर सभी का विश्वास आरम्भ से ही था, इनके सद्विचार और साधुता से सभी प्रभावित भी थे, लेकिन जब से मनसुख दास के हथकंडों में ये फँस गये थे तब से वह विश्वास डोल सा गया था। साधुता तो धर्म-ग्रन्थों में भरी पड़ी है, जब तक वह सक्रिय न हो तब तक किसके काम की? जेफरन की कमजोरियों के कारण कर्मचारी-समुदाय उन पर अविश्वास और दया करने लग गया था। हाँ, जब से मनसुख दास निकाले गये और शिवदत्त के सहायक मैनेजर होने के बाद जेफरन ने आदर तथा सहयोग के साथ कारखाने का प्रबन्ध सम्पूर्ण रूप से इन्हीं पर छोड़ दिया तब से लोगों की पूर्व सद्भावना जेफरन की ओर फिर लौटने लगी थी। पहले की कमजोरियाँ दरियादिली से

माफ कर दी गई—आखिर आदमी ही तो है, जब देवगण भी रूप-छलना के जाल से न निकल सके तो जेफरन को ही क्या दोष दिया जाय? फिर इस आदमी ने आखिर आखिर तक अपना चरित्र-बल दिखला कर ही छोड़ा। दिन का भूला शाम को घर लौट आये तो उसे भूला नहीं कहते। मगर अब यह सभा क्या? जरूर कुछ दाल में काला है। हो सकता है कलकत्ते से उस औरत ने अपना प्रेम-वाण फिर चलाया हो, या उस मक्कार मनसुख ने जेफरन की खोपड़ी में भरा हो कि कड़ाई न होगी तो लोग हाथ से निकल जायेंगे, इत्यादि। आदमी को पहचानना कितना कठिन है! खैर, देखा जायेगा। जब तक हम लोगों में सहयोग है और शिवदत्त जी जैसे साधु तथा कुशल कर्मठ व्यक्ति हमारे नेता हैं, तब तक जेफरन ही आखिर क्या कर लेंगे?

सभा हुई। जेफरन और शिवदत्त बगल-बगल मंच पर बैठे। शिवदत्त को यह प्रतिष्ठा देख सभी कर्मचारी गद्गद् हो उठे। स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ से हुलक कर देख रही थीं। बच्चे कुछ दूर खड़े एक टक निहार रहे थे। मुर्गों ने देखा बे-दिन को हाट बैठो हुई है और अपनी पूछ न पा पूछने लगे थे। कुत्ते गड़बड़ी देख स्वामि-भक्ति से भूँक रहे थे।

जेफरन ने प्रस्ताव किया, शिवदत्त जी सभापति का आसन ग्रहण करें। समवेत कंठ से अनुमोदन हुआ। लज्जाशील शिवदत्त का चेहरा सुर्ख हो गया।

जेफरन मिली जुली हिन्दी और हो भाषा में बोले—भाइयो, आदमी को आदमी के ही तराजू पर तौलना चाहिये, देवता के काँटे पर नहीं।

सभा ने शब्दहीन व्यञ्जना में उत्तर दिया—हाँ, हाँ।

जेफरन—मुझमें कमजोरियाँ हैं, मैं भी गलती करता हूँ।

सभा के मूक भाव थे—नहीं नहीं, इसकी कोई बात नहीं।

जेफरन—लेकिन मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा हाथ कहीं भी रहे, घटना-चक्र में पाप या अन्याय ही क्यों न हो जाय, मेरा हृदय सर्वदा धर्म-स्थान पर रहता है। मैं आपका दोस्त हूँ।

सभासदों में विश्वास अविश्वास के बीच खींच-तान आरम्भ हो गई।

—हाँ, मैं दोस्त हमेशा से रहा हूँ। दोस्त इसलिये रहा हूँ कि आपके जरिये मेरा और कम्पनी का लाभ होता है। आप काम करते हैं, हम आपको थोड़ी सी मजदूरी देकर बाकी नफा ले जाते हैं और बाँटते हैं शहर बैठे उन पैसे वालों के बीच जिन्होंने कम्पनी के शेयर–साझेदारी के कागज खरीद रखे हैं।

श्रोताओं की दृष्टि पोंगा से पार हो शहर चली गई।

—मैं अब भी उसी लाभ के लोभ से आपका दोस्त हूँ। मगर दोस्त के घर पहुँचने का मुझे एक और रास्ता सूझ पड़ा है।

सभा में सशंकता छा गई।

जेफरन कहते गये—जबसे शिवदत्त जी कारखाने के निर्देशक हुए हैं, तब से इसकी कायापलट हो गई और मेरी भी आँख खुली। आप लोग अपना काम मजदूरी न समझ धर्म और भक्ति की प्रेरणा से करने लग गये। कम्पनी को अगाध मुनाफा हुआ। मेरे पास कम्पनी से कितने प्रशंसा-पत्र भी आये। मैं छिपाये हुए था।

कितनों के मन ने कहा—चोर है!

—हाँ, छिपाये हुए था और सोच रहा था। सोचता था दो पहलुओं से, एक नीति का पहलू, दूसरा स्वार्थ का। नीति के नाते आप के पसीने की कमाई में आपको साझा मिलना चाहिये। पूँजी लगाने वाला भी अपना हक ले, क्योंकि किसी भी व्यवसाय के लिये पूँजी और श्रम दोनों चाहिये। मगर सब कुछ पूँजी वाला ही क्यों मार ले जाय? फिर दूसरा पहलू है स्वार्थ का। मैंने देखा कि यदि आपको स्थायी रूप से प्रेरणा मिलती रहे तो यही प्रगति कायम रहेगी और कम्पनी को बाढ़ की तरह मुनाफा मिलता रहेगा। यही सोच कर कम्पनी को मैंने एक सुझाव भेजा।

जेफरन एक क्षण के लिये रुक गये। सभी की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं। सभा में सविस्मय सन्नाटा था।

—सुझाव यह था कि मजदूरी के अलावा मुनाफे का एक भाग आप में बँटे। और इसी रुपये से कम्पनी के मूल-धन को साझेदारी खरीदी जाय।

हर साल यदि ऐसा ही होता रहे तो कुछ वर्षों के बाद आप लोग ही कम्पनी के मालिक हो जायेंगे।

श्रोताओं को यह परलोक की बात-सी लगी।

परदन उठ कर बोले—यह तो मन का पोलाव न है, हुजूर। कम्पनी यह कभी मानेगी ?

जेफरन ने हँस कर कहा—मन का नहीं, थाल का पुलाव है।

यह कह वे झुके और चमड़े का एक छोटा सा बक्स जमीन से उठा कर मेज पर रक्खा। बक्स खोल कर उन्होंने कुछ कागज निकाले और हाथ उठा कर दिखाते हुए बोले—कम्पनी ने मेरा सुझाव मान लिया है और आपके हिस्सेदारी के कागज भी बनकर आ गये हैं। आज से आप सभी कर्मचारी अपने-अपने हिस्से के अनुपात में कम्पनी के मालिक बन गये।

सभा में अचानक खलबली मच गई। एक आवाज से सभी ने नारा लगाया—जेफरन साहब की जय! फिर एक क्षण के बाद दूसरा नारा उठा—शिवदत्त की जय!

सभी लोग आनन्द से उछलते हुए अपना-अपना कागज ले कर लौटे। लेकिन कर्मचारियों के मन में मानव-अधिकार की यह नई चेतना घर बनाने में कठिनाई पा रही थी। मजदूर से मालिक? सिकुर, रमराई, लोदो, जेठासिंह, सुकुरमनी, दुगी, नितिमा, सभी कम्पनी के मालिक! एक बार मन में शंका उठती, हो सकता है इसमें कोई चाल हो। फिर जेफरन के अकपट व्यवहार पर ध्यान जाता और शंका शर्म से छिपने लगती। शाम को एक जत्था शिवदत्त के घर गया। शिवदत्त भी उतना ही प्रसन्न थे किन्तु उनकी प्रसन्नता उस धीर-गम्भीर विजयी की थी जो अपनी जीत को साध्य नहीं वरन् साधन समझता है। उन्होंने रही-सही शंका का समाधान करते हुए कहा—जेफरन साहब से मेरी बात हुई है पूरी तरह वे हमारे सच्चे दोस्त हैं, और कम्पनी के भी। अब हम लोगों का कर्त्तव्य यह है कि जो आश्वासन उन्होंने कम्पनी को दिया है और जिस पर कम्पनी ने हमें यह क्रान्तिकारी अधिकार प्रदान किया है उसे अच्छी तरह निभाया जाय। मैंने आप लोगों का उत्साह देख कर और मेरे प्रति जो आपका स्नेह

है उसके अधिकार से सभी की ओर से जेफरन साहब को आश्वासन भी दे दिया है। और अब तो अपने निजी स्वार्थ का भी सवाल है। जितना मुनाफ़ा कम्पनी को होगा उसी अनुपात में हमें भी हिस्सा मिलेगा और क्रम से कर्मचारी-समुदाय ही कम्पनी का सोलह आने-मालिक बन जायेगा।

२०

शिवदत्त का स्थान कम्पनी की मान-शृंखला में जिस क्रम से ऊँचा उठता गया उससे अधिक इनकी घनिष्टता जेफरन के साथ बढ़ती गई। काम के दौरान में इन दोनों का आफिस में, बँगले में, मिलते रहना अनिवार्य तो था ही किन्तु शिवदत्त के व्यक्तित्व ने जेफरन को इतना वशीभूत कर दिया था कि वे इनका सान्निध्य अपनी आत्मिक उन्नति का उपकरण समझने लग गये थे। हर रोज शाम को, टहल-घूम के बाद, शिवदत्त जेफरन के बँगले पर चले जाते और आठ-साढ़े आठ बजे रात तक वहीं रहते। रौनक के ख़याल से तो वे रातें कहीं ज्यादा रंगीन थीं जब मिसेज इथेल दास प्रदर्शन-आकुलता से बन-ठन कर आतीं, जब ह्विस्की का जाम चालू सिक्के की तरह चला करता, मनसुख दास गाड़ी के पाँचवे चक्के की भाँति अपने को निस्प्रयोजन देख चलते बनते, और ज्योत्स्ना-स्नात निर्जनता में सुन्दरी इथेल रूप-यौवन के दाने बिखेरतीं। रस-वंचित निर्वासित जेफरन दाने की ओर दौड़ते और क्षण भर उन्हें ऐसा लगता जैसे जीवन की निर्मम व्यर्थता को इसी एक रूपसी की देन सार्थक बना सकती है। जेफरन की परिस्थिति में बहुसंख्यक पुरुष इस क्षणिक भ्रम को चिरसत्य समझ अंगीकार भी कर लेते, किन्तु जेफरन के लिये रमणी या रमणीयता सुख का शरीर मात्र थी, उनके सुख की आत्मा कर्त्तव्य-ज्ञान में थी। जेफरन के प्रत्यक्ष पर परोक्ष का नियन्त्रण सदा सक्रिय रहता। इस कारण उस रंगीनी में इन्हें कुछ अभाव, कुछ खोखलापन, दीख पड़ता। इनके शरीर-मन को गुदगुदी तो मिल जाती परन्तु अन्दर अछूता सा रह जाता। अब शृंगार की जगह

सादगी ने ले ली थी, मजलिस के उद्दीपन को आश्रम के विराग ने ग्रस लिया था। फिर भी जेफरन का सर्वांग अब अधिक पूर्ण रहता, उनके सुख-वैभव में कहीं चोर छिपा न होता। बैठक में बुदनी भी सम्मिलित होतीं, शृंगार-विहीन सादा कपड़े पहने। पता नहीं क्यों, पर जिस दिन से उसने शिवदत्त जी से बातें की थीं और उनके पैर छू कर प्रणाम किया था, उसी दिन से उसे रेशमी कपड़ों और गहनों से विरक्ति हो गई थी। ह्विस्की का एक पेग या दो पेग जेफरन स्वयं पिया करते, पर बुदनी संतरे इत्यादि का शरबत ही पीती, और शिवदत्त तो हाथ जोड़ क्षमा-प्रार्थना ही कर लेते। इस मंडली में कम्पनी की व्यवसायिक बातें कभी न होतीं। चर्चा होती केवल जन-हित और धर्म-कर्त्तव्य की। जेफरन श्रद्धा-भाव से शिवदत्त की बातें सुना करते। एक दिन जेफरन ने पूछा—अच्छा, शिवदत्त जी, हिन्दू-धर्म के मूल महाभारत और रामायण हैं, लेकिन क्या आप सचमुच विश्वास करते हैं कि महाभारत की घटना सच्ची है ?

शिवदत्त ने मुसकुरा कर कहा—आपका सवाल दुरुस्त है, और जवाब भी आसान नहीं। किन्तु महाभारत और रामायण को सार्थकता के लिये यह प्रश्न कोई जरूरी नहीं।

जेफरन—क्यों ? यदि घटनायें ही झूठी निकलें तो उनसे सच्ची शिक्षा कैसे मिल सकती है ? यह सवाल तो सबसे पहले आता है।

शिवदत्त—दलील के लिये मैं यह भी मान लेने को तैयार हूँ कि रामायण और महाभारत दोनों की कहानियाँ उसी तरह कल्पित हैं जैसे उपन्यास की कहानी होती है। लेकिन क्या आप उपन्यास के पात्रों से प्रभावित नहीं होते ? क्या उपन्यास समाज-शिक्षा, चरित्र-गठन या नीति-विस्तार का माध्यम नहीं होता ?

—होता है।

—तो बस यही समझ लीजिये कि ये दोनो धार्मिक महाग्रन्थ उपन्यास मात्र हैं। देखना हमें केवल यही है कि महर्षियों ने किस कल्पना के ऊपर महाभारत तथा रामायण को आधारित किया और जनता के आचार-विचार पर इनका कितना प्रभाव पड़ा है।

जेफरन ने अपने अध्ययन और अनुभव से कहा—प्रभाव तो इतना पड़ा है कि मालूम होता है जैसे हिन्दुस्तान का हर एक आदमी इन्हीं धर्म-पुस्तकों के साँचे में गढ़ा गया हो। हाँ, गढ़ने में कोई सीधा पड़ा, कोई टेढ़ा, कोई उल्टा भी !

यह कह जेफरन जरा हँस दिये।

शिवदत्त जेफरन की सूझ पर अनुरक्त हो गये। उन्हें अपने भावों को अभिव्यक्ति में उत्साह आया। लेकिन कबल इसके कि वे कहें, जेफरन गम्भीर हो फिर बोले—और इन सरल निष्पाप आदिवासियों को ही देखिये। भले ही ये गीता-रामायण के नाम न जानें, मुझे तो लगता है कि आपके भगवान के सच्चिदानन्द-गुणों के ये ही असली साक्षी हैं। सभ्यता के झूठे दिखावे से पीड़ित मेरे मन ने जो कुछ बुदनी की आत्मा में पाया वह मुझे संसार में और कहीं न मिलता।

यह कहते-कहते जेफरन की आँख बुदनी पर उठ गई और रसिकता की ठठोली से वे बोले—मगर यह लड़की पाजी हो गई है। देखिए न, सेंट, क्रीम, सब फेंकने लगी है। अभी से साधुनी बनेगी !

बुदनी भी मुसकुराई और बनावटी रोष से होंठ को दाँतों तले दबा कर जेफरन की ओर तमाचा दिखाया।

शिवदत्त भी हँसने लगे। जेफरन को सम्बोधन कर पूछा—परन्तु आप ही तो कहते हैं सभ्यता के झूठे दिखावे से मन पीड़ित होता है, इत्यादि।

जेफरन—मैंने कहा, झूठे दिखावे से। बुदनी जब क्रीम मलती है, सेंट लगाती है, रेशमी साड़ी पहनती है, तब सच्चे दिखावे से !

फिर बुदनी की ओर देख कर—सचमुच तब यह आरण्य रजनी की सच्ची नायिका बन जाती है। सच्चे दिखावे . . .

बुदनी ने बात काट कर कहा—अच्छा अब आप चुप रहिये, राना जी को भी तो कुछ कहने का मौका मिले।

जेफरन ने उसी सहास्य गाम्भीर्य से कहा—आई . . . ऐम . . . सौरी।

कुछ क्षण सन्नाटा रहा। उसके बाद शिवदत्त बोले—मैं शायद महाभारत की बात कह रहा था। उसी का नवनीत है गीता। इसमें

हर्षित यबास ने धर्म और पाप का युद्ध चित्रित किया है। इन्हीं दो मनोवृत्तियों को पाण्डव और कौरव का रूप दिया है। मानव-मन में पुण्य की सेना छोटी होती है, पाप की बड़ी। इसीलिये पाण्डव पाँच ही थे, कौरव एक सौ। किन्तु धर्मानुयायी को परमात्मा की सहायता मिलती है। यही चित्रण है कृष्ण के पाण्डवों का पक्ष लेने में।

जेफरन ने झट कहा—ठीक कहते हैं, शिवदत्त जी। अँगरेज कवि मिल्टन ने भी यही भाव व्यक्त किया है इन पंक्तियों में—

And if virtue feeble were,
Heaven itself would stoop to Her.

शिवदत्त—प्रत्येक देश या धर्म के चिन्तक एक ही मूल निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

जेफरन—पाण्डवों की जीत से क्या यह दिखाया गया है कि पाप के ऊपर धर्म की विजय होती है?

शिवदत्त—जी हाँ, धर्म को विजय होती है लेकिन आसानी से नहीं। पाप का बाह्य रूप इतना आकर्षक, इतना मोहक होता है कि मनुष्य-मन सहज ही खिंच जाता है। ऐसी परिस्थिति में आदमी के अन्दर, धर्म-बुद्धि और पाप-बुद्धि के बीच, विजय के लिये घोर प्रतियोगिता आरम्भ हो जाती है। धर्म-बुद्धि कहती है—"ये प्रलोभन पाप के हैं, बाहर कनक पर भीतर विष, ये नरक ले जायेंगे, इन दुश्मनों को मारो।" पाप-बुद्धि कहती है—"अगर इन्हें ही तज दिया तो जिन्दगी में और क्या सुख बच रहेगा? यदि जीवन की इसी सर्वोत्तम देन को ठुकरा दोगे, मन की इसी माँग को मार दोगे, तो यन्त्राणायें सह कर जीने ही से क्या लाभ? मोती छोड़ दोगे तो सीपी रख कर क्या होगा? धर्म से पूछो, इस त्याग के बदले तुम्हें वह क्या देगा। झूठे वादे और प्रलोभनों पर मत जाओ। मैं नकदी सौदा करती हूँ, धर्म तो बस परलोक और स्वर्ग-नरक की खोखली बातें करता है। कौन जानता है नरक-स्वर्ग कहाँ है, मरने के बाद मनुष्य कहाँ जाता है, अगर जल जाने या गड़ जाने के बाद जाने का सवाल रह भी जाय?" अन्तर्जगत के इसी चिरन्तन संघर्ष को महर्षि व्यास ने महायुद्ध का रूप दिया है, बड़ा

ही मार्मिक चित्रण है ! उभय सेनाओं के मध्य अर्जुन का रथ खड़ा है, दोनों पक्ष के समर-शंख सिंहनाद से बज चुके हैं, तुमुल घोष से नभ और पृथिवी अभ्युन्निनादित हो उठे हैं, समक्ष पाप-रूपी कौरव खड़े हैं, और कृष्ण कह रहे हैं, "इन्हें मारो"। अर्जुन देखते हैं कि मरने या मारने के लिये सम्मुख अवस्थित ये अपने ही प्राण-प्रिय भाई, पुत्र, पौत्र, सुहृद, महानुभाव, गुरुजन हैं, जिनकी हत्या करने को कृष्ण कह रहे हैं। ये अपने ही शरीर के भाग हैं, इनके कारण ही तो जीवन सह्य और सार्थक है। इन्हें मारकर त्रिलोक का रुधिर-प्रदिग्ध सिंहासन क्या सुख दे सकता है? अर्जुन का शरीर मोह और कर्तव्य के बीच काँपने लगता है, रोम-हर्ष हो जाता है। शोक-संदिग्ध, अश्रुपूर्ण कुलेक्षण, अर्जुन ने कृष्ण से सविनय कहा—"मैं यही नहीं निर्णय कर पाता हूँ कि दोनों में कौन मेरे लिये गरीयस है, मेरा उन पर विजय पाना अथवा मुझ पर उनका विजय प्राप्त करना। जिनको मार कर मैं स्वयं जीवित नहीं रहना चाहूँगा वे ही तो सामने खड़े हैं।"

जेफरन—सचमुच बड़ा सजीव चित्र है। हर आदमी महसूस करता है अपनी भीतर की लड़ाई को, सुकर्म और दुष्कर्म में, धर्म और अधर्म में।

एक क्षण के पश्चात् जेफरन ने पूछा—तो गीता की मूल शिक्षा क्या है?

शिवदत्त—निष्काम कर्म। कृष्ण अर्जुन को बार बार यही समझाते हैं कि अपना उचित कर्म करो, फल उसका चाहे जो भी हो। अर्जुन के शंका समाधान के लिये कृष्ण ने अपना दिव्य रूप दिखाया जिसमें भूत, वर्त्तमान और भविष्य तीनों एक साथ विद्यमान थे। कृष्ण ने कहा—"देखो, जिन्हें तुम मारने में हिचक रहे हो वे सभी मरे पड़े हैं। तुम्हारे मारने और न मारने से क्या होता है? कर्त्ता कोई और है, तुम तो कारण मात्र हो।"

जेफरन—इसी तरह का भाव बाइबल में भी है।

शिवदत्त—जी हाँ। और दूसरी शिक्षा गीता की है सेवा-धर्म। आत्मा अनेक जीवन-यात्रायों के पश्चात् मोक्ष लाभ करती है और प्रत्येक

यात्रा में इसे अपना कर्तव्य पूरा करना पड़ता है। किन्तु यात्रा करने के लिये इसे स्थूल शरीर चाहिये। परमात्मा ने मनुष्य को आत्मा की यात्रा के निमित्त शरीर देकर ऋणी बना दिया। उस ऋण को हम उसी मात्रा में चुका सकते हैं जिस मात्रा में हम अपने शरीर को परमार्थ में लगावें। जहाँ तक निस्स्वार्थ भाव से हम दूसरे की सच्ची सेवा कर सकें वहाँ तक हम ईश्वर के नजदीक पहुँचते हैं।

बुदनी कुछ बोलती न थी किन्तु बड़े ध्यान से शिवदत्त जी की वार्त्ता सुनती जा रही थी। कुछ समझती थी, कुछ अटकल लगा लेती थी। शिवदत्त के अन्तिम वाक्य को उसने पूरी तरह समझा। ऊपर से वह छिछोर थी लेकिन भीतर गम्भीर समवेदनाशील। किसी का दुःख देख उसका हृदय द्रवित हो जाता था। अपने गाँव में उसने कई बार रात-रात भर बीमारों की सेवा-सुश्रूषा की थी। उस समय नैश-जागरण के कष्ट के बावजूद भी उसे अकारण एक अस्पष्ट आनन्द का बोध होता। जितना वह कष्ट सहती थी उतना ही अधिक उसका अन्तर उत्फुल्ल होता, लेकिन इस प्रतिकूल अनुभूति को वह भ्रम समझ टाल दिया करती थी। इसके विश्लेषण की ओर कभी ध्यान ही न दिया था। सेवा की ओर वह आकर्षित होती थी अपने मन के तर्कहीन आग्रह से और समाज-धर्म की चेतना से। किन्तु आज शिवदत्त की व्याख्या ने उस अस्पष्ट अनुभूति को मूर्त्त कर दिया, अकारण को अर्थ दे दिया। उसने अब समझा कि सेवा के माध्यम से ही उसे आन्तरिक आन्नद की प्राप्ति हो रही थी। बुदनी को अंधकार में जैसे जाज्वल्य प्रकाश दीख गया और वह इस सेवा-धर्म-दर्शन से इतना प्रभावित हुई कि आवेश में एकाएक कुरसी छोड़ खड़ी हो गई, फिर तुरत परिस्थिति का ज्ञान लौटने पर बैठ गई।

जेफरन ने बुदनी को अकारण खड़ा होते और फिर बैठते देख पूछा—क्या हुआ बुदनी ?

बुदनी ने गम्भीरता से उत्तर दिया—कुछ भी नहीं।

उसके नेत्र किसी दूर दिगन्त में लगे हुए थे।

इसी बीच अलीजान मँडराता हुआ नजर आया। जेफरन ने पूछा—क्या है अलीजान ?

—कुछ नहीं हुजूर। डिनर तैयार है।

शिवदत्त झट उठ खड़े हो गये। उन्हें शर्म आई कि अपने भाव-स्रोत में बहते-बहते वे दूसरे की सीमा में अनधिकार पहुँच गये थे। उन्होंने सुना था कि साहबों का भोजन-समय बड़ी कट्टरता से पाला जाता है। पर जेफरन ने कहा—बैठिये, शिवदत्त जी, अभी जल्दी क्या है ?

—नहीं सर, आपके खाने का समय हो आया, मुझे और पहले ही जाना चाहिये था।

जेफरन ने सस्नेह उनका कंधा दबा कर बैठाया और बोले—अरे बैठिये भी, यहाँ इतने नियम और शिष्टाचार का क्या काम ? डिनर एक रात देर ही से खा लूँगा तो क्या हो जायेगा ? हाँ, हो सकता है कि बुदनी के पेट में चूहे लोट रहे हों, शायद इसीलिये वह उठ खड़ी हुई थी, और जब चूहे झटका पा दब गये तब बुदनी भी बैठ गई !

बुदनी ने हँसते हुए कहा—धत् ।

जेफरन—धत् क्या ? स्वार्थी तो हो ही। कभी शिवदत्त जी को भी खाने को पूछा है ? मेरे हिस्से में तो ह्विस्की और जिन है, मैंने पूछने को कई बार पूछ लिया। तुमने अपने हिस्से के टोस्ट, कटलैट, पुडिंग या साग-सब्जी ही सही, इनके विषय में कभी उनसे पूछा है ?

बुदनी ने आँखों में अतृप्त कामना भर शिवदत्त की ओर देखा और कहा—रानाजी क्या हम लोगों का छुआ खायेंगे ?

शिवदत्त स्नेह-विगलित स्वर में बोले—खाने की कोई बात नहीं, बेटी। परमात्मा की दृष्टि में सब प्राणी समान हैं। यह तो केवल लोक-रीति और जन्म-संस्कार है जिसके वश एक आदमी कुछ करता है, दूसरा कुछ और।

शिवदत्त जब विदा लेकर जाने लगे तो बुदनी ने फिर झुक कर उनके पैर छुए और प्रणाम किया।

२१

कुछ दिन के बाद शिवदत्त बीमार पड़े। इन जंगल-पहाड़ों का मलेरिया-बुखार बाघ की तरह अचानक धर दबाता है। शिक्षित समाज में लोग यह तो समझते हैं कि मच्छड़ काटने से बुखार लगता है, इसलिये मच्छड़-दानी लगा कर सोना चाहिये। लेकिन यदि आज मच्छड़ों ने काटा और कम मलेरिया नहीं हुआ तो अपनी विजय समझी जाती है। शिवदत्त भी इसी भूल में थे। उन्हें मालूम न था कि मादा मच्छड़ जिन कीटाणुओं को अपने डंक द्वारा मनुष्य के शरीरमें डाल देती है वे दस से चौदह दिनमें ज्वर पैदा करते हैं। इस कारण शिवदत्त आवश्यकतानुकूल कुनैन का व्यवहार नहीं करते थे। और जंगल में काम करने वालों के साथ मुश्किल तो यह है कि घर के भीतर मच्छड़दानी लगा मच्छड़ों से भले ही बच गये, जंगल के भीतर क्या उपाय है? यों तो आदिवासियों के जिस्म में प्रतिक्रिया-संजात एक ऐसी अवरोध शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिससे उन्हें जल्दी ज्वर नहीं आता और आता भी है तो हल्का और कम अरसे का। शिवदत्त ने स्वयं एक बार देखा था कि सड़क पर काम करने वाला एक मजदूर ज्वर से कुकड़ कर जमीन पर पड़ा हुआ काँप रहा है, फिर एक घंटे के बाद ही लौट कर क्या देखते हैं कि वही आदमी फावड़ा ले मिट्टी काट रहा है! लेकिन शिवदत्त मलेरिया से काफी भोगा करते थे। पहले-पहल जब वे पोंगा आये तब तो ऐसा लगता था कि जैसे मलेरिया उन्हें वहाँ रहने ही न देगा—या तो भगा देगा या मार डालेगा। भागने को तो शिवदत्त किसी भी हालत में तैयार न थे। परिवार की आर्थिक परिस्थिति ऐसी थी कि घर से निकले ही थे या तो कुछ कर-कमा लेने या मर जाने। यदि ऐसा न रहता तो मलेरिया-ज्वर से बहुत पहले मनसुख दास के कुव्यवहार का ज्वर इन्हें भगा दिये होता। अब तक बहुत कुछ सध गये थे। मगर स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। खाने-पीने में दस तरह का परहेज और नेम-धरम, मुर्गी-अंडों से कोसों दूर, शुद्ध निरामिष भोजन पर रहना था। दूध और फल इन

इलाकों में मिलने ही के नहीं। शरीर की दुर्बलता से मलेरिया सताते ही रहता था।

लेकिन इस बार शिवदत्त की बीमारी असाधारण थी। बुखार बहुत बढ़ गया था और सर-बदन की असह्य पीड़ा उन्हें बेचैन किये रहती। रह-रह कर बेहोशी की बातें भी वे बोल उठते। बासन्ती, जम्बीरा, परदन में से कोई न कोई बिस्तरे के पास बराबर मुस्तैद रहता, कारखाने के और लोग भी बीच-बीच में आया करते। आशा के विपरीत ज्वर तीन दिन तक एक सा बना रह गया। स्थानीय डाक्टर की दवा से कोई लाभ न दीखता। बुदनी ने बीमारी की खबर सुनी तो देखने गई। इसके पहले जेफरन भी शिवदत्त को देख आये थे लेकिन काम की भीड़ में जिक्र करना भूल गये थे।

बुदनी ने देखा कि शिवदत्त जी अनाप-शनाप बक रहे हैं और दर्द के मारे जल्दी-जल्दी करवटें बदल रहे हैं। कमरा गंदा हो गया था, दवा की शीशियाँ जहाँ-तहाँ पड़ी हुई थीं, और सभी चीजों से प्रत्यक्ष था कि शिवदत्त के मित्रों और हितैषियों में सच्ची सहानुभूति जिस मात्रा में भी हो, उनमें सुश्रूषा-कला का अभाव था। बुदनी सरहाने बैठ गई और ज्वर देखने के लिये ललाट पर हाथ रखा। शिवदत्त ने चौंक कर क्षण भर के लिये देखा और बुदनी का हाथ पकड़ लिया। हाथ पकड़े-पकड़े उन्होंने परली ओर करवट बदली और निश्वास खींच कर बोले—मनोर बेटी, तू क्यों यहाँ चली आई? मैं तो मरने के लिये आया ही था, तुम्हीं लोगों के लिये मरने। तू भी मर जायेगी तो मेरे मरने से क्या लाभ होगा?

बुदनी ने दूसरे हाथ से शिवदत्त का हाथ सहलाते हुए कहा—नहीं राना जी, आप यह सब क्यों बोल रहे हैं? आप तुरत अच्छे हो जायेंगे।

शिवदत्त—ना बेटी मनोर, अब नहीं अच्छा होने का, अब नहीं। तुम्हारे ब्याह की चिन्ता लिये जा रहा हूँ। जो भी हो, मनुष्य निमित्त मात्र है, परमात्मा कर्त्ता है। मैंने अपने सब कुछ किया। (फिर एक मिनट के बाद) वन से ब्याह करेगी? बड़ा सुन्दर है।

बुदनी ने हँसते हुए कहा—हाँ।

शिवदत्त—तो ठीक है। मैं भी मर कर यहीं रहूँगा। यहाँ मेरी एक और बेटी है।

बुदनी ने हँसी रोकते हुए पूछा—कौन ?

शिवदत्त आँख बन्द किये हुए ही फिर करवट बदल कर बोले—बुदनी नाम है। बड़ी अच्छी है। तुम को प्यार करती है।

बुदनी ने अपना हाथ खींच कर शिवदत्त के केश पर फेरा और मुग्ध कंठ से कहा—मैं ही बुदनी हूँ, राना जी।

शिवदत्त सर घुमा कर विस्फारित नेत्रों से बुदनी को देखने लगे। कई क्षण इसी तरह देखते रहने के पश्चात् बोले—ओ!

इसके बाद वे चुपचाप लेट गये। कुछ देर में नींद भी आ गई। बुदनी सरहाने बैठ उनके सर पर बड़े यत्न से धीरे-धीरे हाथ सहलाती रही।

पूरे सात दिनों तक तेज बुखार चढ़ा रहा। शिवदत्त के कमजोर शरीर को ज्वर ने और भी हिला दिया। वे कभी होश की बातें करते, कभी बेहोश की। शारीरिक यन्त्रणा के साथ मानसिक पीड़ा भी उन्हें बेचैन कर रही थी। उनके टूटे कथन और प्रश्नों से साफ मालूम हो रहा था कि उनका मन रह-रह कर शरीर को छोड़ घर दौड़ जाया करता है और अन्तिम मिलन की व्यथा से तथा योजना के अपूर्ण रह जाने से विक्षिप्त हो रहा है। वे घर से निकले थे अपने की बलि देकर ही। जब भाइयों और उनकी स्त्रियों ने मिलकर इन्हें सम्पत्ति तथा कारबार से बञ्चित कर दिया और ऐसी परिस्थिति उपस्थित कर दी कि इनका परिवार दाने-दाने का मुहताज हो गया, तब भी कर्म और परमात्मा में विश्वास करने वाले शिवदत्त हताश न हुए थे। सोचते, जब तक शरीर में कर्म करने और कष्ट सहने की शक्ति है, काम करूँगा, कुछ भी, कहीं भी, और शरीर को गला कर, मिटा कर, परिवार पालूँगा, मनोरमा का अच्छा व्याह कर दूँगा। शरीर की सार्थकता कर्त्तव्य की चक्की में पिस जाने में ही है। यह कर्त्तव्य-गौरव की संजीवनी ही उन्हें अचिन्त्य घोर बन के भीतर, मनुष्य की अमानुषी निर्दयता के बीच भी, सजीव और सुखी बनाये रही थी। पीछे तो उन्हें इस नये जीवन में पूरी सार्थकता मिल गई थी, अपने

पाले स्वप्नों को मूर्त करने का सुअवसर प्राप्त हो गया था। पर रोग-शय्या ऐसा स्थान है जहाँ से कैसे भी विजेता की विजय-पताका को कोई उखाड़ कर फेंक देता है, जहाँ से सौन्दर्य और प्रेम सम्पूर्ण निर्वासित हो जाते हैं, जहाँ बाँसुरी की मधुर तान विलाप और परिहास बन जाती है और जहाँ न अतीत का गौरव है न भविष्य की आशा—है केवल दुःख और दर्द, निराशा और व्यर्थता। जीवन निस्सार, अर्थहीन, निर्दय व्यंग्य सा लगने लगता है। समय अचल हो जाता है। जब किये का गर्व या करने का शक्ति-ज्ञान एक घूँट दवा लेकर दरवाजे को आड़ से झाँकने लगता तब रोग-गृह का पिशाच क्रूर अट्टहास कर उठता है और रोगी की अवस्था उस आदमी की हो जाती है जो बाजार के बीच गर्व से अमृत का घड़ा लिये जा रहा हो और कहीं से पत्थर लग कर घड़ा चूर-चूर हो जाय! धर्म की मूठ भी ढीली पड़ जाती है और जो मनुष्य सर्वदा अपने कर्मों को परमात्मा के प्रति सन्यस्त कर ईश्वर का उपाश्रित बनता आया है वह भी रोग-शय्या पर अपने किये का जोखा लेने लगता है और एक ओर से पछतावा, दूसरी ओर से निराशा के थपेड़ों से व्याकुल हो उठता है। रुग्न शिवदत्त को अपना उत्थान, अपनी सर्व-मुखी सफलता, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति सभी बालू के घरौंदे की तरह क्षणभंगुर और व्यर्थ लगने लगे—इतने व्यर्थ कि उन्हें स्वयं आश्चर्य होने लगा, मैं क्यों मूर्ख अबोध बच्चे की तरह इनके निर्माण तथा साज-सजावट में लीन था। सबसे बड़ा पछतावा यह था कि मैं क्यों अपने प्रिय जनों से बिछुड़ कर इस निर्मम बेगाने संसार में अकेले रहने को यहाँ चला आया? पाप-धर्म सब एक है। सभी को सब कुछ छोड़ अतल अंधकार में गोता लगाना होगा, कौन जाने अच्छा क्या और बुरा क्या! निजी अपना भी कौन है! सभी अपने को अन्त काल छोड़ देते हैं, कोई अपने साथ नहीं जाता। कोई अपना क्लेश नहीं हर सकता। आह! मौत भी बुलाये नहीं आती!

बुदनी रात-दिन शिवदत्त के सरहाने रहा करती। यों तो सेवा-सुश्रूषा के लिये कई आदमी थे और स्वयं जेफरन दिन में कितनी बार आते और सारा प्रबन्ध देख जाते। लेकिन बुदनी को ऐसा लगता जैसे वही

इस छोटे से लोक को ही, अन्य सभी निमित्त-मात्र। शिवदत्त जी को दवा देना, पानी पिलाना, उनका बिस्तर झाड़-बदल करना, कमरे को परिस्कार-परिछन्न रखना, सब बुदनी का अपने हाथ का काम था। रात में चार-चार घंटे का जागरण तीन आदमियों में बाँट दिया जाता था, बुदनी के जिम्मे कोई खास काम न रहता, फिर भी वह जमी ही रहती थी। बुदनी की अवस्था उस माँ की थी जो अपने रुग्न बच्चे को सर्वश्रेष्ठ नर्स के जिम्मे देकर भी चैन नहीं पाती। जब से ज्वर कुछ कम हुआ तभी से शिवदत्त बार-बार बुदनी से कहा करते—बेटी, तुम क्यों इतना कष्ट सह रही हो? तुम्हारी ममता मैं आजीवन नहीं भूलूंगा। अब तुम घर जाकर आराम करो, यहाँ लोग सम्भाल लेंगे।

बुदनी जवाब देती—मुझे आराम ही आराम है। यह क्या घर नहीं है?

शिवदत्त—यह तो अपने मानने की बात ठहरी, बेटी। तुम्हारी आत्मा महान है। मगर इस तरह तो तुम भी बीमार पड़ जाओगी।

बुदनी—अपने बीमार पड़ दूसरे की बीमारी यदि बाँट सकती तो इससे और क्या अच्छा? लेकिन ऐसा होता कहाँ है?

खुद हार कर शिवदत्त ने जेफरन से कहा कि बुदनी को समझाइये।

जेफरन भी खुद महसूस कर रहे थे कि रोगी की समुचित सेवा में बुदनी का इतना खटना आवश्यक नहीं था। डाक्टर थे, चौबीस घंटे तैनात रहने के लिये आदमी थे, फिर जेफरन भी बार-बार देख जाया करते थे। लेकिन जेफरन जानते थे कि स्त्री-जाति न तर्कशास्त्र का दायरा मानती है, न वस्तु-शास्त्र का पथ पहचानती है। वह तो चलती है भावुक हृदय के चक्के पर! भावुकता में जेफरन भी कम न थे। बुदनी को निस्स्वार्थ सेवा में संलग्न देख उनका चित्त आध्यात्मिक आनन्द से भर उठता। फिर भी उन्होंने बुदनी से कहा—अब तो शिवदत्त जी बहुत कुछ अच्छे हो गये हैं, तुम अब क्यों बेकार का रात-रात भर जागती हो? बीच-बीच में देख जाया करो, काम करने के लिये तो यहाँ कितने आदमी चौबीस घंटे खड़े रहते हैं।

बुदनी ने उत्तर दिया—जरा और देख लूं।

जेफरन—मैं अपनी ओर से नहीं कह रहा हूँ, शिवदत्त जी ने ही मुझसे कहा कि बुदनी कहीं बीमार न पड़ जाय, इसे समझाइये।

—शिवदत्त जी तो रोगी हैं, रोगी की इच्छा से कहीं दवा होती है ?

—मगर मैं भी तो जरूरत नहीं देखता।

बुदनी ने उनके कंधे पर हाथ रख कर कहा—आप नाराज न हों। बेचारा परदेशी आदमी है। एक दिन जब बुखार बड़ा ऊँचा था तब बेहोशी में राना जी ने मेरा हाथ पकड़ लिया था और कहने लगे थे—"मनोर बेटो, तुम जंगल में क्यों आई ? मैं तो मर ही रहा हूँ, तू क्यों मरने के लिये आई ?" समझते थे मैं ही उनकी बेटी मनोरमा हूँ !

यह कहते-कहते बुदनी का गला भर आया। जेफरन भी परिहसित नारि-जाति की भाँति हृदय के चक्के पर चलने लगे और आँख भींगते जान झट उठ गये !

२२

शिवदत्त को अपनी पहली तन्दुरुस्ती फिर पाने में पूरे डेढ़ महीने लग गये। बुदनी उनके पथ्य तथा स्वास्थ्य के प्रति अहर्निश सचेत रहा करती। और जब शिवदत्त जी पूर्ण स्वस्थ्य हो गये तब उन्हें देख बुदनी को वही गर्व और आनन्द हुआ जो कलाकार को अपनी निखर आई कृति देख कर होता है।

फरवरी का महीना था। वसन्त के फूल जहाँ-तहाँ फूलने लग गये थे। माघे परब आ गया था।

परदन ने कहा—राना जी, चलिये अपने गाँव से आपको माघे परब दिखा लावें। कल से हमारे गाँव में परब आरम्भ होगा।

शिवदत्त—हमारे गाँव में आरम्भ होगा के मानी ? परब तो सब जगह एक ही दिन होता है।

परदन—माघे परब बसन्त का उत्सव है। वसन्त तो एक दिन की

चीज नहीं है। उसी तरह हमारा माघे परब भी काफी दिन तक चलता रहता है। कभी इस गाँव में, कभी उस गाँव में।

—माघे परब में क्या होता है ?

परदन ने गर्व की हँसी हँस कर कहा—यह आपको अभी से क्यों बता दें ? आप चलकर खुद देखें। इन अंचलों का यह सबसे बड़ा पर्व है। मगर पूरा देखने के लिये तीन दिन का मेहमान होना होगा मेरे घर। तकलीफ तो आप को होगी, क्यों कि हम गरीब आदमी हैं, लेकिन आप का मन लगेगा, ऐसा मेला विश्वास है।

शिवदत्त का शरीर स्वस्थ हो जाने के बावजूद भी मानसिक स्फूर्ति पहले की सी अब तक नहीं लौटी थी। काम में अभी मन नहीं बैठता था। उन्होंने सोचा, चलें, एक चीज देख लेंगे और मन भी फिर जायेगा। जेफरन से चार दिन की छुट्टी लेकर वे परदन के साथ इनके घर गये।

माघे पर्व का जोश लोगों की नस-नस में देख कर शिवदत्त मुग्ध हो गये। और जब नाच देखा—नर-नारी का सम्मिलित कलात्मक नृत्य, उनकी प्राण-प्लावित उछाल, उनका आत्म-विभोर हो गाना, और सबके बीच आनन्द-सरिता का उद्दीपक स्रोत—तब वे मन में पूछने लगे, क्या हमारी गर्वीली आधुनिक सभ्यता किसी भी साधन द्वारा इस चरम आनन्द की सृष्टि कर सकती है ? हमारे गाँवों और शहरों में जब पर्व-त्योहार आता है तो भार ही बन कर, लोग सोचते हैं किसी तरह इज्जत-आबरू के साथ निबह जाय ! भारी-भरकम आडंबर और दिखावे के लिहाज से हम भले ही सभ्य, उन्नत और सुखी हो रहे हों, किन्तु हमारी सभ्यता की सुघड़ देह प्राणहीन है। यदि आनन्द सच्चिदानन्द परमेश्वर का एक प्रधान गुण है, और सभ्यता तथा धर्म का उद्देश्य हमें परमात्मा की ओर बढ़ाना है तब वह सभ्यता किस काम की जो ऐसे नैसर्गिक आनन्द से हमें दिन-प्रतिदिन बिमुखी करती रहे ?

तीन दिनों तक पूजा, नाच, गान, चले। पहले दिन सभी ने अपना-अपना घर साफ-सुथरा किया। इन आदिवासियों के घर यों ही इतने साफ रहते हैं—आँगन लीपा-पोता हुआ, बरामदे पर गर्द का एक कण

नहीं, दीवारें साफ, चिकनी, चित्रित—कि शिवदत्त का जी चाहता कहीं भी पलथी मार कर बैठ जायें। इन्हें पता चला कि औरतें आठ-आठ मील, दस-दस मील से पीली या लाल मिट्टी लाती हैं दीवारें पोतने के लिये और उन पर बाघ, हाथी, मोर की चित्रकारी करने के लिये। यदि स्वच्छता और सौंदर्य ईश्वर के प्रतीक हैं तब निस्संदेह कहा जा सकता है कि ये प्रकृति-संतान ईश्वर के अति निकट हैं, हम अपनी सभ्यता लिये मियाँ मिट्ठू भले ही बने रहें!

घर सफाई के बाद दूसरे बेला पूर्वजों की पूजा हुई। पूर्वज-पूजा एक न एक रूप में हर देश और समाज करता है—हिन्दूधर्म में पितृ-पक्ष इसके लिये निर्धारित है, यूरोप-अमेरिका में विशिष्ट नर-नारी की प्रस्तर-मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं अथवा शहर, सड़क इत्यादि उनके नाम पर नामित होते हैं। लेकिन इन आदिवासियों की पूर्वज-पूजा शिंटो-मत के जापानियों की पूर्वज-पूजा से अधिक मिलती है। आदिवासी अपने मृत स्वजन के शरीर आँगन में ही या घर के आस-पास गाड़ते हैं। शिंटो जापानी भी समझते हैं कि उनके पूर्वज सदा उनके साथ ही रहते हैं, स्थूल शरीर के बदले सूक्ष्म शरीर में। भोजन के पहले नित्य अनिवार्य रूप से मृत पूर्वजों को खिलाया जाता है। जापानी और "हो" आदिवासी, दोनों के सर्व-श्रेष्ठ देवता उनके अपने ही पूर्वज हैं, और संयोग से दोनों के पूर्वज भी एक ही हैं—सूर्य, जिन्हें "हो" भाषा में "सिंग बोंगा' कहते हैं।

पूजा के बाद हँड़िया चलने लगी। आदिवासियों के आनन्द-उत्सव के लिये हँड़िया उतना ही आवश्यक है जितना नाव के लिये पानी! नर-नारी, बूढ़े-बच्चे, सभी इसे पीते हैं और शरीर में स्फूर्ति लाते हैं। हँड़िया चावल की बनी एक हल्की मदिरा है। घर-घर बनाई जाती है। भात पका कर उसमें रानू नामक एक जड़ी डाल दी जाती है जिसके गुण से तीन-चार दिनों में भात के दाने गल जाते हैं और माँड़ की तरह सफेद गाढ़ा एक पानीय प्रस्तुत हो जाता है। यह भोजन और पानी दोनों का काम करता है और इससे हल्का नशा भी होता है। माघे पर्व में अमीर-गरीब सभी अपने बूते भर घर-घर हँड़िया बनाते हैं और जो जहाँ भी

गया पी लेता है। पर्व में हँड़िया पीने की छूट रहती है, न यहाँ-वहाँ की पाबन्दी, न मात्रा का नियन्त्रण।

शाम होते ही नाच आरम्भ हुआ। शिवदत्त ने पहले भी जहाँ-तहाँ आदिवासी-नाच देखा था, लेकिन इस पैमाने पर नहीं, न इस चरम-जोश का। नाच क्या, शिवदत्त के सम्मुख उत्फुल्ल कल्पना ही मूर्त होकर डोल रही थी—वह कल्पना जो आकुल भक्ति-भरी चेष्टा के बावजूद भी चित्रित न कर पाती थी कि मीरा सशरीर द्वारकाधीश कृष्ण में किस विधि लीन हो गई थी। शिवदत्त सामने देख रहे थे कि ज्योत्स्ना आलोक में नृत्य-मगन नर-नारी सशरीर आनन्ददेव में लीन हो गये हैं—शरीर का मानो परित्याग हो गया हो, चेतन आत्मा परमानन्द के आलिंगन में झूम रही हो—आत्माओं की सारी टोली, अपने अपार्थिव पैरों को एक साथ उठा-उठा कर, उछल-उछल कर, सूक्ष्म बाहु में संगी की अस्पृश्य कटि को बाँधे हुए, दिव्य वाणी से अध्यात्म्य बिखेरते हुए। विमुग्ध शिवदत्त सोच रहे थे, इन पर्वत-पुत्रों और गिरि-बालाओं की आनन्द-अनभूति कितनी अतल गंभीर, कैसी असीम होगी, जिससे ऐसी परिस्थिति की सर्जना हो सकती है! सचमुच, उमड़ते हुए हृदय की प्रबल प्रेरणा अथवा अनुभूति की असाधारण गहराई ही—चाहे वह भक्ति द्वारा उत्पन्न हो, या प्रेम से या प्रकृति के सौन्दर्य से—मनुष्य को परमात्मा में सदेह मिला सकती है। इन्हीं में से किसी के द्वारा मीरा कृष्ण में लीन हुई होगी!

दूसरे दिन सुबह गाँव के नर-नारी ग्राम-पुजारी (दिउरी) के घर इकट्ठा हुए और निर्बन्ध आनन्द के साथ नाच-गान करते-करते उसे पोखरे पर नहलाने के लिये ले गये। दिउरी के विधिवत् स्नान के पश्चात् उसे उसी तरह नाचते-गाते देसावली पहुँचाया गया। देसावली वन के भीतर एक विशिष्ट स्थान है, जहाँ पूजा की जाती है। आदिवासी ईंट-पत्थर के मन्दिर नहीं बनाते, शुभ्र वनस्पति ही इनके देवालय का उपकरण है। दिउरी ने एक लाल मुर्गा काटा और एक मुर्गी (मुर्गे का लाल होना जरूरी है, मुर्गी चाहे किसी भी रंग की हो) फिर चावल के अक्षत से मन्त्र पढ़ा। समस्त ग्राम के कल्याण के निमित्त यह पूजा थी। पूजा के उपरान्त सभी

लोग लौट कर दिउरी के घर आये और वहाँ बड़े दल में नाच आरम्भ हुआ। शाम को अल्प विराम के बाद फिर नाच-गान चलने लगा और सारी रात जारी रहा। शिवदत्त इतने मुग्ध थे कि उनकी पलकों में नींद नहीं। प्रत्येक घटना, हर रस्मरवाज, एक-एक भाव-भंगी का वे ध्यान-मग्न अध्ययन कर रहे थे। वे "हो" भाषा कुछ-कुछ सीख गये थे लेकिन अधिकतर परदन की सहायता से ही समझ रहे थे। शिवदत्त ने देखा कि संगोत तथा नृत्य की अभिव्यक्ति में यौन-विषय ही प्रमुख है। गीत की कुछ पंक्तियाँ ये थीं—

बातारी सालंगी काका साकाम, होयकोरे बिनुं कादाल साकाम,
सिबिलन् गेम कापाजीया हिता मेञ्ा् सानां।
माइल दारू लेंगे वेंगे, नेनेल सानां आयां मेगे,
नोगोडान गेम लान्दाया टालीमेञ्ा् सानां॥

अर्थात्—

"पतला और लम्बा काका पत्ते के समान तुम्हारा शरीर है और केले को पत्ती की तरह तुम हवा में खेलती हो,

"तुम्हारी बोली इतनी मीठी है कि तुम्हारे बोलते ही जी चाहता है तुम्हीं को अपना बीज बोने के लिये खेत बनायें।

"सिरकी कंडे के ऐसा सीधा तुम्हारा बदन है, तुम्हें देखते रहने की इच्छा होती है और दिल चाहता है तुम्हें अपना बना लें,

"तुम्हारी मुस्कान इतनी मधुर है कि इच्छा होती है तुम कितने भी पड़ाव दूर क्यों न हो, तुम्हें उठा लावें॥"

माघे पर्व वसन्त-ऋतु के आगमन का समारोह है, इसलिये यह स्वाभाविक है कि भाव तथा अंगों के अभिव्यञ्जन में यौन का समागम हो। "माघे" शब्द का अर्थ ही है "अश्लील"। किन्तु शिवदत्त ने देखा कि दिउरी के धर्म-स्नान के पूर्व तथा स्नान और पूजा के मध्य जो गीत गाये गये और हाव-भाव प्रदर्शित किये गये उनमें अश्लीलता चरम सीमा तक पहुँची हुई थी और यह उन्हें सरल स्वाभाविकता के परे मालूम हुआ। जिस समय मन को सम्पूर्ण वासना-विहीन होना चाहिये, जब हृदय और

मस्तिष्क को पुनीत भावनाओं से भरने की चेष्टा प्रत्यशित है, ठीक उसी समय कामोद्दीपन की सामग्री सामने रखना उन्हें एक पहेली सी जान पड़ी। फिर वे सोचने लगे, यह पहेली कोई नई भी तो नहीं है। जगन्नाथ पुरी, कोनारक और भुवनेश्वर के मन्दिरों पर साक्षात् योन-क्रिया-युक्त घोर अश्लील प्रस्तर मूर्तियाँ पहेली ही हैं। साँची और भरहुत की नग्न यक्षी-प्रतिमायें भी समस्या नहीं तो क्या हैं? भगवान बुद्ध के निर्वाण-स्मारक स्तूप के चतुर्दिक स्तम्भों में नग्न मूर्तियाँ गढ़ी हुई हैं—अंग-प्रत्यंग सम्पूर्ण नग्न, केवल घुटनों के आर-पार एक झीनी चादर खिची हुई, जिससे नग्नता और भी मुखर हो उठी है; एक हाथ में बसन्त-द्योतिका आम्र-मंजरी, दूसरे में मदिरा-कलश और चपक। बाहर काम-वासना को उभाड़ने वाली ये प्रति-मूर्तियाँ और अन्दर की ओर उन्हीं खम्भों में चित्रित जातक कथाओं के दृश्य! इस भ्रामक अमिल योगायोग पर दो मत हैं। एक मत के अनुसार शिल्पयों का अभिप्राय यह दिखाना था कि प्राकृतिक नग्न शरीर में कोई अश्लोलता नहीं है, न नियन्त्रित यौन-क्रिया में ही पाप है। अश्लीलता आ जाती है इनमें कौतुक के अच्छादन द्वारा कामुकता भर देने पर। दूसरा मत यह है कि वाह्यजगत कामुकता-पूर्ण है, पाप तथा भ्रष्टता से भरा हुआ है, और पग-पग पर प्रलोभन बिखरे पड़े हैं। इनमें विचलित न हो। अपने दुष्प्रवृत्तियों के ऊपर निग्रह स्थापित करने के पश्चात् अन्तर्जगत में पहुँचने पर ही शान्ति तथा ज्ञान प्राप्त हो सकते हैं। हो सकता है कि इन्हीं मनोभावों की प्रेरणा माघे पर्व में भी निहित हो।

तीसरे दिन सुबह फिर घर का झाड़-बुहार हुआ। दोपहर को स्वजन-सम्बन्धियों के साथ खाना पोना—पीठा, मांस, हँड़िया। शाम को फिर दिउरी के घर नाच, लेकिन यह नाच आठ-नौ बजते-बजते समाप्त हो गया। इस रात को रस्म यह है कि अपने-अपने घर निमन्त्रित सम्बन्धी युवकगणबाँसुरी और सारंगी बजायें, युवतियाँ गायें। प्रथम दो दिनों तक व्यक्ति समूह में खोया हुआ था, आज मानो उसने अपनी एकाई पहचानी। अपने पुलकित हृदय को वायुमंडल में न बिखेर आज उसे

मौका मिला हाथों-हाथ अपने प्रिय पात्र अथवा प्रियतमा को अर्पित करने का। युवकगण बाँसुरी और सारंगी बजा-बजा कर झूम रहे थे, दूसरी ओर युवतियाँ विभोर हो गा रही थीं।

युवक—

कांसा बानाम गांडी रुतु, रांसा सानां हातु हातु,
जुजुलां गेम दुदुरां, किली मेञ्न् सानां।

"जी चाहता था सारंगी और बाँसुरी लेकर गाँव-गाँव आनन्द से बजाता फिरूँ,

लेकिन तुम्हारे जुल्म-भरे गीत ने मुझे कैद कर लिया, और अब यही इच्छा होती है कि सब कुछ फेंक कर तुम्हीं को गोद में उठा लूँ।"

युवतियाँ—

बाले समाय रिलामाला, हेयर्ति दो जोल जोला,
बोरो मारां मिसादो जिड़ी तायं मेञ्न् सानां।

"तुम्हारे प्राण-भरे जवान शरीर के चिन्तन में मेरा मन लबलबा उठता है,

और डर तो बहुत लगता है फिर भी हृदय आगे ठेलता है कि तुम्हें एक बार छाती से सटा लूँ।"

माघे परब स्वयंबर का भी समय है। बहुधा ऐसा होता है कि माघे परब के मेल-जोल में, सम्मिलित नाच में, हँड़िया के सुखद बहाव में, लड़के-लड़की के बीच प्रेम हो गया और दोनों ने व्याह करना निश्चित कर लिया। यह भी देखा गया है कि किसी युवक और रमणी में पहले से प्रेम है लेकिन लड़का गरीब है, यथोचित पन नही दे सकता। "हो" जा-जाति में लड़की वाला पन लेता है—आठ दस गाय बैल और दो सौ तक रुपये। ऐसे लड़के वालों की संख्या बहुत अधिक है जो इतना पूरा पन नहीं दे सकते, इस कारण इनके समाज में अविवाहित लड़कियाँ बहुसंख्यक पाई जाती हैं। पर यदि लड़का-लड़की परस्पर राजी हो जायँ और लड़का लड़की को अपने घर लेकर चला जाय तो पन का प्रश्न नहीं उठता। माघे परब में लड़के लड़कियों को इसका पूरा अवसर मिलता है।

नाचते-नाचते कोई जोड़ी गायब हो गई और एक-दो दिन के बाद पता चला कि लड़की को लड़का अपने घर ले गया है। अविवाहित जोड़ियाँ नाच-उत्सव से छिटक कर घंटे, दो घंटे, सारी रात भी एकांत में बिता सकती हैं, इसको सामाजिक रुकावट नहीं है। इन्हीं एकान्त मिलनों में या तो तत्काल ब्याह का निश्चय हो गया अथवा भविष्य के लिये नींव पड़ी। जो युवक इस अवसर का दुरुपयोग करते हैं वे समुचित रूप से दंडित होते हैं।

चौथे दिन शिवदत्त के लौटने का प्रबन्ध हुआ। उनकी हर घड़ी ऐसे सुख-प्रवाह में बीती थी कि यह अनुभूति उनके जीवन की एक अमूल्य निधि बन गई। पर्व-त्योहार इतनी आत्म-विस्मृति, इतनी मस्ती से मनाया जा सकता है, यह शिवदत्त के लिये एक आविष्कार था। वे शरीर से स्थिर भले ही बैठे रहे हों, उनका हृदय उसी नृत्य-दल में मिल नाचता रहा था।

करीब नौ बजे सुबह शिवदत्त और परदन पैदल रवाना हुए। वे गाँव से कुछ ही दूर आगे बढ़े थे कि मधुर आवेदन भरे संगीत की ध्वनि कानों में आई। संगीत आत्म-अभिव्यंजन का एक ऐसा माध्यम है कि जो शाब्दिक भाषा न भी समझता हो, वह भी गान से मन का भाव समझ लेगा। शिवदत्त को उस अलस प्रेम-कातर आह्वान ने आबद्ध कर दिया। उन्होंने ध्वनि की ओर आँख फैलाई तो देखा एक सुडौल टीले के ऊपर नव-पल्लवित कुसुम वृक्ष के नीचे एक तरुणी तने से ओठंग कर बैठी हुई है। हवा चल रही थी, उसका आँचल लहरा रहा था और रमणी भाव-लोक में खोई हुई मग्न गा रही थी——

> होयवो सानां होयवोयमे, मेन्दो सुहाये होय वोयमे,
> एतांगे ताइंहातार लिजा, आलोम ओटां।

"हे हवा, तुम जिस तरह बहना चाहो वैसे ही बहो; लेकिन यदि मुझसे पूछो तो मैं कहूँगी, जरा धीरे बहो, मेरा सामने पड़ा आँचल मत उड़ा दो।"

होये होरसो मे, सनों होयवो गमाय-मेञ्ना् सनां,
सारजोम बाड़ा लेकादो होयवो आलोम ओटाइं।

"अगर सुनना न चाहो तो बवंडर के समान बहो, अपने साथ वर्षा भी लाओ; फिर भी एक अर्ज करूँगा कि शालफूल की तरह मुझे भी उड़ाकर नाहक न बिखेर दो।"

यदिम ओटांइयां होयवो, यदि होरोलसियां होयवो,
मारां बुरू मारां बिरते होयवो इडोइं मेञ्ना् ।

"हे हवा, यदि मेरी कुछ भी न सुनना चाहो, और बवंडर बन मुझे उड़ाना ही ठान लो, तो कम से कम इतना करो कि मुझे किसी बड़े पहाड़ के ऊपर, किसी बड़े वन के बीच उतार दो।"

बाले सागेन लुपाड़ कोरे होयबो तुका बीइं।

"और वहाँ किसी पुष्ट नये पौधे के साथ, मुझे अँटका दो!"

२३

देश में स्वाधीनता-दिवस आया और चला गया। इन अंचलों में, जहाँ अनित्य राजनीति पर शाश्वत प्रकृति हँसती है, विशेष कोई छाप न पड़ी। किन्तु कलकत्ते और लन्दन में तो पहले ही से हेर-फेर हो रहे थे, वहाँ सक्रियता बढ़ गई। मुलहाउस कम्पनी ने ठीक कर रखा था कि अपने शेयर बेच कर और निर्देशन अधिकार का उचित मूल्य लेकर इस कारबार से हट जायेंगे। स्वाधीनता दिवस के कुछ दिन बाद ही निर्णय कार्यान्वित हुआ। लकड़ी-व्यवसाय के संचित कोष से रुपया निकाल कर और जो व्यक्ति निर्देशक बने उनकी लागत से कम्पनी के साथ निपटारा हो गया। मुलहाउस नाम रखे रहने के लिये भी करारी रकम देनी पड़ी। शिवदत्त स्थानीय मैनेजर हुए। जेफरसन को लन्दन में दूसरे पद पर नियुक्ति हो गई।

पोंगा में शंख-ध्वनि गूँज उठी, विशेष कर इस आनन्द में कि पूज्य शिवदत्त जी मैनेजर के उच्च पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। जेफरसन ने भी

अपनी स्वाभाविक उदारता से इस आनन्द-उत्सव में योग दिया। उन्हें अपने लिये कोई चिन्ता न थी। उनके लन्दन-पद का वेतन यहाँ से अधिक था, दूसरे उन्हें पूरा विश्वास था कि जिस योजना को उन्होंने मन-प्राण से खड़ा किया था उसे शिवदत्त जी कुशल रूप से चलायेंगे। यह दूसरा विषय जेफरन के लिये कम महत्व का न था। जेफरन को या उनकी कम्पनी को अब सिंहभूम के लकड़ी-कारबार से तो कोई मतलब न रह गया, लेकिन इनके ऐसा सच्चा कर्मठ अपनी सफलता को रुपये या पद-गौरव से नहीं तोलता। वह काम करना चाहता है, अपनी योजना को सफल देखना चाहता है, उससे आर्थिक लाभ हो या न हो। इसी सफलता से उसकी आत्मा जुड़ाती है, उसे आध्यात्मिक आनन्द होता है और वह उस अभिलषित सुख-शान्ति को प्राप्ति करता है जिसकी खोज में लोग धन-पद लिये व्यर्थ भरमे फिरते हैं। इसलिये इस ओर से जेफरन को कोई चिन्ता न थी। चिन्ता थो तो केवल बुदनी को लेकर। जब से उन्हें तबादले की खबर मिली थी तब से ये कर्त्तव्य-विमूढ़ से विक्षिप्त-मन मँडरा रहे थे, बुदनी से क्या कहें, उसके विषय में क्या करें! अन्त में उन्होंने बुदनी से कहा—बुदनी, मुझे अब जाना है।

बुदनी उदास बैठी हुई थी। जेफरन की बात सुन उसकी अवस्था उस मनुष्य की हो गई जो रुग्न-स्वजन के विषय में निराशा-आशा लिये डूबता-उतराता रहा हो कि अचानक डाक्टर के मुँह से बुरी खबर सुन ले। सिर झुकाये हुए ही वह धीरे से बोली—लोग तो ऐसा ही कह रहे हैं।

—तुम साथ चलोगी न?

बुदनी ने क्षण भर भी सोचे बिना उत्तर दिया—ना।

कहने को तो ना अनायास कह दिया, लेकिन आँखों में विषाद की विह्वल बाढ़ दबाये हुए जेफरन को एक-टक देखती रही।

जेफरन ने उसकी मुद्रा से उत्साहित हो फिर कहा—तुम्हारे चलने में क्या हर्ज है, बुदनी? तुमको तो मैंने अपनी स्त्री मान ही लिया, जग-संसार ने भी स्वीकार कर लिया। लन्दन चल कर सामाजिक रीति से हम व्याह कर लेंगे। हमारा समाज बड़ा सहनशील और उदार है। हर आदमी

अपना अपना काम करता है, काम में तल्लीन रहता है, उसे फुर्सत नहीं कि दूसरे की क्यारी में अपनी टाँग अड़ाये। दूसरे का मामला वहाँ हर एक के लिये वर्जित है, वहाँ तक पहुँचना अनधिकार-प्रवेश समझा जाता है। अपना घर अपना किला है, अपना काम अपनी निजी जिम्मेदारी। वहाँ हम बड़े सुख से रहेंगे। तुम इन उदात्त पर्वतों को, विहसित वन-श्री को, कुलकुलु-नादिनी निर्झरिणियों को, अपने व्यक्तित्व में साथ लेती चलोगी। तुम्हारे मुख-दर्पण में इन्हें साँझ-सबेरे देख लिया करूँगा।

बुदनी ने दुर्जय विरह के स्वर में उत्तर दिया—ना।

—तो कहाँ रहोगी ?

—कहीं भी। हम वन-वासी हैं।

जेफरन ने बेसब्र हो पूछा—मगर तुम तो दूसरी तरह रहने लग गई हो, अब तुम उस तरह कैसे रहोगी ?

बुदनी कुरसी की बाँह नख से कुरेद रही थी। सिर उठा कर स्मित हास से बोली—आप ही न उस दिन कह रहे थे कि मैं साधुनी हो रही हूँ !

जेफरन ने हार के स्वर में कहा—फिर भी तो कहीं रहोगी, कुछ खाओगी ? माँ-बाप तो अब वापस लेंगे नहीं !

बुदनी ने निर्विकल्प भाव से उत्तर दिया—वन-पहाड़ में जगह और खाना दोनो हैं। जबतक आप लौट कर न आयेंगे मैं कहीं सेवा में लगी रहूँगी।

जेफरन ने दमित आवेग-भरे कंठ से पूछा—तुम कैसे जानती हो कि मैं फिर आऊँगा ?

बुदनी ने बच्चों की सरलता से कहा,—वाह, आप आयेंगे क्यों नहीं ? मुझे देखने को आपका मन नहीं करेगा ?

जेफरन एक मिनट चुप रहे। उनके नेत्र जल-सिक्त हो रहे थे। अन्यमनस्क हो उन्होंने फिर पूछा—सेवा किसकी ?

—किसी की भी। रोगी, गरीब, दुःखी। राना जी उस दिन नहीं कह रहे थे कि सेवा सबसे बड़ा धर्म है ?

—हाँ।

––राना जी की बेटी मनोरमा आयेगी, हम दोनों मिलकर सेवा करेंगी। मैं सेवा करके आपको बुलाऊँगी। रानाजी कह रहे थे कि सेवा से सब कुछ हो सकता है। आप आयेंगे न ?

जेफरन चुप थे। उनकी आँखें झुकी हुई थीं। कुछ देर की निस्तब्धता के पश्चात् बोले––अब दो चार दिन में ही चले जाना है।

बुदनी ने गद्‌गद कंठ से आवेदन किया––अपनी बुदनी को भूल न जाइयेगा।

जेफरन की आँख से एक बूँद आँसू टप से गिर पड़ा। वे अस्तव्यस्त हो झट उठ कर चले गये।

२४

शिवदत्त ने कारखाने को, कम्पनी के आम कार-बार को, और भी सुचारु रूप से संगठित किया। अब तो सब कुछ उन्हीं के हाथ में था। निरंकुश कर्तव्य-सम्पादन की इस स्वतन्त्रता में शिवदत्त उसी तरह स्फूर्तिमान और उत्फुल्ल थे जैसे बहुत परिश्रम के बाद स्कूल के बच्चे को छुट्टी मिली हो ! कम्पनी के सभी कर्मचारी एक आदर्श लगन से काम कर रहे थे, उन्हें देख ऐसा लगता था जैसे ये नौकरी न कर रहे हों बल्कि निस्स्वार्थ सेवा-धर्म में रत हों ! एक नेता की प्रचार-विहीन साधुता और कर्त्तव्य-परायणता औरों को उस राह चलाने में किस दूरी तक कारगर हो सकती है इसका यहाँ ज्वलन्त उदाहरण था। परिणामतः कम्पनी का लाभ बाढ़ की तरह बढ़ने लगा। शेयर-मालिकों की बैठक में शिवदत्त डाइरेक्टर बना दिये गये और बसन्ती स्थानीय मैनेजर। लेकिन शिवदत्त कलकत्ते न जाकर वहीं रहे, बोले––मेरी कर्म-भूमि यहीं है।

जेफरन और शिवदत्त की योजना के अनुसार कम्पनी बाहरी शेयरों को खरीद खरीद कर कर्मचारियों के बीच अर्जित और पेशगी बोनस के रूप में बाँटती गई। यह काम इतनी तत्परता से हुआ कि कुछ दिनों में ही

कम्पनी के कर्मचारिगण एक मात्र शेयरहोल्डर और मालिक बन गये। शिवदत्त का एक दीर्घ-वांछित स्वप्न साकार हुआ। कम्पनी में शिवदत्त का इतना प्रभाव जम गया कि सभी लोग, कम्पनी के भीतर या बाहर, इन्हीं को कम्पनी का प्रतिरूप समझने लगे। शेयर-मालिकों की आम बैठक में कम्पनी के अँगरेजी नाम मुलहाउस कम्पनी को बदल देने का प्रस्ताव आया। सदस्यों का अनायास ध्यान गया शिवदत्त जी की कार्यकुशलता पर, उनकी संगठन-दक्षता पर, और आदर्श चरित्र पर। सभी की जबान पर था कि शिवदत्त जी ने ही कम्पनी को मिट्टी से गढ़ कर सोना बनाया है। फिर बसन्ती पर ध्यान गया। रंगमंच के उज्ज्वल प्रकाश के पीछे काम करने वाले बसन्ती को लोग स्नेह से महाबीर कहा करते। जिस प्रकार और जिस मात्रा में महाबीर जी रामचन्द्र के सहायक हुए थे उसी तरह बसन्ती शिवदत्त के दाहिने हाथ थे। योजना बनाना शिवदत्त का काम था, उसका आदर्श-सम्पादन बसन्ती का। नये रास्ते में मोड़ना शिवदत्त किया करते, उस रास्ते में आगे बढ़ना और बढ़ाना—खींच कर, ठेल कर, ललकार कर, कंधा-सीना लगा कर—यह बसन्ती के जिम्मे था। सर्व-सम्मति से सभा में पास हो गया कि कम्पनी का नया नाम "शिवदत्त-बसन्ती कम्पनी" रखा जाय। मुख्यालय शिवदत्त की मरजी के मुताबिक मनोहरपूर हुआ।

मनोहरपूर में नये मकानात बनने लगे। व्यय-तालिका में डाइरेटर के बँगले के लिये साठ हजार रुपया निर्धारित था। इस पर शिवदत्त ने आपत्ति की, कहा—मुझे इतना बड़ा बँगला नहीं चाहिये।

कम्पनी के शुभ-चिन्तकों ने अर्ज की—अपने गौरव की सुरक्षा के लिये समुचित बाह्य प्रदर्शन आवश्यक है।

शिवदत्त ने उत्तर दिया—गौरव अपने उद्देश्यों के धवल शिखर से आविर्भूत होता है, शुद्ध नैतिक चरित्र में मुकुलित होता है और उदार निस्स्वार्थता में प्रतिफलित होता है। एक लंपट दुराचारी आलीशान इमारत में रह कर बड़ा नहीं बन सकता, कुछ देर के लिये वह धोखे में भले ही डाल दे। जिसे अपने नैतिक बल और योग्यता पर भरोसा है वह

आडम्बर नहीं ढूंढ़ता। लँगोट पहने महात्माओं तथा विद्वानों के चरणों पर सम्राटों ने सदा माथा टेका है। जिसके बच्चे घर में भूखे रो रहे हों और जो रेशमी लिबास में शान करता फिरे, वह घृणा और दया का पात्र है, प्रतिष्ठा का नहीं। यदि कुछ देर उसकी चल भी जाय तो अन्त में नील-वर्ण शृगाल की दशा अवश्यम्भावी है।

शिवदत्त की ही बात रही। उनके लिये ऐस्क्यू-शोधित लकड़ी-बाँस से दो कमरों का झोपड़ी-नुमा मकान बना। आफिस भी इन्हीं सामग्रियों से तैयार हुआ। अन्य कर्मचारियों के लिये उसी अनुपात से कम-वेश ख़र्च में निवासस्थान प्रस्तुत हुए। बुदनी के लिये पुष्पोद्यान के बीच एक छोटी सी मनोरम कुटिया बनी।

आधुनिक सभ्यता के भड़कीले प्रलोभनों की और बुदनी जिस गति से आकृष्ट हुई थी और जिस मात्रा में वह जीवन की सार्थकता उनके उपभोग में समझती थी, उसी तीव्र प्रतिक्रिया से उसके मन में विराग भी प्रस्फुटित हुआ। उसे देख ऐसा लगता था जैसे किसी ने भगवान से अपना प्याला भर देने के लिये आजीवन आराधना-याचना की हो, किन्तु ज्यों ही प्याला भर गया और उसे मुँह से लगाया कि दोनों हाथ छोड़ कर जमीन पर गिरा दिया हो! जेफरन के रहते ही बुदनी साधुनी की तरह रहने लग गई थी—सुन्दर परिधान, आभूषण, सुस्वादु भोजन, सभी से विरक्त। जबसे शिवदत्त जी के विचार सुने थे और उनके सेवा-आदर्श को समझा था, तभी से उसमें प्रबल परिवर्त्तन हो गया था। और जिस दिन उसने कल्पित मनोरमा की तरह भक्ति-भाव से शिवदत्त के चरण छू प्रणाम किया उस दिन से तो वह शिवदत्त की मानो दीक्षित शिष्या बन गई थी। यह नहीं कि विविध मतों और तर्कों के विश्लेषण द्वारा बुदनी इस निष्कर्ष पर पहुँची हो। वह तो अशिक्षित और अबोध थी, तर्कशास्त्र का न व्याकारण जानती थी न साहित्य। परन्तु सत्य और सुन्दर ऐसे गुण हैं जो अनुकूल तर्कों की तर्जनी के बिना ही, वरन् प्रतिकूल तर्कों के अवरोध के बावजूद भी, मर्मस्थल तक पहुँच ही जाते हैं। शास्त्रीय संगीत का व्याकरण न जानने पर हम उससे प्रभावित नहीं होते, किन्तु कृष्ण की

बाँसुरी-तान सुन विमुग्ध गौएँ भी इकट्ठी हो जातीं और कान लगा कर सुना करतीं। बुदनी के सरल मन में यह समा गया था कि निस्स्वार्थ सेवा ही परम गति का मार्ग है, मनुष्य-जीवन के यथार्थ सुख का अकेला रास्ता है। जेफरन के बँगले में उसका शरीर रहते हुए भी उसका मन कहीं और ही अपनी कुटी बनाये हुए था। और जब शिवदत्त जी बीमार पड़े तब उनकी अहर्निश सेवा-सुश्रूषा में बुदनी को जैसे अपने तर्क-विहीन विश्वासों का प्रमाण ही मिल गया।

जेफरन बुदनी के लिये बहुत सा रुपया और सामान छोड़ गये थे। बुदनी ने शिवदत्त जी से कहा--इन्हें किसी अच्छे काम में लगा दीजिये, मैं लेकर क्या करूँगी।

शिवदत्त ने विलास-सामग्री को बेचवा दिया। बिक्री का रुपया तथा नकद का अधिकांश अनाथालयों और चिकित्सालयों के निमित्त दान कर दिया गया। थोड़े से रुपये जो बच रहे उसी से बुदनी का आश्रम बना और निर्वाह के लिये कुछ रख लिया गया। बुदनी कहा करती—मुझे चाहिये ही कितना? घटेगा तो मजदूरी कर लूँगी।

बुदनी नित्य-प्रति सुबह उठ कर शिवदत्त जी के चरण छू प्रणाम कर आती। फिर अपनी कुटी के झाड़-पोंछ में और छोटी सी फुलवारी के देख-भाल में लग जाती। उसकी कुटिया ठीक आश्रम सी लगती—वही देवोचित स्वच्छता, वही शान्त वातावरण, वही पुनीत वायुमण्डल। बुदनी ने सिलाई सीख रखी थी, दिन भर गरीब बच्चों के लिये कुरता-बंडी सिया करती। शाम को शिवदत्त के यहाँ जो सामाजिक बैठक हुआ करती उसमें बुदनी अवश्य जाती। इस बैठक में कम्पनी का काम-धंधा या व्यक्तिगत चर्चा वर्जित थी। प्रसंग छिड़ता केवल नीति और धर्म का। बुदनी चुपचाप सुना करती। उसका आसन शिवदत्त के निकट विशिष्ट स्थान पर हुआ करता।

छावनी में जहाँ कहीं कोई बीमार पड़ता कि बुदनी वहाँ पहुँच जाती। रोगी की सेवा-सुश्रूषा वह अपने हाथ में ले लिया करती थी। अथक परिश्रम उसका, मोहक थी कर्म-निष्ठा। एक रुग्न व्यक्ति के उपचार में,

जिसकी बीमारी बड़ी जटिल थी और सुश्रूषा पर परिणाम बहुत कुछ निर्भर करता था, बुदनी ने सात दिन और सात रात जग कर बिताये। जब नींद से वह मात उठती और पलकें कहा न सुनतीं तब बुदनी देर देर तक खड़ी रहती या धीरे-धीरे कमरे में टहला करती। उस पर भी यदि नींद ने न सुना तो एक पैर पर खड़ी रहती।

पास-पड़ोस के बच्चे बुदनी से रीझे रहते। जब देखो एक न एक शिशु-दल उसके यहाँ मोजूद है। वह अपना काम करती रहती, बच्चे अलग खेला करते। तो क्या उनके खेलने की और कहीं जगह न थी? थी तो अवश्य, लेकिन बुदनी के उमड़ते हुए अकृत्रिम प्रेम से भीना हुआ वातावरण और कहीं न था। पिकनिक में जो चीज खाई जाती है वह तो घर के भीतर बैठकर भी खा ली जा सकती है, फिर उपयुक्त प्राकृतिक परिपार्श्व की खोज क्यों होती है? ऐसा देखा जाता कि बच्चे माँ की गोद छोड़ कर बुदनी के पास भाग आते, और खींच-तान कर लौटा ले जाने के बाद फिर लुक कर चले आते। एक गुड़िया-सी छोटी लड़की, जिसे उसके घर के लोग रोज-रोज पकड़ ले जाया करते, एक दिन सुबह-सुबह बुदनी के पास पहुँची और दौड़ कर उसके कान में कहा—"माँ सो रही थीं तो मैं चुपके से उठी और खूब धीरे-धीरे निकली, जरा-सी भी आवाज नहीं। मैं जब बाहर निकल आई तो जोर से दौड़ी। माँ जानने भी न पाई।" यह कह बालिका बुदनी के आँचल में छिप कर जोर से हँसने लगी!

जब वह बच्ची बुदनी के घर रहती और अपने घर का कोई आता दिखाई देता तो वह आक्रान्त वन-शावक की तरह नेत्रों में असहाय दीनता लिये कभी बुदनी की खाट के नीचे लुकती, कभी उसकी साड़ी से लिपट कर छिप जाती। एक दिन तड़के, जाड़े के मौसम में, जब पूरा साफ भी नहीं होने पाया था, बुदनी ने देखा कि वही बालिका घर से निःशब्द निकल, अभिसारिका की सतर्कता से आगे-पीछे देखती हुई, ओस से कपड़ा बचाती हुई, उसके घर की ओर बढ़ी चली आ रही है!

२५

शिवदत्त ने अपने परिवार को बुला लिया। बुदनी से मिल कर मनोरमा को ऐसा लगा जैसे कल्पना-लोक के किसी रहस्य-वेष्टित व्यक्ति से भेंट हुई हो। मनोरमा सुख में गढ़ी पर दुःख में पकाई गई थी। जैसा कमनीय रूप वैसा ही उदार हृदय। वह भी भावुक थी। उसने अपने पिता की बीमारी के सिलसिले में बुदनी का नाम सुना था और मन ही मन तड़प रही थी कि कैसे उस वन-लक्ष्मी के चरणों पर मस्तक टेक सकूँ जिसने ममता-हीन वन-प्रवास में मेरे मरणासन्न रुग्न पिता के सरहाने रात पर रात जग कर उन्हें जिला लिया। उसने वन-देवियों के विषय में पढ़ा था, पर सोचती थी वे तो छाया और ज्योत्स्ना की निर्मित होती होंगी, अपने काम भर रूप धर लिया फिर अदृश्य हो गई। किन्तु जब उसने बुदनी का पार्थिव स्वरूप देखा तो अपने बिखरे भावों को बटोरने लगी। बुदनी का बदन परियों की परिभाषा के अनुकूल चंचल चंद्रिका से चर्चित न था और न शीशे का तरह शरीर के आर-पार ही दिखता। किन्तु उसके नेत्रों में वही अपार्थिव अतलता थी, मुख-मण्डल पर विश्व की वही असीम ममता प्रतिबिम्बित थी।

इधर बुदनी को भी मनोरमा में एक बांछित वस्तु मिल गई। जब से उसने मनोरमा का नाम सुना था और श्रद्धेय रानाजी की एक मात्र लाडली पुत्री के रूप में उसे चित्रित किया था——विशेषतः उस समय से जब व्याधि-विक्षिप्त शिवदत्त बुदनी का हाथ पकड़ मनोरमा समक्ष बैठे और अपना संतप्त हृदय, अपनी विफल कामनायें, अन्तिम देन की तरह उसे देने लगे——तब से मनोरमा को देखने के लिये बुदनी अधीर हो उठी थी। वह सोचती, मनोरमा कैसी होगी, कैसे कपड़े पहनती होगी, शहर में किस तरह रहती होगी, मिलने पर मुझसे बातें भी करेगी या नहीं! और हर समय शिवदत्त से कहा करती——मनोरमा को क्यों नहीं बुलाते?

बुदनी और मनोरमा में प्रगाढ़ मैत्री जम गई। एक दूसरे को अपनी

पूरक सी लगती। सेवा-कार्य के अतिरिक्त अब शिक्षा-प्रसार की भी व्यवस्था हुई। मनोरमा ने एक रात्रि-पाठशाला खोली। श्रम-जीवी मर्द, औरत, बच्चे, और गृहणियाँ, सभी के लिये यह स्कूल था। दो और शिक्षक कम्पनी की ओर से नियुक्त हुए। संचालन मनोरमा के हाथ था। बड़े उत्साह से पठन-पाठन चल रहा था। बुदनी भी पढ़ने आती और बड़े मनोयोग से अपना पाठ याद करती।

एक दिन अचानक शिवदत्त को मनसुख दास की दरखास्त मिली। आई थी कानपुर से, लिफाफे के ऊपर पता था—डाइरेक्टर, मेसर्स शिवदत्त बसन्ती कम्पनी, लिमिटेड, मनोहरपूर, सिंहभूम।

मजमून इस तरह का था—विज्ञापन द्वारा मुझे जानकारी मिली कि आपकी कम्पनी को उपस्कर-कारखाने के लिये एक योग्य सहायक प्रबन्धक चाहिये। मैं उस पद के लिये उम्मीदवार हूँ। मैं सिंहभूम के अन्दर ही मुलहाउस कम्पनी में कारखाने का मैनेजर था जिसके द्वारा मुझे पूरा अनुभव प्राप्त हो गया है। आपकी कम्पनी अभी हाल में खुली होगी क्योंकि उस समय केवल मुलहाउस कम्पनी ही वहाँ थी। ऐसी अवस्था में आप अवश्य ही ऐसे कर्मचारी को लेना पसन्द करेंगे जिसे वहीं और उसी तरह के काम में योग्यता मिली है। मैंने ही मुलहाउस कम्पनी के उपस्कर व्यापार को इतना ऊँचा उठाया। कम्पनी ने मुझे बहुत रखना चाहा लेकिन मुझे उससे अधिक वेतन का काम मिल गया और मिसेज दास को वह जगह पसन्द भी न थी। अभी कई कारणों से मैं बेकार बैठा हूँ, पत्नी की बीमारी से आर्थिक संकट में भी हूँ, यदि मुझे यह पद मिल जाय तो मैं आश्वासन देता हूँ कि कम्पनी को मेरी ओर से किसी तरह की शिकायत न रहेगी। आप मुलहाउस कम्पनी के मैनेजर जेफरन साहब से चाहें तो मेरे विषय में पूछ सकते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि वे मेरे काम को सराहेंगे।

शिवदत्त यह विनय-पत्र पढ़ कर करुणा से भर उठे। दरखास्त झूठ और मिथ्या गर्व की सूची थी लेकिन यह स्पष्ट था कि बेचारा आदमी दयनीय आर्थिक परिस्थिति पर पहुँचा हुआ है। शिवदत्त ने सोचा, क्या इन्हें यह पता नहीं है कि मुलहाउस कम्पनी का नाम बदल कर ही यह

नई कम्पनी बनी है ? हो सकता है पता न हो, क्योंकि ये कानपुर रह रहे हैं जहाँ कम्पनी की कोई शाखा नहीं। कम्पनी के नाम में शिवदत्त शब्द देख कर भी शायद अंदाज न मिला हो, सोचा हो वे शिवदत्त इस पद पर कैसे आ जायेंगे, और किसी का नाम होगा। या यदि अंदाज मिला भी हो तो शायद मेरी भलमनसी पर भरोसा कर रहे हों। आखिर निकाला तो उन्हें जेफरन ने था, मैं तो अन्त तक उन्हें सहायता देता रहा था।

शिवदत्त ने तार भेज दिया---आपकी दरखास्त मंजूर हो गई; आप तुरत आकर अपने पद का प्रभार ले लें।

मनसुख यथा समय आये। पता नहीं मनोहरपूर पहुँच कर और यहाँ की यथार्थ परिस्थिति का परिचय पा उनके मन के भाव क्या हुए थे, लेकिन देखने से ऐसा लगता था जैसे शिवदत्त से बिना मिले ही लौट जाने को उद्यत हों। शायद मन में सोच रहे हों, मैं तो जीवन-मरण का सवाल लेकर---जब दाने-दाने को तरस रहा हूँ, जब निजी और स्त्री की आबरू का मूल-धन भी बाजार में खत्म हो चुका है---भूल भी सकता हूँ, लेकिन शिवदत्त मेरा पुराना व्यवहार कैसे भूल सकते हैं ?

लेकिन जब मनसुख दास शिवदत्त के सामने पहुँचे और शिवदत्त को कुरसी से उठ कर अपनी आव-भगत करते पाया, उनका छलछलाता सच्चा सौहार्द देखा, उनकी पहले की ही अति विनयी प्रकृति पाई, तब मनसुख दास का मन स्वस्थ हुआ। शिवदत्त ने अकृत्रिम सहानुभूति के साथ मनसुख और उनकी स्त्री का इतने दिनों का जीवन-विवरण पूछा, फिर कम्पनी का इतिहास सुना कर बोले---मनुष्य नियति और परिस्थिति का कठपुतला है। मानव निमित्त मात्र है, कर्त्ता कोई और ही है। आप निश्चिन्त होकर काम पर आ जाइये। अब तो कम्पनी के कार्यकर्त्ता ही सारे शेयरों के मालिक हैं, आप भी एक शेयर-मालिक हो जाइयेगा।

फिर एक क्षण रुक कर पूछा---मिसेज दास को क्यों नहीं साथ लाये ?

मनसुख ने मन में सोचा, यहाँ तो अपने पैर के नीचे की जमीन ही गायब थी, परिवार को किस बुनियाद पर ढोये फिरता ? फिर इथेल से तो यहाँ के लोग और भी जले-भुने होंगे उनके यहाँ आने से तो मेरी उम्मीदों

का खातमा ही है। छद्म मुस्कुराहट से बोले---अभी तो देखने के लिये ही आया था।

शिवदत्त---देखने की क्या बात थी ? अपना ही सब कुछ समझिये। यहाँ मेरी लड़की मनोरमा भी आ गई है। वह और बुदनी मिलकर समाज में शिक्षा तथा सेवा का अभाव बहुत कुछ मिटा रही हैं। मिसेज दास इनकी हमजोली बन इस काम को और आगे बढ़ा सकती हैं।

मनसुख दास का इस बीच का इतिहास बड़ा करुण था। पोंगा से लौटकर सपत्नीक वे कलकत्ते गये थे। वहाँ दर-दर नौकरी की तलाश की, मिसेज इथेल दास ने भी अँगरेजों के साथ अपने सामाजिक सान्निध्य का पूरा उपयोग किया, लेकिन सफलता न मिली। सोच कर आये थे, जिस आसानी से एक नौकरी मिल गई थी, उसी तरह दूसरी भी मिल जायेगी। किन्तु कल्पित उद्यान में फूल न लगे। बहुतेरे उद्योगपति तथा कार्यालयाधीश लम्बे चौड़े वादा करते, लेकिन अन्त में देखा जाता कि मिसेज दास के लिये भले ही वे लोग अपनी जान दे दें, मिस्टर दास को नौकरी देने पर कोई तैयार न था। जहाँ कहीं भी इनकी उम्मीदवारी की जाँच होने लगती मुलहाउस कम्पनी से इनके विषय में पूछा जाता, मुलहाउस कम्पनी गुप्त-रूप से जेफरन की पूरी रिपोर्ट भेज देती और मामला वहीं खत्म हो जाता। मनसुख दास को यह मालूम हो गया कि जेफरन की रिपोर्ट ही इनका सत्यानाश कर रही है। हजार छटपटाने पर, लाख सफाई देने पर भी कोई उपाय कारगर न होता। अब मनसुख दास को पछतावा होने लगा। व्यथित मन में सोचते---आदमी सचमुच घमंड से ही गिरता है। मैंने चलती के समय सोच रखा था कि जब जेफरन हाथ में है और मेरी स्त्री का उनपर इतना प्रभाव है तब किसी भी हालत में मेरा कोई अहित नहीं हो सकता। शिवदत्त तो मेरे सामने पिल्लू के समान था, जब चाहें कुचल दें। फर्क यह था कि मैं जेफरन को खुश रख और शिवदत्त को सता कर ही अपना काम निकालता था, लेकिन शिवदत्त अपना काम ईमानदारी से करता जा रहा था। धर्म-पुस्तकों में ठीक ही लिखा है कि कर्म एक बीज है जो मिट्टी में गाड़ देने पर कुछ दिन छिपा रह जायेगा लेकिन यथासमय फूल या काँटा

बनकर अपने रास्ते में आ खड़ा होगा। मैं अपने कर्मों से बिंधा और शिवदत्त ने कर्म के सहारे ही पद-वृद्धि पाई।

कलकत्ते में कहीं कोई नौकरी न मिली। नौबत फाकेकशी की आ पड़ी। लाचार हो दोनों प्राणी अपने एक सम्बन्धी के यहाँ कानपुर गये। पर वहाँ भी नौकरी का कोई प्रबन्ध न हो सका। सम्बन्धी बेचारा कब तक भार सम्भालता? ऐसे ही समय में मनसुख दास ने शिवदत्त बसन्ती कम्पनी का विज्ञापन देखा था और तुरत दरख्वास्त भेज दी थी।

मनसुख ने कानपुर से लौट कर अपना पद-भार ग्रहण किया। बड़ी निष्ठा और विनय के साथ ये काम में लग गये। शिवदत्त ने देखा कि इन्हें काम करने की आन्तरिक प्रेरणा हो आई है इसलिये ये भी मनोयोग से उन्हें बताया करते। अब मनसुख दास बिल्कुल बदले हुए आदमी थे। दुःख के थपेड़ों ने, पूर्व कर्म के पश्चात्ताप ने तथा शिवदत्त के उदाहरण ने इनकी प्रवृत्तियों के मार्ग को बदल दिया था। सबसे अधिक दास प्रभावित हुए शिवदत्त की अहिंसा, गंभीरता और उदारता से। शिवदत्त के प्रति इनकी श्रद्धा उत्पन्न हो गई और जैसे-जैसे शिवदत्त के साथ सम्पर्क बढ़ता गया, इनकी श्रद्धा भी गहरी होती गई। कभी-कभी मनसुख को ऐसा लगता जैसे शिवदत्त के देवतुल्य गुण ही शिल्पी बन मनसुख का नया व्यक्तित्व गढ़ने लगे हों।

एक दिन शिवदत्त ने पूछा—अभी तक मिसेज दास को आप नहीं लाये? अकेले रहने में तकलीफ तो जरूर होती होगी। उन्हें शीघ्र ही बुला लीजिये न।

मनसुख दास कुछ न बोले।

शिवदत्त ने फिर पूछा—क्यों? कोई अड़चन है क्या?

मनसुख दास ने सिर झुकाये असमंजस की आवाज मे कहा—अड़चन उधर तो कोई नहीं। डरती हैं यहाँ आने में।

—डरती हैं?

—हाँ, सोचती हैं, पता नहीं उनके साथ क्या बर्ताव हो।

शिवदत्त कुछ क्षण चुप रहे, फिर मनसुख की बाँह पर हाथ रख कर

बोले—दास साहब, यह सुन मुझे बड़ी आत्म-ग्लानि हो रही है। यदि मुझसे कोई डरे या मेरे प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना रखे तो दोष मेरा अपना है। इसका प्रायश्चित मुझे करना पड़ेगा। आप मेरी ओर से पूरा आश्वासन देकर लिख दें कि वे तुरत चली आवें। मुझे तो आप देख ही रहे हैं। रही बुदनी, तो वह इतनी सरल है कि उसके मन में किसी तरह की कुभावना जग ही नहीं सकती। मिसेज दास की यहाँ बड़ी आवश्यकता है। आकर शिक्षा का भार वे ले लें। मनोरमा अभी चला रही है मगर वह तो उतनी पढ़ी-लिखी नहीं है। ये तीनों मिलकर बड़ी अच्छी तरह रहेंगी और समाज का बड़ा उत्तम काम होगा।

मनसुख दास ने पूरी कैफियत लिख दी। अपना सुखद अनुभव भी लिखा और वातावरण की भूरि-भूरि सराहना की।

मिसेज इथेल दास आ गईं।

इथेल दास कुछ दिनों तक तो स्त्रियोचित सतर्कता से परिस्थिति का अध्ययन करती रहीं। पुरानी बातें याद कर शिवदत्त के सम्मुख उनके मन में कुछ तो मान-ह्रास, कुछ झेंप और कुछ अहित-आशंका के भाव उठते। किन्तु शीघ्र ही शिवदत्त के विनय-पूर्ण उदार आचरण ने उन्हें पूर्ण रूप से आश्वस्त कर दिया। मनोरमा के भोलेपन से तो वे तुरत रीझ गईं और बुदनी को देखा कि वही सरल निष्पाप वन-बालिका है। आरम्भ में उसपर विलास का जो नशा छाया हुआ था उसकी प्रतिक्रिया बुदनी को सन्यास-पथ पर बहुत आगे बढ़ा चुकी थी। बुदनी धुले हुए कानन-कुसुम की तरह पुनीत और पूर्ण लगती थी।

कुछ दिनों में ही तीनों सखियाँ अविच्छिन्न प्रेम-सूत्र में बंध गईं। तीनों के गुण एक दूसरे के पूरक थे।

एक दिन इथेल ने बुदनी के कंधे पर सस्नेह हाथ रख कर गम्भीर स्वर में कहा—बुदनी, तुमसे एक बात की क्षमा माँगे बिना मुझे शान्ति नहीं मिलती। अपने उस दिन के दुर्व्यवहार से मैं बड़ी लज्जित हूँ।

बुदनी ने इथेल के दोनों हाथ पकड़ मुस्कुराते हुए कहा—मैं आपसे बहुत डर गई थी उस दिन। लेकिन जब आपने मुझे धीरे से ही डाँटा तो मैं सोचने लगी, आप कितनी अच्छी हैं।